भारत-विभाजन
की
कहानी

भारत के बटवारे तथा सत्ता-हस्तांतरण की आंतरिक कहानी—

एलन कैम्पबैल जान्सन

●

अनुवादक
रनबीर सक्सेना
संपादक
यशपाल जैन

●

१९५४
सस्ता साहित्य मण्डल-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

पहली बार : १९५४
मूल्य
चार रुपये

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक श्री एलन कैम्पबैल जान्सन की 'मिशन विद माउण्टबेटन' नामक सुविख्यात पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर है। इसमें लार्ड माउण्टबेटन के एक महान मिशन को लेकर भारत में आने, भारतीय स्वतन्त्रता का व्यावहारिक एवं सर्वमान्य हल उपलब्ध कराने, शासन-सत्ता को भारतीयों के हाथ में सौंपने, भारत के टुकड़े होने और दो स्वतन्त्र राष्ट्रों के बनने की बड़ी ही सूक्ष्म, रोचक तथा आंतरिक कहानी है। लेखक लार्ड माउण्टबेटन के प्रेस अटेची थे। इस नाते प्रत्येक घटना से उनकी जानकारी रहना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त, लार्ड माउण्टबेटन हर मुलाकात के बाद पन्द्रह मिनट में उसके नोट लिखा देते थे। साथ ही विचार-परिवर्तन करने की दृष्टि से अपने उच्च कर्मचारियों की वह प्रतिदिन नियमित रूप से बैठक भी किया करते थे। इसके परिणामस्वरूप लेखक हर घटना से न केवल अवगत ही रहते थे, अपितु उसकी आवश्यक एवं प्रामाणिक सामग्री भी उन्हें प्राप्त होती रहती थी। यही कारण है कि वह इतनी विशद एवं महत्वपूर्ण सामग्री पाठकों को दे सके। निस्संदेह भारत में सत्ता-हस्तांतरण की घटना द्वितीय महायुद्ध के बाद, विश्व की एक महान घटना है, जिसकी मिसाल दुनिया के इतिहास में शायद ही मिले।

बड़े हर्ष की बात है कि इस विषय की इतनी ऐतिहासिक एवं उपादेय सामग्री लेखक के परिश्रम तथा दूरदर्शिता के कारण प्राप्त हो सकी। उन्होंने प्रत्येक दिन की घटनाओं का वर्णन तिथि-क्रम से किया है और छोटे-बड़े सभी विवरण प्रस्तुत किये हैं। उन्हें पढ़ कर पता चलता है कि भारत के हाथ में सत्ता सौंपने की पृष्ठ-भूमि क्या थी, ब्रिटिश सरकार को किन-किन परिस्थितियों का मुकाबला करना पड़ा, भारतीयों को किस लाचारी की अवस्था में विभाजन स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा, मुस्लिम लीग

ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए रास्ते में क्या-क्या अड़चनें पैदा कीं, पाकिस्तान स्वीकार होने पर किस प्रकार भारत का अंग-भंग हुआ, विभाजन से क्या-क्या समस्याएं उत्पन्न हुई, किस तरह दो पृथक् राष्ट्रों का निर्माण हुआ और किस प्रकार भारत से अपनी सत्ता हटा लेने पर भी भारत और ब्रिटेन के संबंध मधुर बने रहे।

इस पुस्तक की सामग्री को दो कालों में विभाजित कर सकते हैं। पहला १५ अगस्त के पूर्व का, दूसरा उसके बाद का। वस्तुतः इन पृष्ठों में घटनाओं में चुनाव करके कोई क्रमबद्ध कहानी नहीं कही गई है, बल्कि डायरी के रूप में प्रत्येक दिन की घटनाएं विस्तार से दी गई हैं। कुल मिला कर जो कहानी बनती है, वह वास्तव में बड़ी ही रोमांचकारी है और पाठकों को अनेक असामान्य और भीतरी बातों की जानकारी दे देती है।

पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लेखक ने उसे निष्पक्ष भाव से लिखा है। दैनिक घटनाओं को ज्यों-का-त्यों उन्होंने उपस्थित कर दिया है। जहां कहीं अपनी बात कहने का अवसर आया है, वहां उन्होंने किसी के साथ भी पक्षपात से काम नहीं लिया। यही कारण है कि पुस्तक बड़ी मूल्यवान सामग्री से परिपूर्ण है। भारत-विभाजन व सत्ता-हस्तांतरण-संबंधी साहित्य में, जोकि पुस्तक के रूप में बहुत ही कम उपलब्ध है, इस ऐतिहासिक पुस्तक का महत्वपूर्ण स्थान है।

पुस्तक की कुछ घटनाएं तो इतनी मनोरंजक हैं कि पाठक पढ़कर आनन्द-विभोर हो उठता है। १५ अगस्त की रात को सत्ता-हस्तांतरण की विधि के पश्चात् विधान-सभा के अध्यक्ष राजेन्द्र बाबू जब लार्ड माउण्टबेटन से स्वतंत्र भारत का प्रथम गवर्नर-जनरल बनने का अनुरोध करने जाते हैं तो उन्हें जो कहना चाहिए, कहना भूल जाते हैं और उनके मुंह से शब्द ही नहीं निकल पाते। उसी अवसर पर नेहरूजी अपने मंत्रिमंडल के नामों की सूची एक बंद लिफाफे में माउण्टबेटन को देकर चले जाते

हैं; पर जब माउण्टबेटन उसे खोलते हैं तो देखते क्या हैं कि अन्दर कुछ भी नहीं है। पहली मुलाकात होने के समय जिन्ना, लार्ड और लेडी माउण्टबेटन का फोटो खिंचता है। अपनी बहादुरी की डींग मारने के लिए विनोद भरे स्वर में जिन्ना लेडी माउण्टबेटन से कहते हैं कि दो कांटों के बीच एक गुलाब है; पर मजे की बात यह कि माउण्टबेटन-दंपति के बीच वह स्वयं खड़े थे। ऐसी मनोरंजक घटनाएं बहुत-सी मिलती हैं, जो पुस्तक को बड़ी सरसता और सजीवता प्रदान करती हैं।

मूल पुस्तक काफ़ी बड़ी है और उसमें विभाजन तथा सत्ता-हस्तांतरण के अतिरिक्त और बहुत-सी बातें आ गई हैं। भारतीय पाठकों की दृष्टि से मूलभूत घटनाओं को लक्ष्य में रख कर पुस्तक का संक्षिप्तीकरण एवं सम्पादन कर दिया गया है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि यह संग्रहणीय पुस्तक पाठकों के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी।

—मंत्री

दो शब्द

जुलाई १९४२ में मुझे माउंटबेटन के कर्मचारी-मंडल में संयुक्त कमाण्ड हैडक्वार्टर्स में एयर पब्लिक रिलेशंस आफीसर का स्थान सौंपा गया था। १५ महीने के बाद माउंटबेटन को दक्षिण-पूर्व एशिया की मित्र-राष्ट्र सेनाओं के सर्वोच्च कमांडर के पद पर नियुक्त किया गया तो उन्होंने मुझे केवल सरकारी आधारों से सूचना प्राप्त कर लेने का काम नहीं सौंपा, बल्कि वह मुझे अपनी साप्ताहिक मुलाकातों एवं महत्वपूर्ण बैठकों में भी शामिल कर लेते थे। अतः वाइसराय के रूप में जब उन्हें भारत जाने के लिए आमंत्रित किया गया तब तक मैं माउंटबेटन-तंत्र का इतना अभिन्न अंग बन चुका था कि मुझे प्रैस अटैची के रूप में उनके साथ भारत आना पड़ा। उनके पूर्व के वाइसरायों के समय में यह पद नहीं होता था।

इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य अपने दैनिक नोटों, पत्रों और दस्तावेजों के आधार पर, जोकि मैंने उस समय लिये थे, इस कहानी को कहना है। अधिकांशतः मैंने इतिहास देने की अपेक्षा इतिहास की साधन-सामग्री इस पुस्तक में उपस्थित की है। इसकी घटनाओं और विशिष्ट व्यक्तियों के साथ मेरा संपर्क इतना घनिष्ठ था कि मैं उनके विश्लेषण का प्रयत्न नहीं कर सका।

यदि इस पुस्तक का घटना-क्रम तीव्र है तो इसका कारण यह है कि हम सबको बड़ी तेजी और रफ्तार से काम करना पड़ा और हम लोगों के सामने बेहद जल्दी थी। यदि ये विवरण कुछ असम्बद्ध से प्रतीत होते हैं, तो इसका कारण यह है कि समय-समय पर अनेक समस्याएं उठ खड़ी होती थीं और उनके तात्कालिक समाधान भी करने पड़ते थे, जिनसे हमारी दिनचर्या का तारतम्य टूट जाता था।

तेजी और बाधाओं के बावजूद विभाजन द्वारा सत्ता-हस्तांतरण निश्चित क्रम के अनुरूप चला। हमारे भारत में आने के ७३ दिन में विभाजन-योजना का ऐलान कर दिया गया और उसके ७२ दिन के बाद स्वतः वाइसराय पद का अंत हो गया। माउंटबेटन के गवर्नर-जनरल पद के १० महीनों में घटनाओं की रफ्तार कभी भी मंद नहीं पड़ी।

यह निश्चय ही मेरे जीवन-काल का एक सौभाग्य था कि मुझे लार्ड माउंटबेटन के कर्मचारी-मंडल के एक सदस्य के नाते इस अपूर्व सत्ता-हस्तांतरण के कार्य में व्यक्तिगत रूप से सेवा करने का अवसर मिला।

—लेखक

विषय-सूची

परिशिष्ट

भारत-विभाजन
की
कहानी

लार्ड माउंटबेटन के साथ वार्तालाप के समय महात्मा गांधी
ने पहली बार वाइसराय-भवन में २ अप्रैल १९४७ को
प्रातराश ग्रहण किया

भारत-विभाजन की कहानी

: १ :

नये वाइसराय की नियुक्ति

लंदन, बृहस्पतिवार, १९ दिसम्बर १९४६

मैं सबेरे ही चेस्टर स्ट्रीट में माउंटबेटन के घर पहुंचा। नाश्ते का समय था। माउंटबेटन ने मुझे आदेश दिया कि मैं जाऊं और पश्चिमी-पूर्वी एशिया की कमान-संबंधी आदेशों के बारे में उनसे मिलूं। प्रधान सेनापति की हैसियत से उन्होंने जो भ्रमण किया था, उस सारे भ्रमण में मैं उनकी युद्ध की डायरी लिखता और रखता था, इस नाते उन आदेशों में पदेन-सदस्य के तौर पर मेरी रुचि थी। इस काम में कुछ भारी कठिनाइयां भी थीं और सबसे बड़ी कठिनाई उनके व्यस्त कार्यक्रम के साथ इस काम का मेल बिठाना था। हम लोगों का काम पूरा नहीं हुआ था और समय की कमी थी, इसलिए अगले कार्यक्रम के लिए उनके साथ जाने के सिवा और कोई चारा न रहा। अगला कार्यक्रम था अपना सरकारी चित्र बनवाने के लिए आस्वाल्ड बर्ले चित्रकार के यहां जाना।

जब हम कार में बैठ गए तो माउंटबेटन ने सब खिड़कियाँ बंद कर दीं, एकदम गुप्त रखने की मुझे सौगंध दिलाई और धीरे से कहा, "जो बात मैं आपसे कहने जा रहा हूं, वह मेरे निजी परिवार के बाहर किसी को भी मालूम नहीं।" उन्होंने बताया कि मि. एटली ने मुझे कल शाम बुलाया था और लार्ड वेवल की जगह भारत का वाइसराय बनने को आमंत्रण दिया। यद्यपि मैं उनकी अचरज-भरी बातों में शामिल होने का आदी हो गया हूं, तथापि जो रहस्य उन्होंने प्रकट किया, उसकी मुझे बिल्कुल आशा न थी। अपने जीवन की चिरकालीन असफल आकांक्षा को पूरा करने के

लिए वह फिर से नौसेना में जाने वाले थे और बड़े जोरों से उनका अभ्यास भी चल रहा था। उन्हें प्रथम क्रूजर स्क्वेड्रन की कमान के लिए रियर एडमिरल बनना था। इसके अलावा, भारतीय नेताओं, लार्ड वेवल और ब्रिटिश सरकार के बीच अभी-अभी लंडन में जो बातचीत हुई थी, उसमें सहज आशा की कोई झलक न होते हुए भी, लगता था कि मंत्रिमंडल-मिशन योजना अभी जीवित है।

लेकिन अब जो मैंने सुना, उससे जान पड़ा कि प्रधान-मंत्री भारत और माउंटबेटन दोनों के भविष्य के बारे में कुछ और ही सोच रहे हैं। मि. एटली ने माउंटबेटन से जो मुलाकात की थी उसकी शुरुआत यह पूछते हुए की थी कि क्या दरअसल उनका दिल नौसेना में जाने को करता है ? उन्होंने जवाब दिया कि निश्चय ही यह बात सही है।

एटली ने इसके बाद भारतीय संकट की बात छेड़ दी। उन्होंने कहा कि वेवल तो सेनाएं हटाने की योजना से अधिक कुछ भी नहीं कर पाए। इसपर सरकार उन राजनैतिक विचारधाराओं से बहुत ही ज्यादा असंतुष्ट है, जो कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों पर असर कर रही हैं। अगर हम सावधान न रहे तो हम भारत को न केवल घरेलू-युद्ध में ही, बल्कि ताना-शाही राजनैतिक दलों के हाथों में सौंपने को लाचार हो जायंगे। प्रस्तुत गतिरोध का अंत करने के लिए तत्काल कार्यवाही करने की जरूरत है, और मंत्रिमंडल के प्रमुख सदस्य इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि नये सिरे से व्यक्तिगत संपर्क से ही संभवतः आशाजनक परिणाम निकल सकता है। इस काम को पूरा करने के लिए एक उपयुक्त आदमी की तलाश में उन्होंने चारों ओर नजर दौड़ाई और सर्वसम्मति से इस नतीजे पर पहुंचे कि ऐसा व्यक्तित्व और आवश्यक योग्यता केवल माउंटबेटन में ही थी।

लंदन, बुधवार, १५ जनवरी १९४७

आखिर माउंटबेटन ने वाइसराय पद संभालने की स्वीकृति दे ही दी। प्रधान-मंत्री के साथ उनकी पहले की बातचीत अपूर्ण रही थी। सरकारी नीति में समय-अवधि के सिद्धान्त को मान लिया गया, लेकिन बिल्कुल निश्चित तारीख अभी तय नहीं हो पाई। १९४८ की बाद की छिमाही की तजवीज की गई थी, लेकिन माउंटबेटन का दृढ़ मत था कि राजनैतिक सफलता इस बात पर निर्भर है कि सरकार अंग्रेजों के भारत छोड़ने के लिए निकटतम तारीख मंजूर करने को तैयार है या नहीं, और तुरंत ही उन्होंने सुझाव दिया कि छिमाही का अर्थ दिसंबर नहीं, जून होना चाहिए। बड़े दिन के सप्ताह के निकट होने के कारण आखिरी निर्णय स्थगित कर दिये गए और माउंटबेटन थोड़े दिन की छुट्टी मनाने के लिए अपने परिवार को लेकर डेवोस चले गए। वहां गये अभी अड़तालीस घंटे ही हुए होंगे कि लंदन से उनके लिए जरूरी बुलावा आ गया और एक खास हवाई जहाज उन्हें लाने को भेजा गया। इस घटना से अखबारों में बड़े-बड़े अनुमान लगाए जाने लगे, लेकिन असली मतलब कोई नहीं समझ पाया। मिसाल के तौर पर 'डेलीमेल' के संपादक फ्रैंक ओवन ने मुझे अपना निजी अनुमान बताया कि माउंटबेटन फिलस्तीन भेजे जा रहे हैं।

माउंटबेटन को इस तरह वापस बुलाने का कारण यह था कि भारत से आनेवाले समाचार अधिकाधिक गंभीर थे। सांप्रदायिक गतिरोध और हिंसा का दौर जारी था। सरकार जितना जल्दी हो सके, नई नीति और नये वाइसराय की घोषणा करना चाहती थी। इस घोषणा के मसविदे की शर्तों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के बाद माउंटबेटन ने अंततः सिद्धान्त रूप में इस पद को ग्रहण करना स्वीकार किया। सरकार के साथ उनका जो विचार-विनिमय हुआ, उसमें उन्होंने सरकार को इस आशय का कोई भाव प्रकट करने के खतरे से सावधान कर दिया कि उनकी नियुक्ति वाइसराय-प्रथा को स्थिर रखने या ब्रिटिश मध्यस्थता लागू करने के लिए की गई है। इसीलिए शुरू की चर्चा में उन्होंने यह शर्त रखी कि वह वाइसराय-पद तभी

स्वीकार करेंगे जब भारतीय-दल स्वतः अपनी शर्तों के साथ उन्हें भारत आने का निमंत्रण दें। जो हो, मि. एटली ने विस्तार के साथ समझाया कि यह आखिरी शर्त मुनासिब नहीं है, लेकिन इस सिद्धान्त को पूरी तरह स्वीकार किया कि अगर भारतीय दल एक संविधान और एक सरकार के रूप पर एकमत हो जायं तो समझौते के बावजूद वह किसी निश्चित तारीख अथवा उससे पहले भी ब्रिटिश राज्य की समाप्ति कर देंगे।

माउंटबेटन को राजी करने के लिए सरकार अधिक-से-अधिक सीमा तक बढ़ने को तैयार थी। सर स्टेफर्ड क्रिप्स ने कहा कि भारतीय नेताओं और नये वाइसराय के बीच वह पहले से ही आवश्यक संपर्क की व्यवस्था कर देंगे, और सरकारी घोषणा से पूर्व ही इस नियुक्ति के बारे में वह उनकी सहमति प्राप्त कर लेने की पूरी कोशिश करेंगे। क्रिप्स ने तो यहां तक कह डाला कि वह माउंटबेटन के साथ भारत भी जाने को तैयार हैं। इस सुझाव को दबा देना स्वाभाविक था, क्योंकि भारतीय मामलों में क्रिप्स की स्थिति और अनुभवों से माउंटबेटन की स्थिति बिगड़ जाती और नये वाइसराय के लिए आवश्यक अधिकार या प्रतिष्ठा के साथ बातचीत करना प्रायः असंभव हो जाता।

लंदन, सोमवार, १७ फरवरी १९४७

माउंटबेटन ने आग्रह किया कि उन्हें वाइसराय के सामान्य कर्मचारी-मंडल में वृद्धि करने की अनुमति दी जाय। उनका कहना था कि उनको पूर्व वाइसरायों को दिये जानेवाले चौथाई से भी कम समय में अभूतपूर्व राजनैतिक और सैनिक महत्व के निर्णय लेने का भार सौंपा गया है। लार्ड वेवल के सामान्य सिविल सर्विस स्टाफ के लोग हालांकि बहुत प्रतिभाशाली और अनुभवी थे, फिर भी उनसे बिना अन्य सहायता के काम पूरा कर ले जाने की उम्मीद करना असंभव था। मि. एटली ने तुरन्त वादा किया कि माउंटबेटन जिन कर्मचारियों की नियुक्ति चाहेंगे, सरकार

उसे पूरा करेगी ।

माउंटबेटन चार नये पदों का निर्माण कर रहे थे, जो वाइसराय-भवन के इतिहास में नये थे। वाइसराय के नीचे एक चीफ आव स्टाफ, एक प्रमुख सेक्रेटरी, एक कान्फ्रेंस सेक्रेटरी और एक प्रेस अटैची। इनके अलावा उनका व्यक्तिगत मंत्रालय भी होगा, जिसके प्रमुख होंगे दो वयस्क नौसेना अधिकारी। अपनी पटाने की योग्यता के बल पर, जो माउंटबेटन के व्यक्तित्व की एक खासियत है, उन्होंने अपने दो पुराने मित्रों को, अपने कामों को छोड़ कर, उनके दल को अपने महान अनुभव का लाभ देने के लिए राजी कर लिया ।

यही कारण है कि लार्ड इस्मे ने अपनी समाधि भंग करना स्वीकार कर लिया था और वह चीफ आव स्टाफ का पद संभाल रहे थे। सर एरिक मिएविल नगर में अपने महत्वपूर्ण व्यावसायिक उत्तरदायित्व को छोड़ कर प्रमुख सेक्रेटरी बने थे।

माउंटबेटन के विशेष दल के अन्य सदस्य केप्टेन रोनाल्ड ब्रोकमेन (शाही नौसेना), कमाण्डर जार्ज निकोल्स (शाही नौसेना), लेफ्टिनेंट कर्नल वरनोन अर्सकिन क्रम (स्काट्स गार्डस) और मैं—हम सबलोग कहीं-न-कहीं पहले भी माउंटबेटन के नीचे काम कर चुके थे।

: २ :

महत्त्वपूर्ण बहस और सलाह-मशविरे

लंदन, बुधवार, २६ फरवरी १९४७

लार्ड सभा में गत दो दिन से सरकार की २० फरवरी वाली घोषणा पर जो सनसनीपूर्ण बहस चल रही थी, वह लार्ड टैम्पलवुड के अपने निंदा-प्रस्ताव को वापस लेने के साथ समाप्त हो गई। यह एक ऐसा मौका था, जब बहुत से लोगों का यह मानना गलत नहीं था कि लार्ड सभा के मत कामन्स सभा की अपेक्षा अधिक राजनैतिक वजन वाले हैं। पहली बात तो यह कि लार्ड सभा वाले नई परिस्थिति पर कामन्स सभा से पूर्व ही से विचार कर रहे थे। इसलिए यह खयाल किया जाता था कि अनुदार विरोधी दल का अन्तिम रुख संभवतः लार्डों द्वारा अपनाये गए स्वर पर ही निर्भर करेगा। इसके अलावा, वे वयोवृद्ध राजनीतिज्ञों और विशेषज्ञों के रूप में अपनी वंशगत क्षमता के आधार पर बहस नहीं कर रहे थे।

भारतीय शासन के इतिहास में जिनके नाम चौथाई सदी से भी अधिक समय तक चमक चुके थे, ऐसे बहुत से लोगों ने लार्ड टैम्पलवुड के कड़े मत पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था कि समय-अवधि का निश्चय वचन-भंग है, जिससे भारत की शांति और समृद्धि खतरे में पड़ जायगी।

जब लार्ड टेम्पलवुड भारत सचिव के पद पर आसीन थे और सर सेमुअल होर के नाम से प्रख्यात थे, तब उन्होंने लगभग सात वर्ष भारत सरकार के १९३५ के विधान को मि० चर्चिल और अनुदार दल के दक्षिण पंथियों के तीव्र और सतत विरोध के विपरीत स्वीकार करवाने में लगाए थे। इसलिए उनके द्वारा पेश किया गया यह प्रस्ताव सरकार के लिए निश्चय ही बड़ी भारी चुनौती थी। यदि इसे व्यापक समर्थन प्राप्त हो जाता

तो भारतीय स्वाधीनता के प्रश्न पर पूरे राष्ट्र द्वारा कोई संयुक्त प्रयास करना असंभव हो जाता। जब लार्ड लिस्टोवेल ने सरकार की ओर से पहले दिन की बहस का जवाब दिया, उस समय तक इस बात की बहुत कम संभावना थी कि इस प्रश्न पर मतदान और पराजय को टाला जा सकेगा।

यह खतरा आज और भी बढ़ गया जब साइमन कमीशन ख्याति-वाले लार्ड साइमन[१] ने विरोधी दल की तरफ से बोलना शुरू किया। वह एक घंटे से जरा ही ऊपर बोले। उनका भाषण तर्कपूर्ण नकारात्मकता और निषेधों का आदर्श नमूना था।

इसके बाद लार्ड ट्रेन्चार्ड ने बहुत ही तीखी आलोचना करते हुए भाषण दिया और फिर लार्ड हेलीफेक्स भारतीय मामलों में आखिरी बार निर्णायक हस्तक्षेप करने खड़े हुए। बहस में भाग लेने वाले एकमात्र भूत-पूर्व वाइसराय वही थे। पार्टी की मान्यताओं और अनुशासन को छोड़ कर उन्होंने कहा :

"अपनी जानकारी के आधार पर मैं यह कहने को तैयार नहीं हूं कि और कोई चीज चाहे गलत रही हो या सही, लेकिन यह कदम तो हर हालत में गलत है ही। . . . क्योंकि सच तो यह है कि भारत की समस्या का कोई ऐसा हल नहीं है जो गंभीरतम आपत्ति और गहनतम खतरे से भरा न हो। और मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं—इसके दोषों के बावजूद—कि मैं तबतक सम्राट की सरकार के निर्णयों की निन्दा करने को तैयार नहीं हूँ जबतक कि मैं ईमानदारी और विश्वास के साथ इससे अच्छा हल न सुझा सकूँ। . . . मुझे खेद होगा यदि इस क्षण इस सभा की ओर से भारत को जो सन्देशा भेजा जा रहा है, उसमें केवल निन्दा ही भरी हो, हालांकि मैं अच्छी तरह समझता हूँ कि यह निन्दा असफलता, निराशा और आशंकाओं की स्वाभाविक भावनाओं पर आधारित है।"

लार्ड सेमुअल ने बाद में मुझसे कहा कि लार्ड सभा में उन्होंने जितने भाषण सुने, उनमें यह सबसे अधिक प्रभावशाली था और इसका इतना

१. जिनका ८० वर्ष की अवस्था में हाल ही में देहांत हो गया।

अधिक असर पड़ा कि बहुत से अनुदार दली लार्डों ने, जिन्होंने उनके खड़े होने से पूर्व सरकार के खिलाफ मत देने का फैसला कर लिया था, उनके भाषण के दौरान में अपने विचार बदल डाले। वे टेम्पलवुड से की गई उनकी इस अपील से सहमत हो गए कि "सभा को मतदान लेने की आवश्यकता से बचाएं।" शेष बहस में दम नहीं था। जनमत का ज्वार पलट गया था। लार्ड टेम्पलवुड ने अपनी आलोचना कायम रखते हुए अपना प्रस्ताव वापस ले लिया।

लंदन, बुधवार, ५ मार्च १९४७

हालांकि कामन्स सभा में दो दिन की बहस का उद्घाटन एक महत्व-पूर्ण संसदीय अवसर था, फिर भी जब मैंने क्रिप्स को अपने स्वाभाविक संयम और सुस्पष्टता के साथ सरकारी पक्ष की वकालत करने खड़े होते देखा तो मैं यह सोचे बिना न रह सका कि नई नीति की मुख्य लड़ाई तो पहले ही लार्ड सभा में जीती जा चुकी है। क्रिप्स के भाषण हमेशा इतने तर्कयुक्त और इतने सुयोजित होते हैं कि जब वह बोलते हैं तो भावनाओं का पारा तुरन्त गिर जाता है। आपके दिमाग को अनुकूल करने का प्रयास करने के पहले वह आपके दिल को अपील करने की कल्पना तक नहीं कर सकते। लेकिन इस बार उनके भाषण में मुझे हमेशा से अधिक गहरे आत्म-विश्वास का आभास मिला।

भारत की भावी स्वाधीनता में क्रिप्स ने जो योग दिया, उसका स्थान पहले ही इतिहास में सुरक्षित हो चुका था। जैसा कि लार्ड हैलीफेक्स ने कहा था, १९४२ की क्रिप्स-मिशन-योजना एक ऐसा निर्णायक कदम था, जिससे वापस नहीं लौटा जा सकता था। १९४६ के मंत्रिमंडलीय-मिशन की वह सबसे बड़ी हस्ती थे। दोनों बार की चर्चाओं में वह पूरी सहमति और निर्दोष सफलता के बहुत नजदीक पहुंच चुके थे, लेकिन आखिरी क्षण में उनके प्रयासों को निष्फल होना पड़ा था।

वह यह समझाने का प्रयत्न कर रहे थे कि प्रशासकीय और सैनिक दृष्टि से १९४८ के बाद भारत में रुके रहना असंभव है। इसके अलावा उन्होंने समय की मर्यादा पर कोई विशेष जोर नहीं दिया और न लार्ड वेवल की ही कोई चर्चा की। लार्ड वेवल के सम्बन्ध में कुछ न कहना निःसंदेह एक खेदजनक बात थी, जिससे इन दुर्भावनापूर्ण अफवाहों को बल मिला कि सरकार और लौटनेवाले वाइसराय के बीच गंभीर मतभेद हैं। क्रिप्स ने सारे भाषण में संशोधित मंत्रिमंडलीय-मिशन-योजना के लिए दरवाजा खुला छोड़ने में कोई कसर उठा नहीं रखी। अपने भाषण के अंत में उन्होंने कहा, "अब समय आ गया है, जब सारे भारत के, जिसमें दोनों सम्प्रदायवाले सब जगह फैले हुए हैं, व्यापक हितों को अलग-अलग सम्प्रदायों, अथवा उस महादेश के इस या उस भाग के संकीर्ण हितों के ऊपर प्राथमिकता दी जाय।"

विरोधी अनुदार-दल की ओर से सर जान एण्डरसन ने एक बड़ा विस्तृत संशोधन पेश किया, जिसके पक्षमें उन्होंने एक विचारोत्तेजक भाषण भी दिया। सर जान के सुझाव वास्तव में गत सप्ताह लार्ड हैलीफेक्स की कही बातों का उन बातों से मेल बैठाने का चक्करदार प्रयास था, जो अगले दिन चर्चिल कहनेवाले थे। किन्तु एन्डरसन जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति के लिए भी, जो मसविदे तैयार करने में बड़े चतुर थे, यह काफी भारी काम था। और जैसी उम्मीद थी, उन्होंने अपने-आपको सरकार की समय-मर्यादा योजना की विशद निन्दा तक ही सीमित रखा।

आज ज्यादा प्रभावशाली भाषण उन लोगों ने दिये, जो अधिकतर कार्यवाही में भाग नहीं लिया करते थे। वे अपने अनुभव से बोले और कभी-कभी पार्टी के आदेशों के विपरीत भी। इस प्रकार के बोलनेवालों में सबसे मौलिक सुझाव समाजवादी विद्रोही ज़िलियाकस का था। वह यह समझ बैठे कि भारत के अल्पसंख्यक बहुसंख्यकों की दया पर छोड़ दिये जाने के प्रति शंकित हैं और भारत इस समस्या का शास्त्रीय उदाहरण है। अंतर इतना ही था कि यहां उन्होंने मुस्लिम सम्प्रदाय को राष्ट्रीय अल्पसंख्यक से ऊंचा

लेकिन एक पृथक राष्ट्र से कम दर्जा दिया था। सोवियत-संघ का उदाहरण देते हुए उन्होंने सुझाव दिया कि भारत को संयुक्त-राष्ट्र-संघ में बहु-राष्ट्रीय सदस्यता प्रदान की जानी चाहिए, जिससे मुसलमानों को यूक्रेन के समान दर्जा प्राप्त हो जायगा और वे पृथक् सदस्य बन जायंगे।

लंदन, वृहस्पतिवार ६ मार्च, १९४७

आज जब चर्चिल ने बहस शुरू की तो हमें चिरप्रतीक्षित फुलझड़ियां देख कर बड़ी खुशी हुई। वर्षों से चर्चिल अपने स्वभावगत द्वेषों के प्रति वफादारी दिखाते आ रहे थे। हमारे समय के किसी और सार्वजनिक प्रश्न पर उनकी राय इतनी कड़ी और अपरिवर्तनशील नहीं रही थी, जितनी इस प्रश्न पर कि जिसे उनकी भारत के प्रति घृणा कहा जा सकता था।

उन्होंने १९४८ की क्रिप्स-मिशन-योजना को आधार बनाकर बोलना शुरू किया। हालांकि यह प्रस्ताव उस समय स्वीकार नहीं किया गया था, फिर भी सभा के दोनों पक्ष अब भी उससे बंधे हुए थे। मौजूदा योजना की उन्होंने यह कह कर निन्दा की कि वह उसके सिद्धांतों की "सीमा और ईमानदारी" दोनों का उल्लंघन है। उनके भाषण में वेवल की भी चर्चा आई। लेकिन वह सौहार्दपूर्ण नहीं थी। "वाइसराय लार्ड वेवल को बर्खास्त कर दिया गया है। मैं लार्ड वेवल की वकालत नहीं करूंगा। वह इच्छा या अनिच्छापूर्वक सरकार की सब गलतियों के निमित्त रहे हैं।" लेकिन वह यही कहते रहे कि मुझे पता नहीं कि इस मौके पर लार्ड वेवल को क्यों एक तरफ हटा फेंका गया है। उन्होंने जोर दिया कि जब वह वापस आवें तो उनसे व्यक्तिगत वक्तव्य देने को कहा जाय।

जहां तक नये वाइसराय का सम्बन्ध है, "क्या वह परिस्थिति को संभालने का नया प्रयत्न करेंगे, या उन्हें तथा दूसरे प्रतिष्ठित अधिकारियों को डेरा-डंडा उठाने के लिए भेजा जा रहा है? मुझे कहना पड़ता है कि सारी कार्यवाही ऐसी दिखलाई देती है कि सरकार एक विषादपूर्ण और

विनाशकारी सौदे को छिपाने के लिए युद्धकाल के हमारे तेजस्वी नेताओं का उपयोग कर रही है।"

इसके पश्चात् चर्चिल भविष्यवाणी के क्षेत्र में उतर आये—"भारत का न केवल विभाजन किया जायगा, वरन् उसको अनेक खंडों और वह भी बेतरतीब खंडों में बांट दिया जायगा। समय की मर्यादा बांधने से भारतीय दल होश में न आयंगे, वरन् अपनी मांगें बढ़ा देंगे। इन दलों के भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करने के दावे झूठे हैं। "इन तथाकथित राजनैतिक वर्गों के हाथ में भारत का शासन सौंप कर हम मिट्टी की मूरतों के हाथ में सत्ता सौंप रहे हैं। कुछ ही वर्षों के बाद इनका नाम-निशान भी न रहेगा। सरकार अपने नये काम से इस पन्द्रह महीने की मर्यादा बांध कर नये वाइसराय को अपाहिज किये दे रही है।"

भारत के लिए समय की मर्यादा का निश्चित किया जाना उन्हें अनावश्यक लगा, जबकि फिलस्तीन के लिए उसका अभाव उन्हें खटक रहा था। क्या सभा विश्वास करेगी कि आज विशाल भारत में जितनी ब्रिटिश सेना है, उससे तीन या चार गुना नन्हे से फिलस्तीन में है ? हमारी सेना के इस बंटवारे में उन्हें कोई तर्क नजर नहीं आता था। उनका एक-मात्र रचनात्मक सुझाव यह था कि सेना के बंटवारे का यह अनुपात उल्टा कर दिया जाय और बिल्कुल चर्चिलवादी ढंग से उन्होंने यह चकित करने-वाला सुझाव रक्खा कि ज़िलियाकस के सुझाव को स्वीकार कर मुस्लिम अल्पसंख्यकों की समस्या को संयुक्त-राष्ट्र-संघ के सामने रख दिया जाय। अन्त में वह इस दुखद निष्कर्ष पर पहुंचे, "ब्रिटेन को उसके शत्रुओं से तो बहुतों ने बचाया है, लेकिन खुद के खिलाफ उसे कोई नहीं बचा सकता, किन्तु कम-से-कम एक बात तो हम जरूर कर सकते हैं। ऐसी शर्मनाक भागदौड़ मचाकर और ऐसी जल्दबाजी के साथ कुसमय अपना डेरा-डंडा उखाड़कर अपने दुख के चुभते शूलों पर शर्म की कालिख तो न पोतें।"

जब एटली सरकारी पक्ष की ओर से बोलने को खड़े हुए उस समय वायुमंडल में प्रतीक्षा व्याप्त थी, जो पहले दिखलाई नहीं पड़ती थी, बल्कि

कल जब क्रिप्स बोल रहे थे, उस समय मजदूर दल के सदस्यों की कमी से मुझे आश्चर्य हुआ था। प्रश्नों के बाद वे सभी उठकर बाहर चल दिये थे और तबतक सामूहिक रूप में नहीं लौटे जबतक कि दूसरे दिन शाम को प्रधान-मंत्री ने बहस का अन्त नहीं किया।

एटली ने लोगों को निराश नहीं किया। मैंने विविध विषयों पर एटली के अनेक भाषण सुने हैं, परन्तु भारत पर, जो उनका विशेष विषय है, उनका भाषण सुनने का मेरे लिए यह पहला ही अवसर था। साइमन-कमीशन के सदस्य के रूप में उनका दो वर्ष काम करना स्पष्टतः उनके जीवन का बहुत ही प्रभावकारी अनुभव था। इतिहास की दृष्टि से साइमन कमीशन के बारे में यही सबसे खास बात थी। जो लोग चर्चिल तथा एटली के बीच का अन्तर समझने में दिलचस्पी रखते हैं, उन्हें भारतीय पहलू की प्रधानता को नहीं भूलना चाहिए।

इस अवसर पर एटली ने अपने मशहूर प्रतिद्वन्द्वी पर तर्क के इतने शक्तिशाली शस्त्र चलाए, जिनकी मैं उनसे अपेक्षा नहीं कर सकता था। उन्होंने अपने नोट अलग रख दिए और सीधे हृदय से बोलना आरम्भ किया, जिसके फलस्वरूप प्रभावशाली शब्दों का प्रवाह फूट पड़ा। इससे उनकी शैली में तो अन्तर नहीं पड़ा, किन्तु उनका भाषण असाधारण हो गया। इस व्यक्ति के अन्तस में एक आग छिपी हुई थी और एक आध्यात्मिक ईमानदारी इसको बल पहुंचाती थी। जब कभी कोई महान अवसर आ उपस्थित होता, वही ईमानदारी इसे ऊंचे उठने में सहायक होती।

चर्चिल को उन्होंने नाजुक व्यंग्यों से भेद डाला। यह एक ऐसी भिड़न्त थी, जिसे कभी-कभी साधारण जनता नहीं समझ पाती, परन्तु जो निर्णायकों की दृष्टि में विजय-सूचक होती है और संसद् के अखाड़े में बाजी मार लेती है।

एटली ने इस सिद्धांत का प्रतिवाद किया कि वेवल के व्यक्तिगत वक्तव्य देने की कोई आवश्यकता है। उन्होंने कहा, "यदि गेंद फेंकनेवाले को बदलना हो तो सदैव लम्बे-चौड़े स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं होती।"

जहां तक इस बात की आलोचना का सवाल था कि भारतीय नेताओं को सरकार में शामिल क्यों किया गया और कामचलाऊ शासन क्यों चालू रक्खा जाता है, उन्होंने कहा, "भारतीय समस्या का सार ही यह है कि वहां के राजनीतिज्ञों को यह समझने दिया जाय कि वे समस्याएं क्या हैं, जिनका सामना उन्हें आगे चलकर करना पड़ेगा।... बीते जमाने में हमने जो सुधार किये उनका सबमें बड़ा दोष यही था कि हमने जिम्मेदारी की बजाय गैर-जिम्मेदारी सिखाई है। सारे भारतीय नेता विरोधी पक्ष में रहते चले आ रहे थे। अपने लंबे अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूं कि हमेशा विरोध में बने रहना कोई अच्छी चीज नहीं है।" इसके बाद उन्होंने अल्प-संख्यकों के प्रति हमारी जिम्मेदारी का विषय छेड़ा। इस बारे में उन्होंने एक बड़ी पते की बात कही। उन्होंने कहा कि चूंकि परिगणित जातियां हिन्दू समाज-व्यवस्था का अंग हैं, इसलिए ब्रिटिश राज इच्छा रहते हुए भी उनका उत्थान नहीं कर सका। एक-दो अपवादों को छोड़कर हमारी नीति मौजूदा आर्थिक और सामाजिक ढांचे को स्वीकार कर लेने की थी।

"फिर अब, जब कि हम अपनी सत्ता समेट रहे हैं, हमसे यह क्यों कहा जाता है कि हम इन सब बुराइयों को साफ करके जायँ, नहीं तो हम जिम्मेदारी से भागने के अपराधी होंगे? यदि कोई जिम्मेदारी थी तो उसे बहुत पहले पूर्ण किया जाना चाहिए था। मूल बात यह है कि विलम्ब करने और लटके रहने में उतना ही बड़ा खतरा है, जितना कि आगे बढ़ते जाने में।" उन्होंने यह कह कर अपने भाषण को समाप्त किया, "मुझे विश्वास है, समस्त सभा नये वाइसराय और उनके मिशन के प्रति शुभ कामना प्रकट करेगी। यह विश्वासघात का नहीं, बल्कि उद्देश्य-पूर्ति का मिशन है।"

प्रधानमंत्री के भाषण और खासकर उसके आखिरी भाग ने मौन रहनेवाले उनके समर्थकों को जगा दिया। भारत के प्रति संकीर्ण और निष्क्रिय दृष्टिकोण रखनेवाले ये सदस्य उत्साह से उफन उठे। जब मत लिये गए तो ३३७ सरकार के पक्ष में और १८५ विपक्ष में आये।

हालांकि श्री एटली की यह अपील कि सभा की ओर से भारत

के नेताओं और जनता को सद्भाव का संयुक्त सन्देश भेजा जाय, दलों के आधार पर मतदान होना नहीं रोक सकी थी, फिर भी इस ऐतिहासिक बहस से यही धारणा दृढ़ होती थी कि चर्चिल की संजीदा दलीलों के बावजूद सरकार और विरोधी पक्ष के बीच की खाई बहुत ही संकरी है।

लंदन, सोमवार, १० मार्च १९४७

आमतौर पर कहा जा सकता है कि अपने-आपको आगे आनेवाले राजनैतिक काम के लिए तैयार करने में माउन्टबेटन ने बिल्कुल सिरे से शुरुआत की थी। वह भारत जा चुके हैं। पहली बार प्रिंस ऑव वेल्स की १९२१ की यात्रा के समय उनके ए. डी.सी.के रूप में गये थे, फिर, अक्टूबर १९४३ और अप्रैल १९४४ के बीच सर्वोच्च मित्रराष्ट्र कमाण्डर के रूप में नई दिल्ली उनका प्रधान कार्यालय रहा था।

दक्षिण-पूर्वी एशिया कमान पर अपने कार्यकाल के आखिरी दिनों में जवाहरलाल नेहरू से उनकी पहली मुलाकात हुई। लार्ड वेवल के सुझाव पर नेहरू प्रवासी भारतीयों को देखने मलाया गये थे। यह बहुत ही सफल और सुखद भेंट थी। मैं इस मौके पर मौजूद था और स्पष्ट था कि दोनों व्यक्तियों ने एक-दूसरे पर गहरा असर डाला था।

अपनी नियुक्ति की घोषणा होते ही माउन्टबेटन मुलाकातों और बैठकों के तांते में पड़ गए। वह सम्राट् से मिल चुके थे, जिनकी वैधानिक स्थिति पर गहरा असर पड़ा था। मंत्रिमंडल की भारत-बर्मा-कमेटी से भी वह लगातार चर्चा कर रहे थे। इस कमेटी में एटली, क्रिप्स, अलेकजेन्डर और पेथिक लारेंस सम्मिलित थे और सरकार की भारत-सम्बन्धी नीति निश्चित करने और उसके नियंत्रण का काम इसी के जिम्मे था। सेना के विभिन्न अंगों के प्रमुखों और इंडिया आफिस के विशेषज्ञों से भी विस्तार में चर्चाएं हो चुकी थीं।

सबसे अधिक ध्यान दिया गया था गवर्नर जनरल को दिये जाने वाले

आदेश-पत्र के संशोधन के प्रश्न पर। यह आदेश-पत्र सरकारी निर्देशों का लेखा होता था, जिनपर अमल करना गवर्नर-जनरल का कर्त्तव्य था। अपने लिए नया आदेश-पत्र जारी करवाने में माउन्टबेटन का काफी हाथ था। उन्होंने सुझाव दिया कि श्री एटली की ओर से उनको लिखे गए एक पत्र के रूप में यह आदेश-पत्र दिया जाय।

यह स्वीकार हो जाने पर उसका मसविदा तैयार करने में भी उनका काफी हाथ रहा। आदेश-पत्र में नीति-सम्बन्धी निम्नलिखित लक्ष्य उनके पथ-प्रदर्शन के लिए शामिल किये गए :

१. ब्रिटिश सरकार का निश्चित उद्देश्य ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों को मिलाकर एक एकात्मक-सरकार की स्थापना करना है। इस सरकार की स्थापना मंत्रिमंडल-मिशन-योजना के अनुसार विधान-सभा द्वारा की जायगी और जहां तक संभव होगा यह सरकार "ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अन्तर्गत" रहेगी। ये शब्द "ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अन्तर्गत" माउन्ट-बेटन के विशेष आग्रह पर जोड़े गए। उनकी धारणा थी कि उन्हें ऐसा हल निकालने का प्रयास करना चाहिए जिससे इतनी सद्भावना पैदा हो कि भारतीय दल राष्ट्रमंडल के अन्तर्गत रहना पसन्द करें।

२. चूंकि मंत्रिमंडल-मिशन-योजना दोनों बड़े दलों की रजामन्दी से ही ब्रिटिश भारत में लागू होगी, इसलिए किसी भी दल पर उसके स्वीकार करने के लिए जोर डाले जाने का सवाल नहीं उठता। यदि १ अक्तूबर तक माउन्टबेटन को ऐसा लगे कि एक सरकार के आधार पर समझौता होने की कोई संभावना नहीं है तो वह ब्रिटिश सरकार के सामने सुझाव रक्खें कि निश्चित तिथि पर सत्ता हस्तांतरण किये जाने के लिए क्या कदम उठाए जाने चाहिए।

३. देशी राज्यों से उनके सम्बन्ध के विषय में पथ-निर्देश करते हुए श्री एटली ने यह आदेश दिया—जिन राज्यों में राजनैतिक प्रगति धीमी रही है, उनके शासकों को इस बात पर राजी करें कि वे अपने राज्यों में किसी प्रकार की लोकतन्त्री सरकार की स्थापना के लिए तेजी से आगे बढ़ें

और ब्रिटिश भारत के नेताओं से अपने भविष्य के बारे में उचित सम्बन्ध कायम करें।

४. जहां तक ब्रिटिश भारत के शासन का सवाल है, उनका मूलमंत्र भारतीयों के साथ अधिकाधिक सहयोग होना चाहिए।

५. सत्ता-हस्तांतरण का काम भारतीय सुरक्षा की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए किया जाय और भारतीय नेताओं को भारतीय सेना की अखंडता कायम रखने का महत्व समझाया जाय और बतलाया जाय कि हिन्द महासागर की सुरक्षा के लिए संयुक्त प्रयत्न जारी रखने की आवश्यकता है।

एटली के पत्र में जितने महत्वपूर्ण आदेशों का उल्लेख है उतने महत्वपूर्ण आदेश शायद ही पहले कभी किसी सरकार द्वारा किसी वाइसराय को दिये गए हों।

लंदन, मंगलवार, ११ मार्च १९४७

मुलाकातों के तांते में माउन्टबेटन ने विरोधी नेताओं को सम्मिलित करने का विशेष ध्यान रक्खा है। इसमें से कुछ चर्चाएं बिल्कुल खानगी और अनौपचारिक रहीं। आज रात को वह लार्ड सेमुअल से पहली भेंट करने के लिए मेरे निवास-स्थान पर आये। लार्ड सेमुअल कुछ मिनट पहले आ गये, माउन्टबेटन बिल्कुल समय पर आये।

उन्होंने जोर देकर लार्ड सेमुअल को यह समझाने का प्रयत्न किया, कि जहां तक उनकी नियुक्ति का सवाल है, उसे बादशाह की हार्दिक स्वीकृति प्राप्त है। बादशाह ने उनसे व्यक्तिगत अनुरोध किया था कि वह राष्ट्रीय कर्त्तव्य समझकर इसे स्वीकार कर लें। एटली ने इस विषय में सारी आवश्यक औपचारिकता पूरी की थी और विरोधी दल का कहना बिल्कुल गलत था कि यह नियुक्ति केवल प्रधानमंत्री ने ही की थी। उन्होंने कहा कि मेरी समझ में नहीं आता कि समय की मर्यादा का विकल्प क्या था? जून,

१९४८ भले ही लम्बी अवधि न हो, परन्तु इसकी सिफारिश स्वयं वेवल ने की थी। अपना व्यक्तिगत मत देते हुए उन्होंने कहा कि उस समय सत्ता ग्रहण करना सबसे अच्छा होगा, जबकि देश में उत्तेजना सबसे कम हो। बंगाल और बिहार हाल के उपद्रवों के बाद लगभग शान्त हो गए हैं, किन्तु पंजाब में संकट अनिवार्य प्रतीत होता था।

कुछ समय से पंजाब की स्थिति में बहुत तनाव था। मिली-जुली सरकार के मुस्लिम प्रधानमंत्री मुस्लिम लीगियों के हाथों हत्या से बचने के लिए पांच महीनों से रात को इस घर से उस घर में छिपते फिरते थे। माउन्टबेटन को लगता था कि शायद सीमाप्रान्त में भी संकट पैदा होगा।

उन्होंने वह चेतावनी दुहराई, जो उन्होंने सर ह्यूबर्ट रेन्स को बर्मा के गवर्नर का पद सम्भालने के पूर्व दी थी। उन्होंने कहा था कि रेन्स को तबतक प्रतीक्षा करनी चाहिए, जबतक कि रंगून की स्थिति भयानकतम रूप धारण नहीं कर लेती। परन्तु यह कर्त्तव्य की भावना से जल्दी चले गए। फलतः रंगून की हड़ताल के कुछ दिन पूर्व वहां पहुंचे। इससे हड़ताल का कुछ दोष उनके सिर पर भी मढ़ा गया। माउन्टबेटन ने कहा, "जहां तक मेरा सम्बन्ध है, कोई भी मुझे भारत के वर्तमान उपद्रवों के लिए जिम्मेदार नहीं समझेगा। यह मेरे लिए अगली चर्चाओं की दृष्टि से एक बड़ी सुविधा की बात है।"

उन्होंने सलाह मांगी कि उन्हें भविष्य में किस दिशा का आन्दोलन करना चाहिए। बाद में अपने प्रश्न का उत्तर स्वयं ही देते हुए और मन-ही-मन सोची बात को शब्दों में व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा, "मैं खास-खास नेताओं के साथ शिमला में एक सप्ताह तक व्यक्तिगत रूप से बातचीत करना पसन्द करूंगा। इससे बिल्कुल स्पष्ट और बेलाग विचार-विनिमय का अवसर मिलेगा।" सेमुअल अधिकतर सुनते रहे, परन्तु उन्होंने सत्ता हस्तांतरण के बाद सम्राट की सरकार के साथ वैधानिक संबंध कायम रखने की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि वाइसराय के पद को कायम रखकर भी शायद ऐसा करना अनुचित न होगा।

मुझे इस भेंट की व्यवस्था करने में बड़ी खुशी हुई, क्योंकि उम्र और दृष्टिकोण के स्पष्ट अन्तर के बावजूद इन दोनों व्यक्तियों में बहुत-कुछ साम्य था। लार्ड-सभा में सेमुअल का प्रभाव बहुत अधिक है और आगे आनेवाले महीनों में उनकी सद्भावना लार्ड-सभा में उदार दल की शक्ति की तुलना में कहीं अधिक मूल्यवान सिद्ध होगी।

लंदन, वृहस्पतिवार, १३ मार्च १९४७

शायद माउन्टबेटन की सबसे जटिल प्रारम्भिक कठिनाई यह है कि भारत के लिए रवाना होने से पहले भारतीय सिविल और सैनिक कर्मचारियों के (जिन्हें सेक्रेटरी ऑव् स्टेट की सर्विस भी कहते हैं) मुआवजे के प्रश्न पर एक ऐसी नीति कैसे तय करें, जिसे सबका समर्थन प्राप्त हो। इस प्रश्न पर शुरू से ही उन्होंने अपने विचार अपने विशिष्ट उत्साह और दृढ़ता के साथ जाहिर किये थे। जिस हल पर वह आग्रह कर रहे थे, वह आज आखिरी तौर से स्वीकार कर लिया गया था।

जहां तक सेक्रेटरी ऑव् स्टेट की सर्विसों (कर्मचारियों) का प्रश्न है, शुरू-शुरू में उनसे तीन खास वादे किये गए थे। पहला यह कि वैधानिक परिवर्तनों के कारण उनकी नौकरी खत्म होने पर उन्हें एकमुश्त मुआवजा दिया जायगा, जिसकी दरें युद्धकालीन नौकरियों के मुआवजे से किसी हालत में कम न होंगी। इसका मतलब यह हुआ कि उन्हें एकमुश्त उससे कहीं बड़ी रकम मिलेगी, जितनी उन्हें स्वेच्छा से अवकाश ग्रहण करने पर प्राप्त होती। दूसरा यह कि वे नई भारत सरकार के अन्तर्गत काम करना चाहें या न चाहें, सेक्रेटरी ऑव् स्टेट के साथ उनके संबंध खत्म हो जायंगे। इसलिए मुआवजा उन्हें हर हालत में मिलेगा। तीसरा यह कि नई सरकार के अन्तर्गत काम करने के लिए उनपर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला जायगा और यदि नई भारत सरकार इस दृष्टि से उनके लिए नीची दरें तय करने की कोशिश करेगी तो उसका हर प्रकार से विरोध किया जायगा।

इसमें यूरोपीय और भारतीय कर्मचारियों के बीच किसी प्रकार का भेद नहीं किया जायगा।

भारत के गृहमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने जल्दी ही यह स्पष्ट कर दिया कि वह मुआवजा देने के सिद्धांत और शर्तें दोनों के ही बिल्कुल खिलाफ हैं। उन्होंने कहा कि नई सरकार को अपनी पूर्वगामी सरकार के वादों से नहीं बांधा जा सकता, क्योंकि पूर्वगामी सरकार ब्रिटिश पार्लमेंट और सेक्रेटरी ऑव् स्टेट के नियंत्रण में काम करनेवाली सरकार थी। उन्होंने कहा कि यदि मुआवजे की दर इस आधार पर ठहराई गई कि वह युद्धकालीन नौकरियों के मुआवजे से कम न होगी तो ब्रिटिश सरकार को उसका भुगतान करना पड़ेगा। भारतीय मामलों के पार्लमेंटरी अन्डर-सेक्रेटरी आर्थर हेन्डरसन जनवरी में सरदार पटेल को समझाने और इस योजना के लिए राजी करने का निष्फल प्रयास करने दिल्ली गये। इस असफलता से माउन्टबेटन ने अपना विचार नहीं बदला। उन्होंने इस बात पर बहुत जोर दिया कि मूल-योजना को इस शर्त के साथ स्वीकार किया जाय कि वह सिर्फ अंग्रेजों पर लागू होगी। अगर भारत सरकार भुगतान न करे तो उन्हें यह कहने का अधिकार दिया जाय कि उसे देने की जिम्मेदारी ब्रिटेन की सरकार लेगी। यह स्पष्ट कर दिया गया कि यदि अकेले ब्रिटिश सरकार को यह बोझा उठाना पड़ा तो भारतीय पौंडपावने की रकम को तय करते समय इस खर्चे को ध्यान में रक्खा जायगा।

: ३ :

भारत में पहला सप्ताह

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
शनिवार, २२ मार्च १९४७

ठीक १२-३० बजे दोपहर हम पालम के हवाई अड्डे पर उतरे। प्रधान सेनापति फ़ील्ड मार्शल आचिन्लेक हमारा स्वागत करने हवाई अड्डे पर मौजूद थे। यह उनका सौजन्य था, क्योंकि दो घंटे बाद ही माउन्टबेटन का स्वागत करने उन्हें फिर हवाई अड्डे पर आना था। अपने सामान की चिन्ता किये बिना हम वाइसराय भवन की विशाल मोटरों में सवार होकर चल पड़े। शानदार जीवन का सुखद वर्ष प्रारम्भ हो गया।

वाइसराय भवन में पहुंचते ही हमें बतलाया गया कि हमें वेवल-परिवार के साथ भोजन करना है। वाइसराय के नाते यह उनकी अन्तिम दावत है। यह विश्वास करना कठिन है कि कल सवेरे ही वह यहां से प्रस्थान करनेवाले हैं। कैसा अजीब संयोग है कि पहली बार मैं १९ अक्टूबर १९४३ को दिल्ली आया था—वेवल द्वारा लिनलिथगो से पद का भार लेने के ठीक एक दिन बाद।

तीसरे पहर मुख्य सहन और वाइसराय-भवन के दरबार हाल को जानेवाली सीढ़ियों पर बड़ी चहल-पहल थी। गवर्नर-जनरल के सवारों और रक्षकों के साथ माउन्टबेटन खुली बग्घी में बैठकर पौने चार बजे वहां पहुंच गये। लाल मखमल बिछी हुई सीढ़ियां चढ़ते हुए वे ऊपर पहुंचे, जहां वेवल-दम्पति ने उनका स्वागत किया। काफी देर तक वे वहां खड़े बातें करते रहे, जिससे सर्वव्यापी फोटोग्राफर उनके चित्र खींच सकें।

रात के भोजन के पहले और बाद में वेवल और माउन्टबेटन के बीच विचार-विमर्श जारी रहा। वाइसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी जार्ज एबेल के

शब्दों में उन्होंने कूटनीति के विषय में चर्चा की। माउन्टबेटन ने वेवल से भारतीय समस्या के बारे में सारी जानकारी प्राप्त करने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

बिना जरा भी समय नष्ट किये माउन्टबेटन ने गांधीजी और जिन्ना को दो सीधे-सादे पत्र भेजकर आशा प्रकट की कि दोनों नेता जल्दी ही उनसे मिलने आ सकेंगे। जहां तक गांधीजी का सम्बन्ध था वह उनके बिहार में रहने का मूल्य समझते थे। गांधीजी बिहार के दंगाग्रस्त इलाकों का दौरा कर रहे थे। गांधीजी इतने व्यस्त थे कि इस बात में भी शक था कि सोमवार से लाल किले की छाया में प्रारम्भ होनेवाले एशियाई सम्मेलन में भाग लेने दिल्ली आयंगे।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
रविवार, २३ मार्च १९४७

सवेरे ठीक सवा आठ बजे वेवल-दम्पति ने प्रस्थान किया। आज का दिन निश्चय ही हमारे लिए चैन का दिन नहीं था। कल के शपथ-विधि-समारोह के प्रचार के विषय में काफी प्रशासकीय घबराहट दृष्टिगोचर हो रही थी। माउन्टबेटन के निवास में जाकर मैंने मनोनीत वाइसराय से कल के समारोह के बारे में चर्चा की।

माउन्टबेटन को नई बात सूझी है—शपथ-विधि के समय उनका छोटा-सा भाषण। जार्ज एबेल का तैयार किया पहला मसविदा उन्होंने मुझे पढ़कर सुनाया। मेरा ख्याल था कि भाषण का विचार और मौका दोनों उपयुक्त हैं। शाम के भोजन के समय स्वयं माउन्टबेटन द्वारा सुधारा गया मसविदा मेरे सामने आया। इसके एक वाक्य से मुझे चिन्ता हुई। ब्रिटिश सरकार के इस निश्चय पर टीका करने के बाद कि सत्ताहस्तांतरण का काम जून १९४८ तक पूरा हो जायगा, उन्होंने कहा, "अगर छः महीने के पूर्व कोई हल नहीं निकलता तो उसे कार्यरूप में परिणत करने के लिए

काफी समय नहीं रह जायगा।" मुझे लगा कि इन शब्दों को गलत समझा जा सकता था और इसका यह भी अर्थ निकाला जा सकता था कि समय-मर्यादा से बचाव का यह एक तरीका है। माउन्टबेटन की पहली प्रतिक्रिया तो यह हुई कि चूंकि सरकार ने उन्हें अक्तूबर तक प्रगति की रिपोर्ट देने का अधिकार सौंपा था, इसलिए इसे अभी से कह देने में क्या हर्ज था ?

अभी दिन का ठीक एक बजा था और एक ए.डी.सी. ने आकर खबर दी कि वाइसराय महोदय ने अपना भाषण दोहरा लिया है और उसे पत्रों को देने के लिए उन्हें क्या करना होगा ? मुझे यह देखकर राहत मिली कि वह खतरनाक वाक्य उसमें से गायब था।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
सोमवार, २४ मार्च १९४७

शपथ-विधि के लिए तड़के ही उठ बैठा। इसका स्वरूप वेवल की शपथ-विधि के समान था, जो मैं १९४३ में दरबार हाल में देख चुका था। छत से बजनेवाली वही तुरही, जो समारोह की सूचक थी, इकट्ठे ए. डी. सी. लोगों का वही जलूस, जिसके साथ चलकर 'हिज़ एक्सेलेंसी' अपने सिंहासनों के पास पहुंचे। इस सब शान-शौकत के बीच माउन्टबेटन ऐसे फबते थे मानो इसीके लिए पैदा हुए हों। 'नाइट ऑव् गार्टर' का गहरा नीले रंग का फीता और सीने पर सम्मान के अन्य तमग़े और पट्टियां पहने लार्ड माउन्टबेटन बहुत प्रभावशाली लग रहे थे।

लेडी माउन्टबेटन सुकुमारता की साकार प्रतिमा प्रतीत हो रही थीं। नये ताज के अलावा वह अपने सब युद्धकालीन तमग़े और अन्य सम्मानीय फीते सफेद ज़री की पोशाक के ऊपर लगाये हुए थीं। कीमती लाल मखमल के पर्दों के अन्दर छिपी हुई बत्तियों के हलके प्रकाश में लाल और सुनहला काम किये हुए सिंहासन बड़े भले प्रतीत हो रहे थे।

भारत के सर्वोच्च न्यायाधीश ने माउन्टबेटन को शपथ दिलाना

शुरू किया। माउन्टबेटन उनके कहे को दोहराते गए और अपने लम्बे नाम को बोलने में एक बार भी नहीं अटके।

पूरा समारोह चौथाई घंटे में समाप्त हो गया। माउन्टबेटन के भाषण में केवल चार मिनट लगे। सिंहासनों के दोनों ओर नये भारत के नेता खड़े थे, जिनके कन्धों पर आनेवाले सप्ताहों में इतनी भारी जिम्मेदारी पड़नेवाली थी। मैंने देखा कि नेहरू और लियाकतअली दोनों ने भाषण को बड़े गौर से सुना। इस भाषण से उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ।

दो महत्वपूर्ण लोग इस समारोह से गैरहाजिर थे—और शायद बिना कोई वजह बतलाए। ये थे नवाब भोपाल और महाराजा बीकानेर। नवाब भोपाल और महाराजा बीकानेर दोनों माउन्टबेटन के पुराने दोस्त थे। राजा लोग समारोहों से सम्बन्धित शिष्टाचार को, और खासकर वाइसराय से सम्बन्धित समारोह को बहुत महत्व देते थे। यह बातें ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता था कि उनकी अनुपस्थिति उनके बीच पैदा हुई फूट और संघर्ष का अच्छा-खासा संकेत था।

माउन्टबेटन ने आज तीसरे पहर तीन घंटे नेहरू और दो घंटे लियाकत-अली के साथ बिताए। उन्होंने लियाकत के बजट पर चर्चा की, जो इस समय दोनों दलों के बीच झगड़े का कारण बना हुआ था। वेवल ने माउन्टबेटन को चेतावनी दी थी कि जब वह अपनी कार्यकारिणी कौन्सिल की पहली बैठक की अध्यक्षता करेंगे तो उन्हें इस पेचीदा समस्या से निबटना पड़ेगा। अन्त-रिम सरकार के वित्तमंत्री के नाते सब बड़ी आमदनियों पर भारी कर लगाने का प्रस्ताव कर लियाकत ने कांग्रेस को बड़ी मुसीबत में डाल दिया था। अपने धनी समर्थकों को बचाने के लिए अब उसे अपनी प्रगतिशील और समतावादी घोषणाओं के प्रतिकूल उनके लिए राहत की मांग करनी पड़ेगी। आम भावना यह थी कि कोई समझौते का रास्ता निकल आयगा, क्योंकि अपने धनी समर्थकों पर कर लगाने में मुस्लिम लीग और कांग्रेस, दोनों ही एक सीमा के आगे नहीं जा सकेंगी।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
मंगलवार, २५ मार्च १९४७

मैंने माउन्टबेटन के कर्मचारी-मंडल की पहली बैठक में भाग लिया, जिसमें इस्मे, मेविल, जार्ज एबेल, ब्रोकमेन, अर्सकिन क्रम और मैं सम्मिलित हुए। माउन्टबेटन का इरादा था कि प्रतिदिन ऐसी अनौपचारिक बैठक हुआ करेगी, जिससे वह अपने विचारों को बिना किसी छिपाव के सबके सामने रख सकेंगे। माउन्टबेटन ने कल नेहरू और लियाकत से हुई मुलाकातों का मजेदार विवरण सुनाया। महाराज बीकानेर और नवाब भोपाल से हुई मुलाकत की बात भी उन्होंने बतलाई, जो शपथ-समारोह के समय अपनी गैरहाजिरी की सफाई देने आये थे।

नवाब भोपाल और महाराज बीकानेर की मुलाकातों से राजाओं में फैली फूट की गम्भीरता का पता चला। इससे नवाब भोपाल बहुत दुखी थे। उन्हें लगता था कि महाराज बीकानेर तथा उनके समान अन्य विद्रोही विधान-सभा में भाग लेकर कांग्रेस की कठपुतली बन रहे थे और रियासतों की सौदा करने की ताकत को क्षीण किये दे रहे थे। नवाब भोपाल का विचार था कि समय की मर्यादा का पालन करना असंभव होगा और यदि इसपर अमल किया गया तो खून-खराबी और अव्यवस्था फैलेगी। उन्होंने बड़ी चिंता से माउन्टबेटन से पूछा कि क्या इससे बचने का कोई रास्ता है। माउन्टबेटन ने कहा कि इससे बचने का एक सिर्फ एक ही रास्ता है, और वह यह कि सारे भारतीय दल हमसे यहीं बने रहने को कहें, जिसकी बहुत ही कम आशा की जा सकती थी। नवाब भोपाल का ख्याल था, जैसे-जैसे समय बीतता जायगा, ऐसा निमंत्रण आ भी सकता है।

माउन्टबेटन ने महाराज बीकानेर से भी इस बारे में चर्चा की। महाराज बीकानेर का ख्याल ऐसा नहीं था। उन्होंने तथाकथित 'विद्रोही' राजाओं का समर्थन किया। उन्होंने फूट को दुर्भाग्यपूर्ण बतलाते हुए इस बात पर जोर दिया कि नवाब भोपाल ने ही अन्तरिम सरकार के प्रति अपने रुख से राजाओं के बीच साम्प्रदायिकता को उभाड़ा है। 'विद्रोही' राजा

विधान-सभा में भाग लेकर नये केन्द्रीय शासन को अपार बल पहुंचायंगे और यह प्रयास करेंगे कि वह पूर्णतः कांग्रेसी-शासन न बन जाय।

नेहरू के साथ माउन्टबेटन की पहली मुलाकात बहुत महत्वपूर्ण थी। नेहरू ने मंत्रिमंडल-मिशन के बाद की सब बड़ी घटनाओं पर अपनी राय दी। माउन्टबेटन का ख्याल था कि नेहरू का दिया व्यौरा काफी सही था और उस जानकारी से मेल खाता था, जो उन्होंने लन्दन में प्राप्त की थी। नेहरू की राय में लार्ड वेवल ने एक भारी भूल की थी। उन्हें मुस्लिम लीग को अन्तरिम सरकार में शामिल होने का बुलावा न देकर थोड़ा इन्तजार करना चाहिए था। मुस्लिम लीग शामिल किये जाने की खुद मांग करती। उन्होंने मुस्लिम लीग की एक खानगी बैठक का ज़िक्र किया, जिसमें जिन्ना पहले ही इस प्रश्न पर घुटने टेक चुके थे।

माउन्टबेटन ने नेहरू से पूछा कि जिन्ना के बारे में उनकी क्या राय है। नेहरू ने याद दिलाई कि अपनी नई पुस्तक में वह इस पर प्रकाश डाल चुके हैं। फिर भी उन्होंने जिन्ना के व्यक्तित्व के बारे में अपना मार्मिक विश्लेषण उपस्थित किया। नेहरू ने कहा कि जिन्ना के बारे में समझने की खास बात यह है कि वह एक ऐसे इंसान हैं, जिन्हें जीवन में बहुत देर में सफलता मिली—६० वर्ष के बाद! इसके पहले वह भारतीय राजनीति की कोई बड़ी हस्ती न थे। वह सफल वकील थे, लेकिन कोई खास अच्छे नहीं। उनको जो सफलता मिली थी, वह मुख्यतः उत्तेजनाजन्य थी और काफी बड़ी थी। उनकी सफलता का रहस्य यह था कि उनमें स्थायी रूप से नकारात्मक दृष्टिकोण पर जमे रहने की क्षमता थी। यही बात वह बड़े एकांगी दिमाग से १९३५ से करते आ रहे हैं। वह बखूबी जानते थे कि पाकिस्तान रचनात्मक आलोचना के सामने ठहर नहीं सकता और उन्होंने यह व्यवस्था कर ली थी कि उसे रचनात्मक आलोचना का सामना नहीं करना पड़ेगा।

फिर माउन्टबेटन ने नेहरू से पूछा कि उनकी राय में आज भारत की सबसे बड़ी समस्या क्या है। नेहरू ने तुरन्त उत्तर दिया—आर्थिक। इस पर माउन्टबेटन ने पूछा कि जिस ढंग से अन्तरिम सरकार इस समस्या से

निबट रही है, क्या वह उससे सन्तुष्ट हैं ? नेहरू ने कहा, "नहीं।" लेकिन स्थिति मुस्लिम लीग ने असंभव बना रखी थी, जो केन्द्र की ओर से की जाने वाली आर्थिक योजना की हर कोशिश को नाकाम करने पर तुली हुई थी। अगर ये योजनाएं सफल हो गईं तो वास्तव में पंजाब के बारे में पाकिस्तान का दावा कमजोर पड़ जायगा। नेहरू ने सुझाव रक्खा, जो वह पहले भी रख चुके थे कि पंजाब का शासन साम्प्रदायिक आधार पर तीन भागों में बांट दिया जाय। इनकी एक केन्द्रीय कमेटी भी रहे, जो बड़े और असाम्प्रदायिक मसलों कि देखरेख करे। वेवल द्वारा इस महीने के आरम्भ में पंजाब पर लागू धारा ९३[1]के अन्तर्गत उत्पन्न गति-अवरोध को मिटाने का उनकी राय में यही एकमात्र ढंग है।

सत्ता-हस्तांतरण के बाद भारतीय सिविल सर्विस के कर्मचारियों को दिये जानेवाले मुआवजे का पेचीदा सवाल भी इस मुलाकात में उठाया गया। नेहरू का विचार था कि जिन कर्मचारियों को अपने पदों पर बने रहने का न्यौता दिया जा रहा था, उन्हें मुआवजा देने की इच्छा करना पागलपन था। नई सरकार उन्हें पहले की ही शर्तों पर काम पर रखने का वचन देगी। माउन्टबेटन ने कहा कि ब्रिटिश सरकार अपने वादों से कैसे मुकरेगी ? नेहरू ने कहा कि जहां तक ब्रिटिश लोगों का सवाल था, वह ब्रिटिश सरकार की जिम्मेदारी है। फिर भी, उन्हें इतने भारी मुआवजे क्यों दिये जाने चाहिए। इससे उनको अपनी नौकरियां छोड़ने का ही प्रोत्साहन मिलेगा। और भारतीयों के बारे में नेहरू ने कहा कि यहां स्थिति यह है कि वे अपने देशवासियों की सेवा ही करते रहेंगे। अभी जो योजना थी, वह वास्तव में प्रमादपूर्ण थी। फिर भी, माउन्टबेटन ने दृढ़ता से इस पर उनके समर्थन की मांग की। उन्होंने कहा कि शायद नेहरू ने ब्रिटिश

१. यहां इशारा भारत सरकार के १९३५ के विधान की धारा ९३ से है, जिसके अन्तर्गत वाइसराय और प्रान्तों के गवर्नरों को यह अधिकार था कि किसी प्रकार की सार्वजनिक गड़बड़ होने पर वे विशेषाधिकारों का उपयोग कर स्वयं शासन की बागडोर संभाल सकेंगे।

जनता की मनः-स्थिति को गलत समझा है। मुआवजे की दर जितनी ऊंची होगी और शर्तें जितनी स्पष्ट, ब्रिटिश सिविल सर्विस कर्मचारियों द्वारा अपने पदों पर काम करते रहने की संभावना भी उतनी ही अधिक होगी।

माउन्टबेटन की राय थी कि नेहरू ने बहुत ही स्पष्टवादिता और न्याय की भावना दिखलाई, बल्कि उन्होंने एक जगह यह सुझाव देकर माउन्टबेटन को चकित कर दिया कि एक ऐसे आंग्लभारतीय संघ की स्थापना हो, जिसमें नागरिक समता हो। यह सम्बन्ध वास्तव में राष्ट्रमंडल के दर्जे से कहीं निकट का था। और राष्ट्रमंडल के दर्जे को नेहरू मनोविज्ञान और भावना की दृष्टि से अमान्य समझते थे।

मुलाकात की समाप्ति पर जब नेहरू चलने को हुए तो माउन्टबेटन ने उनसे कहा, "मि. नेहरू, आप मुझे ब्रिटिशराज का बोरिया-बिस्तर समेटनेवाला अन्तिम वाइसराय न समझकर नये भारत का मार्ग प्रशस्त करनेवाला पहला वाइसराय समझें।" नेहरू ने बड़ी भावुकता के साथ पलटकर देखा और फिर मुस्कराते हुए बोले, "अब मैं समझा कि आपके जादू को लोग इतना खतरनाक क्यों बतलाते हैं।"

लियाकतअली ने चर्चा के समय माउन्टबेटन के शपथ-विधि के समय दिये गये भाषण के बारे में प्रश्न पूछा। वह जानना चाहते थे कि यह किसकी सूझ थी। माउन्टबेटन ने कहा कि इसका उत्तर तो वह तत्काल दे सकते हैं। यह बिल्कुल उनकी सूझ थी और इसके पीछे किसी का हाथ नहीं था, बल्कि मेरे स्टाफ के कुछ लोग इसके खिलाफ ही थे। लियाकत ने कहा, "यह सुनकर मुझे खुशी हुई, क्योंकि कम-से-कम तीन बड़े ओहदेवाले और जानकार क्षेत्रों ने मुझे विश्वास दिलाया था कि आपने यह भाषण कांग्रेस के अनुरोध पर दिया था।" जिस साम्प्रदायिक सन्देह का वातावरण फैला हुआ था, यह छोटी-सी घटना उसका अच्छा उदाहरण था। कोई भी पक्ष अपने विरोधी पक्ष को नीचे गिराने के किसी मौके को हाथ से नहीं जाने दे रहा था।

नेहरू के पंजाब से सम्बन्धित सुझावों के बारे में सबसे मजेदार

प्रकाश पड़ा पंजाब के गर्वनर सर ईवान जेनकिन्स के तार से। जेनकिन्स ने सूचित किया था कि एक प्रभावशाली सिख नेता ज्ञानी करतारसिंह ने कहा है कि अगर कांग्रेस और लीग के बीच ऐसा समझौता नहीं हुआ, जो सिखों को मन्जूर हो, तो सिख लोग पंजाब के विभाजन की मांग करेंगे। इस बीच वे अपनी सारी शक्ति लगाकर वहां मुस्लिम लीग का मंत्रिमंडल बनाये जाने की हर कोशिश का विरोध करेंगे। इस भाषण का महत्व इस बात से और भी बढ़ जाता था कि सिखों ने पंजाब के विभाजन के बारे में एक प्रस्ताव पेश करने के लिए कांग्रेस को राजी कर लिया था। इसे वेवल ने माउन्टबेटन के आने के एक सप्ताह पहले स्वीकार भी कर लिया था।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
बुधवार, २६ मार्च १९४७

माउन्टबेटन ने कल रेलवे मंत्री डा. जान मथाई, राजनैतिक विभाग के सेक्रेटरी कोरफील्ड और सरदार पटेल से भेंट की। मथाई ईसाई हैं और किसी भी अर्थ में किसी दल के आदमी नहीं हैं। मथाई का कहना था कि आज की परिस्थिति की सबसे डरावनी बात यह है कि जो लोग बीच का रास्ता अपनाने की कोशिशि कर रहे हैं, धीरे-धीरे उनका प्रभाव कम होता जा रहा है और दोनों दलों में उनके प्रति अविश्वास और नापसन्दगी बढ़ती जा रही है। मथाई ने कहा कि उदाहरण के लिए मैंने लियाकत के बजट का भरसक समर्थन किया, पर देखता क्या हूं कि 'डॉन' मेरे ऊपर बुरी तरह से बरस पड़ा है।

वाइसराय यहां ताज के प्रतिनिधि हैं। इस नाते कोरफील्ड का काम उन्हें देशी राज्यों के बारे में हर प्रश्न पर वैधानिक सलाह देना था। कोरफील्ड ने किंचित कटुता के साथ कहा कि महाराज बीकानेर ने विधान-सभा में प्रवेश कर राजाओं की सौदा करने की ताकत बुरी तरह कमजोर कर दी है। इस विवाद में कोरफील्ड साफतौर से नवाब भोपाल के हामी

थे। सत्ता-हस्तांतरण में वह राजाओं को एक भावी तीसरी शक्ति के रूप में देखते थे।

सरदार पटेल से अपनी मुलाकात के बारे में माउन्टबेटन जरा शंकित थे। सरदार पटेल कांग्रेस हाई कमान्ड के लौह पुरुष के रूप में विख्यात थे। लेकिन सरदार पटेल की आंखों में हँसी की चमक देखने में उन्हें देर नहीं लगी। सारी समस्या के बारे में उनका दृष्टिकोण साफ और अटल था। भारत को मुस्लिम लीग से पीछा छुड़ाना ही पड़ेगा। लीग वास्तव में पंजाब की घटनाओं के बारे में घमन्ड से छाती फुलाए घूम रही थी। जरूर उसका दिमाग खराब था। जबतक उन्होंने मुआवजे की समस्या पर हाथ नहीं रखा तबतक तो शान्ति रही, लेकिन इसकी चर्चा छिड़ते ही पटेल ने हाथ ऊंचाकर कसम खाई कि यदि किसी भारतीय ने मुआवजा लेना मंजूर किया तो उसे फिर कभी नौकर नहीं रखा जायगा।

भारतीय सिविल सर्विस के मारिस ज़िनकिन के यहां रात के खाने पर के. एम. पणिक्कर भी मौजूद थे।

मैंने उनसे पूछा, "अगर आप माउन्टबेटन की जगह होते तो क्या करते?" उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया कि नौसेना की युद्ध-नीति में निपुण माउन्टबेटन को समझना चाहिए कि ब्रिटेन का हित एक ठोस केन्द्रीय राज्य का निर्माण करने में ही है। यह भारत के विशाल समुद्रतट, तीस करोड़ से अधिक आबादी और भौगोलिक एवं धार्मिक एकता पर आधारित होना चाहिए। उन्होंने कहा कि भारत हाथी है और पाकिस्तान उसके दो कान हैं। हाथी अपने कानों के बिना भी काम चला सकता है। बिना लाग-लगाव के उन्होंने स्वीकार किया कि जिन्ना की मांग मूलत: तर्क-संगत है। चार कमरों वाले घर में से वे केवल एक कमरा ही मांग रहे हैं। लेकिन वह चाहते सिर्फ यही हैं कि इस कमरे में किसी और का दखल न रहे। स्थानीय मुस्लिम बहुमत को वह एक केन्द्रित और मजबूत हिन्दू सरकार के हाथों नहीं सौंपना चाहते। पणिक्कर का विचार यही था कि भारत बुनियादी तौर से जितनी एकता चाहता है उससे बड़ी एकता हमें उसपर नहीं

लादना चाहिए। पंजाब के बारे में नेहरू के त्रि-दली सुझाव कांग्रेस द्वारा हिन्दुस्तान–पाकिस्तान विभाजन स्वीकार किये जाने का पहला संकेत है। सिखों के साथ उन्हें जो अनुभव हुआ था उससे जिन्ना समझ गये होंगे कि पंजाब की एकता बिल्कुल असंभव थी ।

फिर उन्होंने राजाओं की समस्या की चर्चा छेड़ी। बीकानेर के दीवान और प्रमुख सलाहकार के नाते पणिक्कर का पद बड़े महत्व का था। उन्होंने और जयपुर के दीवान सर वी. टी.कृष्णमचारी ने राजपूताने के राजाओं की तरफ से पहल की थी। पणिक्कर मानते थे कि नरेन्द्रमंडल के वर्तमान चांसलर नवाब भोपाल हिन्दू रियासत के मुसलमान शासक होने के नाते बड़ी मुश्किल में पड़ गये हैं। उनका कहना था कि किसी रियासत को व्यक्तिगत रूप से कोई कदम नहीं उठाना चाहिए। जो कुछ भी किया जाय, वह सामूहिक रूप से और चांसलर की सलाह से; किन्तु यह कहकर चांसलर के नाते वह सार्वभौमता के एक नये सिद्धांत का प्रतिपादन कर रहे थे। पणिक्कर ने कहा कि सार्वभौमता की उनकी जो कल्पना है, इसमें चांसलर को इस बात में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं था कि कोई राजा विधान सभा में जाना चाहता है या नहीं। यह बात तो उस राज्य-विशेष और ब्रिटेन से सम्बन्ध रखती थी और इसपर सीधे ताज के प्रतिनिधि की ओर से आये आदेश का भी असर पड़ सकता था।

सोलह बड़ी रियासतों में से लगभग १० ने विधान-सभा में अपने स्थान ग्रहण कर लिये थे। राजाओं के बारे में ब्रिटेन द्वारा युद्धोत्तर काल की परिस्थिति के अनुसार विचार किया जाना भी जरूरी था। जबतक राजा लोग ब्रिटेन की "फूट डालो और राज करो" नीति के मोहरे रहे, तबतक वे राज के शक्तिशाली स्तम्भ बने रहे। लेकिन ब्रिटिश राज के ढीला पड़ते ही राजाओं की शक्ति अपने-आप घटने लगी। लाचार उन्हें अब उस राजनैतिक ढांचे के नीचे शरण लेना पड़ेगी जो ब्रिटिश-राज की जगह लेगा। उत्तरी भाग के राजाओं—जोधपुर, जयपुर, बड़ोदा, पटियाला, और बीकानेर—की स्थिति ऐसी ही थी। पटियाला दिल्ली से केवल एक

सौ चालीस मील है।

हालांकि राजाओं के साथ फरवरी में अपनी सात दिन की चर्चाओं में नेहरू कम-से-कम पांच बार यह बात दोहरा चुके थे कि कांग्रेस के साथ वह जो भी समझौता करेंगे वह बिल्कुल अपनी इच्छा से होगा। कांग्रेस किसी राजा को जोर या दबाव से समझौते के लिए मजबूर नहीं करेगी। फिर भी राजाओं के सामने विकल्प यही था कि या तो शामिल हों या खत्म हो जायं। निज़ाम की ही बात लीजिए। उन्हें अपने साथ शामिल करना और उनके साथ दृढ़ता का व्यवहार करना श्रेयस्कर होगा। किन्तु पणिक्कर ने दबाव डालने की सिफारिश नहीं की। वहां की ८६ प्रतिशत आबादी हिन्दू है। उसका बाहर रहना असंभव था। क्षेत्रफल के हिसाब से सबसे बड़ी रियासत काश्मीर की स्थिति बड़ी कठिन थी, और इसमें कोई शक नहीं कि वहां के महाराज जिन्ना के साथ अपने भाग्य का गठबन्धन करने को लालायित होंगे। पणिक्कर ने कहा कि विधान-सभा में शामिल होने के पीछे राजाओं का खास उद्देश्य यह था कि वहां जाकर कांग्रेस के दक्षिण पक्ष को मजबूत बनावें।

अन्त में मैंने पणिक्कर से दोनों दलों के सामाजिक ढांचे के बारे में उनकी राय पूछी। उन्होंने माउन्टबेटन के इस मत की पुष्टि की कि आगे-चल कर कांग्रेस के कई टुकड़े हो जायंगे। उनकी धारणा थी कि मुस्लिम लीग ज्यादा संगठित है, क्योंकि उसमें औद्योगिक अमीरी और गरीबी के चरम सिरों का अभाव था। जो इने-गिने धनी मुसलमान थे भी, वे मुख्यतः जमींदार थे। मुसलमानों का शोषण मुख्यतः हिन्दू-पूंजीपतियों के हाथों होता था।

: ४ :

गांधीजी और जिन्ना

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
सोमवार, ३१ मार्च १९४७

मैं सवेरे नेहरू-परिवार के साथ नाश्ते के लिए गया। नाश्ते में अंडे, टमाटर, टोस्ट, चाय तथा काफी थी। नेहरू की सुन्दर और तेजस्वी बहन श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित भी वहां थीं। वह राष्ट्र-संघ के अधिवेशन में भाग लेने के बाद अपनी एक पुत्री के साथ न्यूयार्क से अभी-अभी लौटी थीं। इंडिया लीग के काम के संबंध में कीर्ति प्राप्त कृष्ण मेनन भी मौजूद थे। वह गंभीर प्रकृति के व्यक्ति हैं। नेहरू ने उन्हें इस संकट-समय में घुमक्कड़ राजदूत का काम सौंप रखा था। एक और दोस्त भी वहां थे—कोई श्री पटेल। वह नेहरू से बंबई में अपनी फैक्टरी के उद्घाटन के लिए अनुरोध कर रहे थे। नेहरू सोच रहे थे कि अपनी आगामी बंबई-यात्रा के समय बौद्ध अस्थियों के हस्तांतरण के मुख्य काम के साथ इस काम का मेल बैठा सकेंगे या नहीं।

नेहरू के बारे में आज एक सनसनीदार समाचार प्रकाशित हुआ था। उसमें कहा गया था कि उन्होंने ब्रिटिश सरकार के साथ समझौता कर लिया है और भारत के लिए औपनिवेशक स्वराज्य स्वीकार कर लिया है। इस रहस्योद्घाटन का श्रेय 'पीपुल' नामक पत्र को था, जिसका दिल्ली में कोई संवाददाता तक नहीं था। नेहरू ने इस पत्र के बारे में मुझसे कुछ प्रश्न पूछे और उन्हें यह जानकर अचम्भा हुआ कि 'डेली हेराल्ड' की भांति यह भी ओढम कम्पनी का पत्र है। नेहरू ने कहा कि सारी बात को लोग दो दिन में ही भूल जायंगे।

नाश्ते के बाद कृष्ण मेनन से मेरी कुछ गंभीर चर्चा हुई। उन्होंने इन

बातों पर जोर दिया :

१. भारतीय जनता सामान्य नागरिकता तो चाहती है, किन्तु औपनिवेशिक स्वराज नहीं। वह चाहती है कि जो व्यवहार भारत ब्रिटेन के साथ करे, बदले में उसके साथ भी वैसा ही व्यवहार उसे भी मिले। चर्चिल के बारे में इतने संदेह थे कि यदि वे औपनिवेशिक स्वराज्य स्वीकार करने को तैयार थे तो उसका अर्थ सच्ची स्वाधीनता नहीं हो सकता था।

२. मंत्रि-मंडल की वर्तमान परिस्थिति से नेहरू का धैर्य समाप्त-प्राय है। मुस्लिम लीगी सदस्यों द्वारा उनको नेता मानने से इंकार करने का हठ असह्य है।

३. वाइसराय के आई. सी. एस. कर्मचारियों और विशेषतः जार्ज एबेल के विरुद्ध प्रबल लोकमत था। मैंने एबेल की योग्यता और निर-पेक्षता के पक्ष में बहुत कुछ कहा। मेनन ने स्वीकार किया कि शायद उनके विरुद्ध लगाये जाने वाले आक्षेप अनुचित हों, किन्तु माउंटबेटन को उन्हें राजनैतिक तथ्य के रूप में स्वीकार करना चाहिए।

उन्होंने ने कहा, "माउंटबेटन को गांधीजी के साथ बातचीत में एक विशेष सुविधा प्राप्त थी,क्योंकि गांधीजी उन्हें एक ईमानदार व्यक्ति मानते थे। परन्तु उन्होंने चेतावनी दी कि महात्मा गांधी के साथ बातचीत का अनु-मान पहले से नहीं किया जा सकता। उसमें सदव यह खतरा बना रहता था कि कहीं गांधीजी किसी विषय-विशेष को पकड़ कर विचाराधीन विषय को एक ओर न कर दें।"

वापस लौटा तो १० बज रहे थे और कर्मचारी-मंडल की बैठक का समय हो गया था। बैठक में माउंटबेटन की गांधीजी के साथ तीसरे पहर होने वाली बातचीत की योजना पर पूरी तरह से विचार-विमर्श किया गया। इस भेंट में स्वभावतः पत्रों को बहुत दिलचस्पी थी। ३ बजे महात्माजी आये। उस समय इस महादेश का शायद प्रत्येक मान्यता प्राप्त फोटोग्राफर मुगल उद्यान में मौजूद था।

प्रारंभिक अभिवादन के पश्चात माउंटबेटन-दम्पति उन्हें इस 'तोपखाने' का सामना करने के लिए ले गए। गांधीजी ने माउंटबेटन-दम्पति से विनोद करते हुए अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक यह अग्नि-परीक्षा दी। कैमरा-वाले इस प्रयत्न में थे कि बहुत बढ़िया चित्र लिया जा सके और गांधीजी ने उनकी परस्पर-विरोधी मांगों को पूरा करने का भरसक प्रयत्न किया।

सबसे बढ़िया चित्र अमरीकी असोसिएटेड प्रेस के कुशल फोटोग्राफर मैक्स डेस्फर को मिला। वह उस समय तक प्रतीक्षा करता रहा, जबतक कि आयोजित चित्रों की धूम-धाम मिट नहीं गई। बाद में उसने सच्चे कला-कार की दृष्टि से देखा कि गांधीजी ने माउंटबेटन के शीतल बैठकखाने में जाते समय लेडी माउंटबेटन के कंधे पर अपना हाथ रख लिया था। यही चित्र उसने लिया। गांधीजी ने अपने इस कार्य से लेडी माउंटबेटन के साथ ठीक वही व्यवहार किया, जो वह प्रार्थना-सभाओं में जाते समय अपनी पौत्रियों के साथ करते थे। गांधीजी के प्रत्येक संकेत में जाने-अनजाने, कुछ प्रतीकात्मक अर्थ होता था और आज तीसरे पहर की यह घटना हार्दिक मित्रता की प्रतीक थी।

आज बातचीत सवा दो घंटे चली। उसके अंत में माउंटबेटन न मुझ बुलाया और तुरंत प्रेस-विज्ञप्ति निकालने पर विचार-विनिमय करने के लिए गांधीजी से मेरा परिचय कराया। गांधीजी ने, जो बहुत मंद और किंचित अस्पष्ट स्वर में बोल रहे थे, कहा कि उन्हें विज्ञप्ति के मसविदे को वाइसराय पर छोड़ देने में प्रसन्नता होगी।

गांधीजी के जाने के बाद माउंटबेटन ने मुझे बताया कि सारी भेंट जानबूझ कर संस्मरणों में बिताई गई। पहले सवा घंटे लेडी माउंटबेटन भी उपस्थित थीं और वह मैत्री का वातावरण उत्पन्न करने में मदद कर रही थीं। बाद का एक घंटा हम दोनों ही के बीच में व्यतीत हुआ। माउंटबेटन ने मैत्री भाव बढ़ाने की दृष्टि से तात्कालिक राजनैतिक स्थिति पर कोई चर्चा नहीं छेड़ी।

गांधीजी ने इंग्लैंड तथा दक्षिण अफ्रीका के अपने प्रारंभिक जीवन

तथा अन्य वाइसरायों के साथ अपनी भेंटों की चर्चा की। माउंटबेटन के कथनानुसार, वार्ताएं गांधीजी के दिल्ली-वास के शेष एक सप्ताह तक चलती रहेंगी। वह उनके साथ जल्दबाजी न करने का पक्का संकल्प कर चुके हैं।

यह सब वैसे तो बड़ा अच्छा होता है, किन्तु संवाददाताओं को समझाना उतना सरल नहीं। उनके लिए विश्वास करना कठिन होगा कि बातचीत में महत्वपूर्ण फैसले नहीं किये गए।

जितनी जल्दी हो सका मैंने एक विज्ञप्ति तैयार की और उसपर माउंटबेटन की स्वीकृति लेकर बाहर गया, जहां सम्वाददाताओं की भारी भीड़ उसकी प्रतीक्षा कर रही थी।

मैंने पढ़ना आरम्भ किया, "वाइसराय तथा लेडी माउंटबेटन ने आज सायंकाल गांधीजी से भेंट की और उनके बीच ७५ मिनट तक अत्यन्त मैत्रीपूर्ण बातचीत हुई।"

मेरे दम लेने के पहले ही एक उत्सुक संवाददाता ने विरोध किया कि यह सच नहीं हो सकता। वह जानता था कि महात्माजी वहां दो घंटे से अधिक रहे थे। शेष संवाददाताओं में भी कुछ कानाफूसी होने लगी। मैंने आगे के शब्द पढ़े, "इसके बाद वाइसराय तथा गांधीजी ने आत्मीयता के उसी भाव से एक घंटे तक अलग बातचीत की।" अब तो सबको मानना पड़ा कि इस विज्ञप्ति का सत्य के साथ थोड़ा सम्बन्ध होना असंभव नहीं है।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
मंगलवार, १ अप्रैल १९५४

गांधीजी के साथ माउंटबेटन ने आज दूसरी बार बातचीत की। वह दो घंटे तक चलती रही, लेकिन उसमें ठोस काम की बात केवल पन्द्रह मिनट ही हुई। इस बार भी काफी समय महात्माजी की जीवन-कथा में लग

गया । फिर उन्होंने सम्पूर्ण समस्या को हल करने के लिए एक आश्चर्य-जनक प्रस्ताव रखा। वह यह था कि वर्तमान मंत्रि-मंडल को भंग कर जिन्ना को पूर्णतः मुस्लिम मंत्रि-मंडल बनाने के लिए आमंत्रित किया जाय ।

माउंटबेटन ने पूछा, "जिन्ना की क्या प्रतिक्रिया होगी ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "जिन्ना कहेंगे—यह धूर्त गांधी की चाल है।"

माउंटबेटन ने मुस्करा कर प्रश्न किया, "और क्या उनका यह कहना सही न होगा ?"

"नहीं", गांधीजी ने कहा, "मैं बिल्कुल दिल से कह रहा हूं।"

उन्होंने माउंटबेटन से कहा कि आपको दृढ़ता के साथ अपने पूर्व-गामियों के पापों के परिणामों का सामना करना होगा। "फूट डालो और राज्य करो" की ब्रिटिश नीति ने एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है, जिसमें कानून और व्यवस्था कायम रखने के यही विकल्प शेष रह गये हैं कि या तो ब्रिटिश शासन जारी रहे या भारत में खून की होली खेली जाय। हमें खून की होली स्वीकार करके उसी का सामना करना पड़ेगा ।

इन भेंटों में लगनेवाले समय से वेवल चिढ़ गए थे, परन्तु माउंटबेटन ने कहा कि यदि आवश्यक हो तो मैं गांधीजी के लिए दस घंटे भी दे सकता हूं। गांधीजी की उनपर गहरी छाप पड़ी थी और वह मानते थे कि अब भी उनका महत्त्व सर्वोपरि है।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
शुक्रवार, ४ अप्रैल १९४७

समाचारपत्रों का ध्यान अब भी सीमाप्रान्त पर ही केन्द्रित था। इस्मे ने आज की कर्मचारी-मंडल बैठक में वहां की स्थिति का, जिसे वह 'दोगली स्थिति' कहते थे, वर्णन किया। वहां ९७ प्रतिशत आबादी मुसलमान थी, किन्तु मंत्रि-मंडल कांग्रेसी था।

त्रावणकोर का भी प्रश्न उठा। भारतीय राज्यों में केवल यही राज्य ऐसा था, जिसके पास पर्याप्त समुद्रतट था। वहां यूरेनियम भी मिला था, जिससे प्रभु-सत्ता के विलुप्त होने के प्रश्न को एक नया सामरिक महत्व प्राप्त हो गया था।

जरूरत पड़ने पर यूरोपियनों को देश से निकाल ले जाने के तरीकों पर भी विस्तार से स्पष्ट चर्चा हुई। जो लोग १९४८ के जून तक भारत से चले जाने के इच्छुक थे उनका एक रजिस्टर तैयार किया जायगा। यात्री-जहाजों की इतनी कमी थी कि साधारण बेड़ा तक जुटाने का प्रश्न नहीं उठता। माउंटबेटन का आदेश था कि सब संबद्ध लोगों को समझाया जाय कि युद्ध के फलस्वरूप जहाजों की काफी कमी हो गई है। उनका यह भी आदेश था कि इस संबंध में जो योजना बनाई जाय उससे ऐसा आभास न हो कि आतंक के कारण भगदड़ मचने वाली है।

ज़िनकिन्स के साथ भोजन किया। ज़िनकिन्स ने बताया कि नेहरू तो गांधी का पश्चिमी रूप है। उन्होंने इस सिद्धान्त का विस्तारपूर्वक प्रतिपादन किया कि पाकिस्तान आर्थिक दृष्टि से ईर्ष्या के योग्य होगा और यह मानना गलत होगा कि वह आर्थिक दृष्टि से जीवित न रह सकेगा। मैंने उनसे इस पर एक घोषणा-पत्र तैयार करने को कहा, क्योंकि मेरे खयाल से माउंटबेटन को इसमें बहुत दिलचस्पी होगी। दैनिक गतिविधि की भगदड़ में दीर्घ-कालीन विचारों की बड़ी सरलता से उपेक्षा हो जाती है। दूसरे अतिथि थे डूंगरपुर के महाराजा के छोटे भाई, जो एक प्रतिभाशाली व्यक्ति थे और जिन्होंने आई. सी. एस. का जीवन अंगीकार किया था। अकबर हैदरी के समान वह भी महसूस करते थे कि १९३५ के भारत शासन-विधान के दूसरे भाग को पुनरुज्जीवित करने का एक प्रयत्न और किया जाना चाहिए।

ज़िनकिन्स का कहना था कि नेहरू और कांग्रेस ने फील्ड मार्शल आचिन्लेक का जो समर्थन किया था उसका एक कारण यह भी हो सकता है कि यदि उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया तो उनके स्थान पर फील्ड मार्शल स्लिम

की नियुक्ति की जायगी, जो सही हो या गलत, अधिक मुस्लिम-परस्त माने जाते थे। लियाकत और मुस्लिम लीग द्वारा आचिन्लेक को उत्तेजित किये जाने का यह भी कारण हो सकता था कि वह उन्हें यहां से जाने पर मजबूर करना चाहते हों।

जिनकिन्स ने मुझे एशियाई सम्मेलन के समय नेहरू से सम्बन्धित एक मजेदार घटना सुनाई। जब सम्मेलन की कार्यवाही चल रही थी तो कुछ प्रतिनिधि पीने और बातें करने में लगे थे। नेहरू मंच से उतर कर वहां पहुंचे और एक प्रतिनिधि को फटकारते हुए बोले, "आप क्या हो? आम के पेड़, जो आपको इतने पानी की जरूरत है?"

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
शनिवार, ५ अप्रैल १९४७

गांधीजी की योजना पर बहस हुई और उसे ऐसी पुरानी पतंग बताया गया जो बिना कन्नों के उड़ाई गई हो। तिस पर भी माउंटबेटन पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने उसपर ध्यान देने की पर्याप्त बुद्धिमत्ता का परिचय दिया। महत्वपूर्ण बात यह थी कि माउंटबेटन महात्माजी के साथ समझौते की बातों में न पड़ें, बल्कि महज उनकी सलाह को ही सुन लिया करें।

अब प्रथम पखवारे के अंत में माउंटबेटन की योजना की मुख्य नीति और उसको कुशलता से लागू करने का ढंग निश्चित हो गया। उन्हें बिल्कुल आदि से ही कार्य आरंभ करना पड़ा, लेकिन वक्त बरबाद नहीं हुआ। अब पहला उद्देश्य ऐसा हल निकालना था, जिससे काफी सद्भावना उत्पन्न हो जाय और जिससे भारत के विभिन्न दल राष्ट्रमंडल के अन्दर ही बने रहें। वे मंत्रि-मंडलीय योजना को जीवित रखने का पूरा प्रयत्न कर रहे थे। परन्तु वह मानते थे कि यदि जिन्ना की शक्ति और इरादा कायम रहा तो विभाजन की व्यवस्था करनी होगी। वह इस तर्क को स्वीकार करते थे कि यदि केन्द्रीय सत्ता का विभाजन किया जाय तो उन प्रान्तों का भी

आवश्यक है, जिनमें दोनों सम्प्रदायों के लोग बराबर-बराबर हैं।

योजना कोई भी रूप ग्रहण करे, माउंटबेटन को आरंभ से ही विश्वास हो गया था कि राजनैतिक हल की आवश्यकता आज पहले से कहीं अधिक है और जून १९४८ की समय की मर्यादा नाकाफी होने के अलावा बहुत लंबी दिखलाई पड़ती थी। वह राजनैतिक स्थिति के दु:साध्य होने का खतरा महसूस कर रहे थे। विभिन्न विरोधी दल—कांग्रेस, मुस्लिम लीग और सिख—अपने-अपने दावों की होड़ लगाने की पर्याप्त शक्ति रखते थे। परन्तु यदि तुरंत कोई समझौता नहीं होता तो वे भारत को चीन की जैसी स्थिति में पड़ने से रोक न सकेंगे। राजनैतिक हल जल्दी निकल आने का अर्थ है कि फिर निश्चित अवधि में ही जटिल प्रशासकीय समस्या को भी सुलझाना होगा। कर्मचारी-मंडल की सुबह की बैठक जिन्ना के आने तक जारी रही। गांधीजी की पहली भेंट के समय जितने फोटोग्राफर थे, उतने इस समय नहीं थे। पत्रकारों के साथ जिन्ना का व्यवहार बहुत औपचारिक और रूखा रहता था। बात-चीत खत्म होते ही प्रेस-विज्ञप्ति का मसविदा स्वीकार कराने के लिए मैं माउंटबेटन के पास गया। उन्होंने सिर्फ एक छोटा-सा संशोधन किया।

माउंटबेटन आज रात के बदले कल सायंकाल जिन्ना और उनकी बहन के साथ भोजन करेंगे। वह महसूस करते थे कि वह आज ही दूसरी बैठक का श्रम सहन न कर सकेंगे। जिन्ना ने कहा था कि वह अपने-आपको पूर्णतः माउंटबेटन की मरजी पर छोड़ देंगे। माउंटबेटन की पहली प्रतिक्रिया यह थी—"हे भगवान, वह तो बिलकुल बर्फ के समान ठंडे थे! भेंट का अधिकतर समय उन्हें पिघलाने में ही लग गया।"

यहां से मैं सीधा भोजन के लिए गया। नेहरू, उनकी पुत्री इन्दिरा और इंडोनेशिया के प्रधान मंत्री डा० शरियार अपनी सुनहरे बालों वाली प्रफुल्ल वदना डच पत्नी के साथ उपस्थित थे। आस्ट्रिया के 'ठिगने' प्रधान-मंत्री डॉलफस के बाद शरियार शायद सबसे छोटे राजनीतिज्ञ थे। डच अटैची श्री विंकलमैन भी अपनी धर्मपत्नी के साथ मौजूद थे। मैं

इंदिरा के पास बैठा। उन्होंने मुझे बताया कि वह लन्दन के कुछ खतरनाक हवाई हमलों का अनुभव कर चुकी थीं। एक दिन जब वह पिकेडिली में एक आग लगाने वाला बम बुझाने का प्रयत्न कर रही थीं, उन्हें किसी ने हवाई हमले के वार्डन का टोप दे दिया था। उसे उन्होंने अब तक यादगार के रूप में अपने पास सुरक्षित रखा था। वह शिमला जा रही थीं।

भोजन के पश्चात माउंटबेटन के अनुरोध पर कृष्ण मेनन और इस्मे ने गांधीजी के प्रस्ताव के बारे में लंबी बातचीत की। आज यह स्वीकार किया गया कि गांधीजी के कांग्रेस पर अत्यधिक जोर डालने के पूर्व ही नेहरू को स्पष्ट बता दिया जाय कि माउंटबेटन गांधीजी की योजना से बंधे हुए नहीं थे और उसकी बारीकी से छानबीन करना आवश्यक था। जैसा कि माउंटबेटन ने आज प्रातःकाल कहा था, गांधीजी जिन्ना को मंत्रि-मंडल बनाने का आमंत्रण देने पर तुले हुए थे और उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि वह इस पर कांग्रेस का समर्थन प्राप्त कर लेंगे।

शाम को माउंटबेटन-दम्पति के साथ भोजन करनेवाला मैं अकेला ही था और उस समय जिन्ना की महत्वपूर्ण भेंट का वर्णन सुना। जिन्ना ने बिल्कुल रुखाई के साथ बातचीत शुरू की थी, "मैं सिर्फ एक शर्त पर बात करूंगा....।"

माउंटबेटन ने बताया, "मैंने उन्हें वाक्य पूरा करने के पहले ही टोक दिया, "जिन्ना साहब, मैं किसी प्रकार की शर्तों पर विचार करने को तैयार नहीं हूं, बल्कि जबतक आपका परिचय न पा लूं और आपके मुंह से आपके बारे में कुछ और जान न लूं तबतक वर्तमान स्थिति पर कोई चर्चा ही नहीं करूंगा।"

माउंटबेटन के रुख से जिन्ना बिल्कुल स्तब्ध रह गए। कुछ देर तक वह गुमसुम और अकड़े हुए बैठे रहे। परन्तु अंत में उनका रुख नर्म पड़ा और उन्होंने माउंटबेटन की इच्छा के सामने सिर झुका दिया। माउंटबेटन सुनना चाहते थे कि उनकी कोशिशों से मुस्लिम लीग किस प्रकार शक्ति-शाली हुई।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
सोमवार, ७ अप्रैल १९४७

कल रात जिन्ना और उनकी बहन ने माउंटबेटन-दम्पति के साथ भोजन किया। जिन्ना ने मुसलमानों के कत्लेआम का राग अलापा और उसकी विभीषिकाओं का वर्णन किया। जल्दी ही कुछ किये जाने की आवश्यकता है। "इसके लिए शल्य-चिकित्सा ही करनी पड़ेगी," माउंट-बेटन ने उत्तर दिया, "शल्य-चिकित्सा करने के पहले बेहोशी की दवा सुंघानी पड़ती है।"

जिन्ना के साथ अपनी इस दूसरी मुठभेड़ से माउंटबेटन ज्यादा आश्वस्त थे। उनका विचार था कि जिन्ना बातें चाहे जितनी कर लें, लेकिन चलेगी मेरी ही।

जिन्ना ने जोर दिया कि गांधीजी की स्थिति शरारत से भरी हुई है, क्योंकि उसमें अधिकार तो है, पर उत्तरदायित्व कोई नहीं। इसे सिद्ध करने के लिए गांधीजी के साथ हुई विभिन्न वार्त्ताओं का इतिहास बतलाते हुए अन्त उन्होंने किया क्रिप्स-योजना की अस्वीकृति और सन् ब्यालीस का आन्दोलन छेड़े जाने की घटना के साथ। ब्यालीस के आन्दोलन को उन्होंने महात्माजी की 'हिमालय जैसी भूल' कहा। उन्होंने कहा कि कांग्रेस सब कुछ हथियाना चाहती है और मुझे पाकिस्तान से महरूम रखने के लिए वह औपनिवेशिक स्वराज्य तक मंजूर कर लेगी।

पहली मुलाकात के समय जब माउंटबेटन-दम्पति और जिन्ना का चित्र खींचा जा रहा था तो जिन्ना ने लेडी माउंटबेटन के प्रति उदारता दिखलाते हुए "दो कांटों के बीच कोमल कुसुम" की बात कही। अभाग्यवश पता चला कि बीच में वह खुद ही थे।

आज शाम की दूसरी बैठक के बाद माउंटबेटन ने जिन्ना से मुलाकात करने के लिए मुझे अन्दर बुलाया। जिन्ना मेरी ओर बरछी के समान आंखों से देखते रहे और बोले कुछ नहीं। फिर माउंटबेटन के संकेत पर उन्होंने कहा कि यदि मैं उनके निवास-स्थान पर जाकर उन प्रेस-सम्बन्धी मामलों

पर चर्चा करूंगा तो उन्हें खुशी होगी। उनके चले जाने पर माउंटबेटन ने कहा कि कल वह जटिल चर्चा करने वाले हैं।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
मंगलवार, ८ अप्रैल १९४७

कर्मचारी-मंडल की आज की बैठक में लियाकत का एक पत्र पढ़ा गया। इसमें शिकायत की गई थी कि सेना में मुसलमानों को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है। वह चाहते थे कि तुरन्त इनका पुनर्गठन किया जाय, जिससे उचित समय आने पर उन्हें अविलम्ब हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच बांटा जा सके। इस्मे ने कहा कि लियाकत के पत्र पर कोई कार्यवाही करने का अर्थ होगा राजनैतिक प्रश्न को संकट में डालना। जबतक वाइसराय ब्रिटिश सरकार को इसके खिलाफ सलाह नहीं देते तबतक मंत्रि-मंडलीय योजना कायम है और योजना में एक ही राष्ट्रीय सेना की व्यवस्था है।

माउंटबेटन सहमत थे कि अंग्रेजों के भारत से जाने के पूर्व दो कारणों से भारतीय सेना विभाजित नहीं की जा सकती। "पहला तो यह कि शासन-यंत्र अनुमति नहीं देगा और दूसरा यह कि मैं ऐसा नहीं होने दूंगा।" उन्होंने कहा, "मैंने जिन्ना को यह बतला देने का निश्चय कर लिया है कि मुझे न्याय और व्यवस्था की रक्षा करनी ही होगी। मैं एक दल को नुकसान पहुंचाकर दूसरे की सहायता नहीं करूंगा। यदि विभिन्न प्रान्तों के बीच राजनैतिक सत्ता बांट देने का निश्चय हुआ तब भी प्रतिरक्षा को केन्द्र के अधीन रखना पड़ेगा।" इस्मे न कहा कि जबतक सत्ता नहीं बदलती तबतक ब्रिटिश सेना नहीं जाती। १९३५ का विधान भी तबतक लागू है।

माउंटबेटन ने गांधी-योजना पर नेहरू के मत की चर्चा की। नेहरू का कहना था कि जबतक सत्ता लेनेवाला कोई उपयुक्त पक्ष सामने न हो तबतक दृढ़ केन्द्र को तोड़ना उचित नहीं होगा। एबेल ने कहा कि मुख्य

प्रश्न तो यह है : मंत्रि-मंडलीय योजना जीवित है या मृत ? जिन्ना को जता दीजिए कि उससे इंकार करने पर उन्हें क्या मिलेगा ? जबतक यह स्पष्ट नहीं किया जाता तबतक वह ठीक रास्ते पर नहीं आयंगे ।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
बुधवार, ९ अप्रैल १९४७

आज की बैठक में माउंटबेटन ने बतलाया कि कल उन्होंने जिन्ना के सामने यह प्रश्न उठाया कि दोनों प्रधान दल साम्प्रदायिक दंगों को बन्द कराने के लिए एक अपील निकालें । उन्होंने जिन्ना से साफ-साफ पूछा कि क्या वह वास्तव में इन दंगों को रुकवाना चाहते हैं, या ऐसी अपील निकालने से मुस्लिम लीग का राजनैतिक पक्ष कमजोर हो जायगा ? आखिर जिन्ना राजी हो गए ।

हमने आज फिर नीति के सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया । इस्मे ने जिन्ना के साथ हुई अपनी एक चर्चा का जिक्र किया । उन्होंने कहा कि जिन्ना अपनी नीति से पैदा होने वाली शासकीय समस्याओं से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं । ब्रिटिश लोगों का काम तो सिर्फ यहां से हिसाब चुकता कर चले जाना है । अगर पाकिस्तान देना स्वीकार कर लिया गया तो सब ठीक हो जायगा । लेकिन जिन्ना ने अपनी आशंका व्यक्त करते हुए यह भी कहा कि उन्हें "घुन लगा पाकिस्तान" ही मिलेगा ।

कर्मचारी-मंडल की बैठक के बाद मैं जिन्ना से मिलने उनके निवास-स्थान पर गया । १० औरंगजेब रोड पर स्थित उनकी कोठी मसजिद के समान लगती थी । उसपर लाल तथा काली पच्चीकारी हो रही थी । एक ताक पर लकड़ी के ऊपर चांदी से बना भारत का नक्शा रखा हुआ था । इस में हरे रंग से पाकिस्तान की सीमाएं दिखाई गई थीं । पहली 'मुठभेड़' की अपेक्षा वह इस बार ज्यादा सौहार्द से पेश आये । हमने समाचारपत्रों की

स्थिति पर चर्चा की। उन्होंने कहा कि 'आल इंडिया एडीटर्स कान्फ्रेंस'[1] पूरीतौर पर हिन्दू जमात है। मुसलमान अखबारों में से सिर्फ 'डॉन' पर उनकी मालकियत है। "हालांकि आप यकीन नहीं करेंगे, मैंने इसकी नीति पर कभी सीधा असर डालने की कोशिश नहीं की। इसे मैंने हमेशा एडीटर का काम समझा है और इसे हमेशा उसीकी मर्जी पर छोड़ा है।" फिर उन्होंने बिना मुसकराहट के कहा, "लेकिन एडीटर हमेशा मेरे ख्यालों का रहा है।" नोआखाली में मुसलमानों के हाथों हिन्दुओं की हत्या के समाचारों को झूठ बतलाते हुए उन्होंने काफी देर तक उस पर चर्चा की। उन्होंने कहा कि पहले इसे कई हजार लोगों का कत्लेआम कहा गया था, लेकिन बाद में सिद्ध हुआ कि सौ से ज्यादा लोग नहीं मरे और न सौ से ज्यादा घायल हुए। उन्होंने शिकायत की कि भारतीय समाचार-पत्रों के साथ खानगी चर्चा करना असंभव है। लन्दन का अपना अनुभव बतलाते हुए उन्होंने कहा कि वहां उन्होंने अनौपचारिक चर्चा में जो बातें कहीं उन्हें कोई छापने नहीं दौड़ा।

आज तीसरे पहर मैंने नेहरू-परिवार के साथ चाय पी। इंदिरा और कृष्ण मेनन ने मुस्लिम लीग के उदय की कहानी बताते हुए कहा कि स्वयं जिन्ना जन्म से हिन्दू हैं। कृष्ण मेनन ने कहा कि लीग को तब कुछ महत्व मिला जब कांग्रेस सीधी कार्रवाई करनेवाली संस्था बनी। लीग अंग्रजों के प्रोत्साहन से बढ़ी। कृष्ण मेनन चाहते थे कि मैं देशी-राज्य प्रजा-परिषद् के ग्वालियर-अधिवेशन में जाऊं, जिसमें नेहरू काश्मीर के मुसलमान कांग्रेसी नेता शेख अब्दुल्ला को, जो इस समय जेल में थे, परिषद् की अध्यक्षता सौंपेंगे। केवल राजनैतिक तापमान ही नहीं बढ़ रहा है, भौतिक तापमान भी कल १०० अंश तक पहुंच गया था। जैसा कि नेहरू ने कहा था, "कठिनाई यह है कि हम गर्मी की बात सोचकर ही गर्म हो जाते हैं।"

---

१ अखिल भारतीय सम्पादक सम्मेलन

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
शनिवार, १२ अप्रैल १९४७

माउंटबेटन ने जिन्ना के साथ अपनी ताजा बातचीत का हाल सुनाया। जिन्ना ने बड़े नाटकीय ढंग से पाकिस्तान को राष्ट्रमंडल में रखने के लिए हाथ बढ़ाया, परन्तु माउंटबेटन पर इसकी कोई प्रतिक्रिया न होने से जिन्ना को बड़ा सदमा पहुंचा।

हमारी आज की आम चर्चा में 'खंड योजना' के विरुद्ध 'अखंड योजना' के सब विकल्पों पर स्पष्ट और पूर्ण विचार-विमर्श हुआ। माउंटबेटन ने इस दुविधा के मूल में जाकर यह इरादा किया कि वह कांग्रेस से पूरी मंत्रि-मंडलीय योजना स्वीकार कराने का प्रयत्न करेंगे और फिर जिन्ना से कहेंगे कि या तो वह योजना को स्वीकार करें या कटा-फटा पाकिस्तान लेने को तैयार हो जायं। जार्ज एबेल को इसमें शक है कि कांग्रेस अपनी नीति बदलेगी। उत्तरी भाग के प्रांतों पर दबाव डालकर वह पहले ही मुस्लिम लीग को पीछे हटने के लिए बाध्य कर चुकी है।

गांधीजी ने माउंटबेटन को लिखा कि उनकी योजना कांग्रेस को स्वीकार नहीं है और वह भावी बातचीत का सब भार कांग्रेस कार्य-समिति को सौंप रहे हैं। माउंटबेटन कहते हैं कि वह कोशिश करेंगे कि गांधीजी दिल्ली में रुके रहें और कांग्रेस से मंत्रि-मंडलीय योजना को स्वीकार कराने में अपने प्रभाव का उपयोग करें। वह महसूस करते हैं कि कांग्रेस में अब भी एकसंघ की इच्छा बहुत प्रबल है।

संयोग से गांधीजी के पत्र में 'पुनश्च' के बाद एक यह सुन्दर सुझाव भी था कि श्रीमती आसफअली को लेडी माउंटबेटन से मिलना चाहिए। लेडी माउंटबेटन ने तुरन्त निमंत्रण भेजा, किन्तु श्रीमती आसफ-अली ने उसे अस्वीकार कर दिया। दूसरे दिन जब गांधीजी वाइसराय से मिलने आये तब श्रीमती आसफअली उनके साथ थीं।

गांधीजी ने कहा, "मैंने सुना कि इसने निमंत्रण अस्वीकार कर दिया था, इसलिए मैं इसे अपने साथ लेता आया हूं।"

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
सोमवार, १४ अप्रैल १९४७

समाचार-पत्रों में तरह-तरह की अटकलें लगाई जा रही हैं। आज सवेरे 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के एक लेख में उस संयुक्त 'शांति-अपील' के निकाले जाने की 'भविष्यवाणी' की गई थी, जिसके लिए माउंटबेटन प्रयत्नशील थे। 'भविष्यवाणी' में बताया गया था कि शांति-अपील गांधीजी, जिन्ना और कृपालानी (कांग्रेस अध्यक्ष) के हस्ताक्षरों से शीघ्र ही निकाली जायगी। एक बड़ी समस्या यह थी कि कांग्रेस कृपालानी के हस्ताक्षरों का आग्रह कर रही थी और जिन्ना इसके लिए तैयार नहीं थे।

अनिश्चय के कई झोंकों के बाद माउंटबेटन के धैर्य और इच्छा-शक्ति की विजय हुई और आज तीसरे पहर गांधीजी तथा जिन्ना के हस्ताक्षरों की अपील की मूल प्रति लेकर मैं सूचना-विभाग में गया। कृपालानी के हस्ताक्षर के बारे में जिन्ना की विजय हुई और उन्हें हस्ताक्षर करने के लिए नहीं बुलाया गया। गांधीजी ने अपना नाम दो बार, अंग्रेजी और उर्दू में लिखा।

इस अपील की ध्वनि और सामयिकता में माउंटबेटन की एक भारी व्यक्तिगत विजय निहित थी। इससे उनके उन प्रयासों को बल मिला जो वह सर्वसम्मत राजनैतिक योजना तैयार करने के लिए कर रहे थे। इससे उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी और उनके आसपास फैले सद्भाव का पूरा लाभ उन्हें मिल गया। इसका उद्देश्य ऐसा सौहार्द था, जिसके बिना कोई राजनैतिक हल तनिक भी महत्व का नहीं हो सकता। यह उनकी खुली कूटनीति की प्रथम विजय थी।

अब आगे की आयोजित कार्रवाइयां मई के आरम्भ में शिमले में केंद्रित रहेंगी। उसमें इन अतिथियों के उपस्थित रहने की संभावना है— नेहरू, जिन्ना, पटेल, लियाकत, कृपालानी, बलदेवसिंह और शायद गांधीजी, नवाब भोपाल तथा बीकानेर के महाराजा।

देशी राज्यों के रेजीडेंटों की उपयोगी बैठक के बाद अब कल

गवर्नरों की बैठक होनेवाली है । माउंटबेटन ने अपनी योजना का मसविदा गवर्नरों के विचार के लिए भेज दिया था । जबतक उसपर गवर्नरों के विचार ज्ञात न हो जायं तबतक माउंटबेटन उसे अन्तिम रूप न देंगे । माउंटबेटन की योजना के मोटे सिद्धांत ये थे :

१. यदि देश का विभाजन हो तो उसका उत्तरदायित्व पूरी तरह से भारतीयों पर ही रहे ।

२. आमतौर पर प्रांतों को अपना भविष्य निर्धारित करने का अधिकार हो ।

३. मतदान के लिए बंगाल और पंजाब का कल्पित विभाजन करना होगा ।

४. आसाम के ज्यादा मुसलमान आबादी वाले जिले सिलहट को बंगाल के विभाजन से बनने वाले नये मुस्लिम प्रांत में मिलने का विकल्प प्रदान किया जाय ।

५. सीमा-प्रांत में आम चुनाव किया जाय ।

कुछ गवर्नर वाइसराय-भवन पहुंच गए थे और माउंटबेटन ने सर फ्रेडरिक बोर्न (मध्यप्रांत), सर जान कालविल (बंबई) तथा सर आर्चीबाल्ड नाइ (मद्रास) से कुछ बातें भी कर ली थीं। सब गवर्नरों के आ जाने पर माउंटबेटन-दम्पति को एक ही भवन में ११ गवर्नरों और उनकी पत्नियों, उनके प्राइवेट सेक्रेटरियों तथा अंगरक्षकों का सत्कार करना होगा। ३४० कमरों और डेढ़ मील लम्बे बरामदों के वाइसराय-भवन के लिए भी मेहमानों की यह संख्या काफी बड़ी जान पड़ रही थी ।

हैदराबाद के प्रधान मंत्री सर मिर्जा इस्माइल को बोर्न के साथ बातचीत करने के लिए बुलाया गया था और उनके बीच बरार के संबंध में बातचीत हुई। बरार हैदराबाद राज्य का पुश्तैनी इलाका है और हैदराबाद के युवराज को 'बरार का शाहजादा' कहा जाता है। परन्तु इसका शासन-प्रबंध मध्यप्रांत के गवर्नर के अधीन है । निजाम इसे अवश्य ही वापस मांगेंगे। मिर्जा इस्माइल ने बताया कि निजाम निकट भविष्य में ही जिन्ना

से मिलेंगे। जहां तक उनका खुद का संबंध है, वह कहते हैं कि उन पर से निजाम का विश्वास तेजी से उठ रहा है और वह बहुत दिनों तक पदा-रूढ़ न रह सकेंगे।

माउंटबेटन के दिये हुए भोज में मैं इस्माइल के साथ बैठा। वह नर्म विचारों, गंभीर प्रकृति और तीव्र बुद्धिवाले मुसलमान हैं। इसीलिए वे अकेले से हैं। उन्होंने मुझसे निजाम के प्रधान-मंत्री की उलझनों की मुक्त होकर चर्चा की। निजाम का कोई प्रधान-मंत्री चार वर्ष से अधिक पदा-रूढ़ रहने की आशा नहीं कर सकता। इसमें केवल सर अकबर हैदरी, जो वृद्ध थे, अपवाद सिद्ध हुए। वह चौदह वर्ष तक जमे रहे। निजाम की राजनीति इतनी ही थी कि वह अपने प्रधान मंत्रियों के विरुद्ध षड्यंत्र रचते रहते थे और अन्ततः उन्हें उन सब अधिकारों से वंचित कर देते थे, जो उन्होंने उनके लिए दूसरों से छीने थे। इस्माइल के कथनानुसार यह षड्यंत्रों का ऐसा निराशाजनक चक्र था, जिसमें किये-कराए पर पानी फिरने के अलावा कुछ नहीं होता।

: ५ :

नई योजना पर गवर्नरों के बिचार

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
मंगलवार, १५ अप्रैल १९४७

आज के पत्रों में गांधी-जिन्ना शांति अपील बड़े-बड़े शीर्षकों के साथ प्रकाशित हुई। फलस्वरूप बड़े उत्साह के वातावरण में गवर्नरों का सम्मेलन आरम्भ हुआ। माउंटबेटन ने अपने प्रारम्भिक भाषण में ब्रिटिश सरकार के निर्णय के शब्दों तथा भावों के प्रति वफादारी की धाराप्रवाह और प्रभावोत्पादक अपील की। यदि किसी को शंका हो तो उसकी जानकारी के लिए उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि जून १९४८ ब्रिटिश-प्रस्थान की पक्की तारीख है।

यूरोपियनों के निष्क्रमण के विषय में पूरी-पूरी चर्चा हुई। कालविल और नाइ—बंबई तथा मद्रास प्रांत के गवर्नर—इस विषय पर निश्चित थे। परन्तु पंजाब के प्रतिभाशाली गवर्नर सर ईवान जेनकिन्स ने महसूस किया कि उन्हें पंजाब की स्थिति की गंभीरता की ओर ध्यान आकर्षित करना ही चाहिए। बिहार के गवर्नर सर ह्यू डो ने बताया कि उनके प्रांत की चार करोड़ जनसंख्या में केवल ५० यूरोपियन कर्मचारी हैं। इसलिए आश्चर्य नहीं कि उनके प्रांत में न्याय और व्यवस्था बहुत कम है। आसाम के गवर्नर सर एंड्र्यू क्लो ने, जो अब रिटायर हो रहे हैं, चाय-बागीचों के मालिकों की चर्चा की। बंगाल के गवर्नर सर फ्रेडरिक बरोज़ बीमार थे और सम्मेलन में नहीं आ सके। उनके सैक्रेटरी जे. डी. टाइसन ने बताया कि बंगाल में २०,००० यूरोपियन हैं और मुफस्सिल जिलों में रहने वाले ५,००० के बारे में उन्हें गंभीर चिन्ता है। वह महसूस करते थे कि प्रांत में न्याय और व्यवस्था की रक्षा कर सकने की गुंजाइश

बहुत कम है, वहां कम्यूनिस्टों का आन्दोलन दूसरे प्रांतों से अधिक प्रबल है और वह निश्चित रूप से यूरोपियनों के विरुद्ध हैं।

माउंटबेटन ने जोर देकर बताया कि यदि भारत में लोगों का आना रोकने के संबंध में कोई कानून बनाया जाय तो उसे ब्रिटिश मंत्रिमंडल का समर्थन प्राप्त होने की कोई आशा नहीं है। अन्त में यह निर्णय हुआ कि यूरोपियनों के आवागमन के संबंध में समझाने-बुझाने का तरीका काम में लाया जाय।

इसके पश्चात मुआवजे के कठिन प्रश्न पर सविस्तार चर्चा हुई। माउंटबेटन ने अबतक की चर्चाओं का विवरण उपस्थित किया। कालविल ने भारतीयों को मुआवजा दिलाने के संबंध में माउंटबेटन द्वारा प्रकट की गई कठिनाइयों का समर्थन किया। त्रिवेदी और हैदरी दोनों महसूस करते थे कि भारतीय लोग विशुद्ध देशभक्ति के कारण नौकरियों में बने रहना और मुआवजा छोड़ देना पसन्द करेंगे।

दोपहर की बैठक में विभिन्न गवर्नरों से अपने-अपने प्रांत संबंधी रिपोर्टें सुनने के लिए बहस रोक दी गई। सीमाप्रांत के बारे में सर ओलफ कैरो ने नये चुनाव करने की मांग की। सीमाप्रांत के प्रधान मंत्री डा. खान साहब नये चुनाव नहीं चाहते थे। चुनावों से जिनको सबसे अधिक लाभ होना संभव था, वे सब लीग-समर्थक मुसलमान जेलों में बन्द थे। माउंटबेटन की राय थी कि यदि संभव हो तो अभी कुछ न किया जाय। परन्तु कैरो तने हुए थे और थके मालूम पड़ते थे। स्पष्ट था कि वह अपने विशाल उत्तरदायित्व के भार से दबे जा रहे थे।

जेनकिन्स ने पंजाब के विभाजन के परिणामों का बड़ा साफ खाका खींचा। उन्होंने बताया कि किस प्रकार मुसलमानों तथा गैरमुसलमानों का प्रश्न सिखों और हिन्दू जाटों की मांगों से उलझ गया था। टाइसन ने उसी प्रकार बंगाल की स्थिति का चित्रण किया। उन्होंने कहा कि विभाजन होने पर पूर्वी बंगाल एक देहाती गंदी बस्ती का रूप धारण कर लेगा। बंगाल में ढाई करोड़—कुल जनसंख्या के ४५ प्रतिशत—हिन्दू हैं। वे सब

भारत में रहना चाहते थे। 'पूर्वी बंगाल' की कल्पना अनेक स्थानीय मुसलमानों को स्वीकार नहीं थी। बंगाल के वर्तमान प्रधान मंत्री सुहरावर्दी और जिन्ना के बीच संबंध अच्छे नहीं थे। सुहरावर्दी विभाजन से डरते थे और हिन्दुओं के साथ मेल करने को तैयार थे। जेनकिन्स ने भी पंजाब तथा बंगाल में पाकिस्तान-विरोधी भावनाओं के उभड़ने की आशंका बताई। बंगाल के मुसलमान बंगाल पर स्थानिक मुसलमानों का आधिपत्य हो जाने से संतुष्ट हो जायंगे।

बिहार के गवर्नर ने खनिज-सम्पत्ति की ओर ध्यान आकर्षित किया। स्वतंत्र बंगाल के निर्माण के लिए छोटा नागपुर का औद्योगिक विकास करना सुहरावर्दी की योजना का अंग था। किन्तु गवर्नर महोदय महसूस करते थे कि यदि बिहार की सीमा का पुनर्निर्माण हुआ तो उसका परिणाम बहुत व्यापक होगा। आम बहस में यह महसूस किया गया कि सिंध-पंजाब को मिलाकर बना पाकिस्तान आर्थिक-दृष्टि से व्यावहारिक न होगा। माउंटबेटन का ख़याल था कि पूर्वी बंगाल संभवतः पाकिस्तान से अलग हो जायगा और सीमाप्रांत एक घाटे का राज्य रहेगा।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
बुधवार, १६ अप्रैल १९४७

गवर्नरों की आज की बैठक में जेनकिन्स ने पंजाब के बंटवारे और सीमा-आयोग की स्थापना की आवश्यकता बताई। माउंटबेटन ने विभाजन की जो योजना पेश की थी उसपर विस्तारपूर्वक बहस हुई। गवर्नरों द्वारा व्यक्त किये विचारों से स्पष्ट था कि देश का बहुत बड़ा भाग शांत था और किसी भी न्यायोचित हल को स्वीकार करने के लिए तैयार था।

आज मैंने पनिक्कर के साथ इम्पीरियल होटल में भोजन किया। पनिक्कर ने बताया कि मुस्लिम लीग का विधान इस प्रकार बनाया गया था कि मुस्लिम अल्पमत क्षेत्रों के प्रतिनिधियों की संख्या उसमें बहुत ज्यादा

हो गई थी। इसलिए जिन्ना मुस्लिम-बहुल क्षेत्रों के प्रतिनिधियों पर विशेष प्रभाव डाल सकते थे। बंगाल की वफादारी भारत के प्रति बढ़ती जा रही थी। उसकी व्यवस्था सावधानी से करनी होगी। उन्होंने भारत में प्रिवी कौंसिल जैसी संस्था स्थापित करने पर भी जोर दिया, ताकि अप्रत्याशित रूप से उठनेवाली राजनैतिक और न्याय-सम्बन्धी समस्याएं उसके सामने पेश की जा सकें।

माउंटबेटन ने सुरक्षा-मंत्री बलदेवसिंह से बातचीत की। बलदेवसिंह ने जेनकिन्स के सामने इन्कार किया कि वह सिखों की अपील-निधि के कोषाध्यक्ष हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह निधि युद्ध फैलाने तथा अन्य कार्यों के लिए इकट्ठी की जा रही थी।

बलदेवसिंह ने सेना के राष्ट्रीयकरण की योजना पर सलाह मांगी। जून १९४८ के पश्चात ब्रिटिश सेनाओं के बने रहने की गुंजाइश कितनी थी? माउंटबेटन ने उत्तर दिया कि यह सब इस बात पर निर्भर है कि भारत राष्ट्रमंडल में रहना चाहता है या नहीं। कांग्रेस ने २० फरवरी के पूर्व जो प्रस्ताव स्वीकार करके भारत को "सम्पूर्णसत्तासम्पन्न स्वतन्त्र गणराज्य" बनाने का निश्चय किया था, उसके सम्मान की रक्षा करने के लिए एक नया हल निकालना पड़ेगा। बलदेवसिंह के रुख से इस बात की पुष्टि होती थी कि अब विभाजन ही एकमात्र उपाय है, जिसे पंजाब के सब दल स्वीकार कर सकते थे।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
शुक्रवार, १८ अप्रैल १९४७

कर्मचारी मंडल की आज की बैठक में माउंटबेटन बड़े प्रसन्न थे। कृष्ण मेनन के साथ उनकी मनोरंजक चर्चा हुई। कृष्ण मेनन ने 'सर्वसत्ता-सम्पन्न स्वतंत्र गणराज्य' के सूत्र को पेश करने का थोड़ा श्रेय अपने ऊपर ले लिया। फिर भी वह और कुछ अन्य कांग्रेसी नेता ब्रिटेन के साथ संबंध बनाये

रखने के लिए कोई दूसरा हल निकालने को प्रयत्नशील थे। मेनन ने बताया है कि कांग्रेस के लिए स्वयं पहल करना असंभव है। ऐसा कोई प्रयास करने से उसकी प्रतिष्ठा को धक्का पहुंचेगा। इसका सुझाव तो किसी-न-किसी प्रकार हमारी तरफ से ही पेश किया जाना चाहिए।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
शनिवार, १९ अप्रैल १९४७

माउंटबेटन ने सिख-नेताओं के साथ हुई बातचीत का हाल सुनाया। यह चर्चा भय पैदा करनेवाली भी थी और रोचक भी। उन्होंने अपने-आप को लम्बी दाढ़ी और विशाल कृपानों वाले बूढ़े सज्जनों के सामने पाया, जो चश्मे लगाये हुए थे और देखने में शांतिपूर्ण इरादों से परिपूर्ण दयालु प्रोफेसरों की भांति जान पड़ते थे। लेकिन बीच-बीच में झूठ का सहारा लेने में भी उन्होंने संकोच नहीं किया। उन्होंने इसी बात पर जोर दिया कि उन्हें पंजाब का विभाजन कर देना चाहिए। उन्होंने यह भी बतलाया कि रावलपिण्डी के दंगों में सबसे अधिक हानि सिखों को ही उठानी पड़ी थी।

कल डा० खान साहब के साथ जो मुलाकात हुई उसमें यह सुझाव सामने आया कि माउंटबेटन को जल्दी ही उत्तर-पश्चिम-सीमांत-प्रदेश का दौरा करना चाहिए। अभी तक निश्चय यही था कि जबतक योजना का बड़ा भाग तैयार होकर स्वीकार नहीं कर लिया जाता तबतक दौरे स्थगित रखे जायं। किन्तु लगता ऐसा था कि सीमा-प्रांत की स्थिति को देखते हुए पहले से ही कुछ खास 'इलाज' करना पड़ेगा। आम नीति-सम्बंधी हमारी चर्चाओं में औपनिवेशिक स्वराज्य के प्रश्न पर फिर विस्तृत विचार-विमर्श हुआ। माउंटबेटन ने बतलाया कि पूर्वी बंगाल के लीगी नेता नाजिमुद्दीन पाकिस्तान के बारे में जिन्ना के समान ही ज़िद पर अड़े हुए हैं। इस्मे ने कहा कि हम दो पाकिस्तान बनाने में लगे हुए हैं। इसपर माउंटबेटन ने कहा

कि मुझे लगता था कि पाकिस्तान अवश्यम्भावी है, उसका नतीजा चाहे कुछ भी हो।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
बुधवार, २३ अप्रैल १९४७

आज सवेरे माउंटबेटन ने जिन्ना के साथ तीन घंटे तक बातचीत की। मैंने जार्ज एबेल के साथ भोजन किया और उन्होंने मुझे बताया कि जिन्ना का रुख मैत्रीपूर्ण था। कभी-कभी वह जान-बूझकर उद्धत बन जाते थे, परंतु आज इनका रुख आदान-प्रदान का था। मालूम होता था कि उन्होंने मजबूर होकर बंगाल और पंजाब के विभाजन को स्वीकार कर लिया था। उन्होंने यह नहीं पूछा कि इनकी सीमाएं क्या होंगी और न माउंटबेटन ने ही कुछ बताया। वह सीमाप्रान्त के लिए 'बुद्धिमत्ता से काम लेने' की अपील निकाल रहे थे और यह जानकर उन्हें राहत मिली थी कि उन्हें वहां की 'सीधी कार्यवाही' को बन्द करने के लिए बाध्य नहीं किया जायगा।

उन्होंने माउंटबेटन से कहा, "बात यह थी कि हिन्दुओं को किसी बात के लिए राजी कर पाना नामुमकिन था। वे हमेशा एक रुपये के सत्रह आने मांगते हैं।" इसपर जार्ज की टीका यह थी, "मुझे लगता है, कि यह सही है। साधारणतः हिन्दुओं का पक्ष मुसलमानों के पक्ष से प्रबल था, किन्तु वे ज्यादा ऊंची बोली बोलकर उसे बिगाड़ देते थे।"

कांग्रेस के प्रमुख मुस्लिम-नेता मौलाना आज़ाद ने एक नया सूत्र पेश किया था। गत दिसम्बर में भारतीय नेताओं और वेवल के बीच लन्दन में हुई चर्चाओं के बाद ब्रिटिश सरकार ने एक वक्तव्य निकाला था। इसमें कहा गया था कि प्रांतों को किसी भी 'समूह' से बाहर रहने का अधिकार होगा। मौलाना आज़ाद का कहना था कि इस विषय में उन्हें माउंटबेटन द्वारा लगाया गया अर्थ स्वीकार होगा। उन्होंने अपने सूत्र का आधार गांधीजी के इस कथन को बनाया था कि पूरे भारत के हित में क्या था

और क्या नहीं था, इसके एकमात्र निर्णायक व्यक्तिगत रूप से माउंटबेटन होंगे।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
शुक्रवार, २५ अप्रैल १९४७

कर्मचारी मंडल की आज की बैठक में योजना के पहले मसविदे पर विचार किया गया। लेकिन यह साफ न हो सका कि इसे विभिन्न दलों और जनता के सामने ठीक किस रूप में पेश किया जाय। आइन स्काट ने एक महत्वपूर्ण सवाल उठाया, जिसपर काफी बहस हुई। उनका कहना था कि योजना को दोनों दलों की कार्य-समितियों के पास भेजने के पहले उसका खूब जोरों से प्रचार किया जाना चाहिए। इसका फल यह होगा कि सारी दुनिया की नज़र दोनों दलों की कार्य-समितियों पर केन्द्रित हो जायगी। इस प्रकार कांग्रेस और लीग के अपेक्षाकृत ज्यादा नरम दली तत्व शायद फिर एक-दूसरे के नज़दीक आ जायंगे और एकता के महत्वपूर्ण ढांचे को बनाये रखने का प्रयास करेंगे।

माउंटबेटन इस बात से सहमत थे कि योजना की घोषणा से ऐसा न लगे कि विभाजन पूर्व-निश्चित बात थी, बल्कि लोगों को मालूम यह पड़े कि विभाजन के प्रश्न पर आखिरी निर्णय जनता की इच्छा पर छोड़ दिया जायगा। संयुक्त भारत की संभावना पर लौटने का अवसर देने के लिए घोषणा में बचाव की धारा जोड़ दी जानी चाहिए। उन्होंने कहा कि वह किसी भी ऐसी योजना को संयुक्त भारत की योजना मानने को तैयार होंगे, जिसमें मंत्रिमंडलीय-योजना में वर्णित विषय केन्द्र के अधीन दिये गए होंगे। उदाहरणार्थ, विदेशी मामले, सुरक्षा और संचार साधन। उनकी नजर में सारी बात का सार यह था कि मंत्रिमंडलीय-योजना के अन्तर्गत, केन्द्र में स्थित हिन्दू बहुमत का पलड़ा हमेशा मुसलमान अल्पमत से भारी रहेगा और वह सुरक्षित विषयों का उपभोग उन्हें दबाए रखने के लिए करेगा।

दूसरा उपाय यह था कि पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के प्रतिनिधि समता के आधार पर एक दूसरे के साथ मिलकर काम करें। यदि ऐसे संयुक्त भारत का निर्माण हो सका तो पंजाब, बंगाल और आसाम अखंड बने रह सकेंगे। एबेल ने बतलाया कि दो सत्ता-सम्पन्न राज्यों की सापेक्ष्य शक्ति पर निर्भर करनेवाली समता सच्ची समता न होगी। माउंटबेटन ने उत्तर दिया कि वह इस तथ्य के प्रति सजग हैं। उन्होंने कहा, "मेरा उद्देश्य यह है कि या तो दो सर्व सत्तासम्पन्न राज्यों की स्थापना हो या ऐसे दो समूहों की रचना हो, जो केन्द्र के साथ आदान-प्रदान करें। बहुमत से निर्णय करने की प्रणाली के पक्ष में मैं नहीं हूं।"

माउंटबेटन ने कलकत्ते के भविष्य के बारे में भी प्रश्न उठाया। उनका अनुमान था कि मुसलमान उसके लिए जनमत-संग्रह की मांग करेंगे और उसका भविष्य बड़ा पेचीदा प्रश्न बन जायगा। लेकिन इस सम्बन्ध में आत्मनिर्णय का मार्ग अपनाना अवांछनीय होगा और उसका नतीजा भी शायद गलत निकले।

उन्होंने कहा कि पटेल की शिकायत है कि "न आप खुद शासन करेंगे, न हमें करने देंगे।" लेकिन सच बात यह थी कि नेताओं के साथ अंतिम चर्चा के लिए हम १९ मई जैसी निकट की तारीख तय कर रहे थे।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
शनिवार, २६ अप्रैल १९४७

माउंटबेटन ने इस्मे और जार्ज एबेल को योजना के पहले मसविदे के साथ लन्दन भेजने का निश्चय किया था, जिससे वे ब्रिटिश सरकार तथा सम्बद्ध अधिकारियों के साथ उसपर बारीकी के साथ विचार-विमर्श कर आयें। इस्मे और मिएविल को अपने सहायक मंडल में सम्मिलित करने में माउंटबेटन का एक मुख्य उद्देश्य यह था कि ब्रिटिश सरकार और भारत-सरकार के बीच सम्पर्क बढ़ जाय और ये दोनों लगभग दो-दो महीनों बाद

बारी-बारी से लन्दन जा सकें। ज्ञात हुआ कि पहले लार्ड इस्मे लौटेंगे।

राष्ट्रमंडल का प्रश्न इस समय विशाल रूप धारण किये हुए है। आज के "हिन्दुस्तान टाइम्स" के अग्रलेख से इस विषय में पटेल की नीति का काफी संकेत मिलता था। इस्मे ने सम्बद्ध अंश की ओर ध्यान आकर्षित किया। वह इस प्रकार था :

"यदि कांग्रेस और लीग के बीच ऐसा समझौता हो जाता है, जिसके फलस्वरूप मुस्लिम बहुमत वाले क्षेत्रों को पृथक् सर्व सत्तासम्पन्न राज्य बनने का अवसर मिले, तो हमें कोई संदेह नहीं कि ब्रिटेन के उन राज्यों के साथ संबंध स्थापित करने के मार्ग में संघ आड़े न आयेगा। परन्तु यह स्पष्ट रूप से समझ लिया जाना चाहिए कि यदि ब्रिटेन ने उसके साथ कोई सैनिक या राजनैतिक संधि करने का प्रयत्न किया तो भारत संघ उसे शत्रुता-पूर्ण कार्यवाही समझेगा।"

इसपर माउंटबेटन का विचार यह था कि उन्हें कोई आदेश प्राप्त नहीं हुआ कि यदि भारत का कोई एक या अधिक भाग राष्ट्रमंडल में बने रहने की इच्छा प्रकट करे तो वह क्या रुख अपनाएं। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने स्पष्ट आदेश दिये हैं कि वह इस विषय में कोई ऐसी बातचीत न करें, जिससे भारत की एकता की संभावना खतरे में पड़ जाय। एकता स्थापित करना माउंटबेटन की प्रथम महत्त्वाकांक्षा थी और यही उनका प्रमुख संकल्प रहेगा।

: ६ :

सीमा-प्रान्त की यात्रा

सरकारी भवन, पेशावर,
सोमवार, २८ अप्रैल १९४७

आज सवेरे तड़के मैं वाइसराय के दल के साथ हवाई जहाज़ द्वारा पेशावर के लिए रवाना हो गया। माउंटबेटन-दम्पति पमेला को भी अपने साथ लाये थे। दल के शेष सदस्य थे : आएन स्काट (जिनके आई. सी. एस. जीवन का अधिकांश भाग सीमाप्रान्त में ही बीता था), लेडी माउंटबेटन की सहायक म्यूरियल वाटसन और मार्टिन गिलियट। 'यात्रा में बहुत झोंके लगे थे और खास तौर से पमेला और मुझे दोनों को ही कुछ-कुछ अस्वस्थता महसूस हो रही थी। मार्ग में सर्वाधिक प्रभावशाली दृश्य नंगा-पर्वत का था, जो हवाई जहाज़ से लगभग सौ मील उत्तर में दिखलाई पड़ रहा था। वह बड़ी एकरूपता के साथ लगभग पच्चीस हजार फुट ऊंचा उठा चला गया था, और आसपास के शिखरों से कम-से-कम दस हजार फुट ऊंचा था। दोपहर के जरा बाद ही हम यहां के हवाई अड्डे पर उतरे।

हमें आशा थी कि सरकारी-भवन में पहुंचने पर, तीसरे पहर की बैठक के पूर्व, हम शांतिपूर्वक भोजन कर सकेंगे। किन्तु यहां हमारा सामना एक संकटपूर्ण स्थिति से हुआ, जो आतंक की हद तक पहुंच गई थी।

गवर्नर सर ओलफ केरो ने हमें बताया कि एक मील से भी कम दूरी पर मुस्लिम-लीगी एक विराट् प्रदर्शन कर रहे हैं। वे वाइसराय के सामने अपनी शिकायतें रखना चाहते थे और जलूस बनाकर सरकारी-भवन पर कूच करने और इस प्रकार कानून भंग करने पर भी तुले हुए थे। केरो के कथनानुसार, इसका एकमात्र उपाय यही था, कि वाइसराय स्वयं पहले ही उनपर 'कूच' कर दें और भीड़ के सामने उपस्थित हो जायं। प्रदर्शनकारियों

की संख्या ७० हजार से अधिक थी और वे दूर-दूर के भागों से एकत्रित हुए थे। उसमें से बहुत से कई-कई दिनों का मार्ग तय करके आये थे। माउंटबेटन ने कैरो और प्रधान मंत्री डा० खानसाहब के साथ संक्षेप में 'युद्ध-मंत्रणा' की और यह तय हुआ कि वाइसराय अविलम्ब भीड़ के सामन चले जायं।

इसके पश्चात् माउंटबेटन प्रदर्शनकारियों के बीच पहुंचे। लेडी माउंटबेटन भी बड़े साहस के साथ उनके साथ गई। निःसंदेह, हमारे सामने एकत्र भीड़ भयावह थी। हम ऐतिहासिक किले 'बाला हिसार' के निकट रेलवे के बांध पर चढ़ गए और हमने कनिंघम पार्क में इकट्ठी तथा दूर-दूर के खेतों तक फैली हुई विशाल भीड़ देखी। वह अनेक प्रकार की चेष्टाएं कर रही थी और पाकिस्तानी चांद-तारे के अनेक हरे झंडे—जो गैरकानूनी थे, हिला रही थी। 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारों का समां बंधा हुआ था।

परन्तु हमारे पहुंचने के कुछ ही मिनट बाद वह मनहूस आवेश दब गया। नारा भी बदल गया। अब 'माउंटबेटन ज़िन्दाबाद' का नारा सुनाई पड़ने लगा और क्रोध भरे चेहरों पर मुसकराहट खेलने लगी। माउंटबेटन और लेडी माउंटबेटन दोनों खाकी बुश-शर्ट पहने हुए लगभग आध घंटे तक भीड़ की ओर, जिसमें बच्चों और स्त्रियों की भी आश्चर्यजनक संख्या थी, हाथ हिलाते रहे। किसी प्रकार के भाषण का तो प्रश्न ही नहीं था। परन्तु उस धर्मान्ध-समुदाय पर उनके मैत्री तथा आत्मविश्वासपूर्ण व्यक्तित्व का प्रभाव आश्चर्यजनक था।

जब हम नीचे आये और भोजन के लिए सरकारी भवन की ओर चले, उस समय गवर्नर और स्थानीय अधिकारियों के चेहरों पर राहत का भाव छिपा नहीं रह सका। उन्होंने बताया कि यदि भीड़ ने सरकारी भवन पर कूच करने का निश्चय कर लिया होता तो स्थानीय पुलिस और सेना उसे शांतिमय उपाय से रोक नहीं सकती थी।

दोपहर के खाने के बाद माउंटबेटन ने लंबी मुलाकातों का सिलसिला शुरू किया। उनमें से दो के समय मैं वहां मौजूद था—एक तो खान

साहब और उनके मंत्रिमंडल के चार सदस्यों के साथ और दूसरी स्थानीय हिन्दुओं के प्रतिनिधि मंडल के साथ। वह स्थानीय मुस्लिम लीगी नेताओं से भी मिले, जिन्हें इस मुलाकात के लिए जेल से लाने की विशेष व्यवस्था की गई थी। उन झगड़ों के अलावा, जो कांग्रेस और लीग के आम संघर्ष को गम्भीर स्वरूप देने के लिए पर्याप्त थे, गवर्नर और उनके कांग्रेसी प्रधान-मंत्री के बीच के सम्बन्ध भी कम खराब नहीं थे। राष्ट्रीय-स्तर पर इस झगड़े का भी काफी व्यापक असर पड़ा।

डा० खान साहब तथा उनके साथियों के साथ भेंट में, जिसमें गवर्नर भी उपस्थित थे, माउंटबेटन की कूटनीतिक सूझबूझ का सुन्दर प्रदर्शन हुआ। मुलाकात शुरू करते हुए उन्होंने कहा कि मैं आपसे व्यक्तिगत भेंट करके अनुगृहीत हुआ। उन्होंने एक दूसरे से प्रश्न पूछे। उन्होंने डा० खान साहब के इस परामर्श की सराहना की कि उन्हें प्रदर्शनकारियों से भेंट करने जाना चाहिए। वास्तव में बांध पर खड़े हो जाने के अतिरिक्त उन्होंने और कुछ नहीं कियां था। पहले वह जिन्ना को सरकारी भवन तक जुलूस में लाने की इजाजत देने से इन्कार कर चुके थे। डा० खान साहब ने यह बताने की कोशिश की कि उन्होंने लाल-कुर्ती-दल के जुलूस का आयोजन भी रद्द कर दिया था।

माउंटबेटन ने कहा कि मैं भारत को भारतीयों के हाथ में सौंपने और जनता की इच्छा के अनुसार सत्ता हस्तांतरित करने आया हूं। मैं पंजाब तथा बंगाल के लिए उपयुक्त समाधान की खोज कर रहा हूं। परन्तु सीमाप्रान्त की स्थिति ने मेरे सामने विशेष कठिनाइयां उपस्थित कर दी हैं। मैं मुस्लिम लीग से कहूंगा कि हिंसा के सामने सिर नहीं झुकाया जायगा। मैं निजी तौर पर आपको बताता हूं कि चुनाव कराना आवश्यक है, परन्तु मैं मुसलमानों को पक्का आश्वासन नहीं दे सकता कि चुनाव कराए ही जायंग। जिन्ना का वादा है कि यदि चुनाव हुए तो हिंसा नहीं होगी। आपको मेरी ईमानदारी पर विश्वास करना चाहिये। जिन्ना यह स्थिति स्वीकार करते हैं और अपने अनुयायियों को आदेश दे रहे हैं कि वे कानून-

भंग करने का आंदोलन बन्द कर दें।

माउंटबेटन ने पूछा कि मुस्लिम लीग हाई-कमान की बात कितनी मानी जाती थी। उत्तर मिला कि स्थानीय मुस्लिम लीग ने विद्रोह करके सत्ता अपने हाथ में ले ली है। गत चुनाव में पाकिस्तान के प्रश्न पर मुस्लिम लीग की स्पष्ट पराजय हो चुकी थी और अब्दुरब निश्तर भी चुनाव में सफल नहीं हो सके। उस समय कांग्रेस की 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो' नीति की विजय हुई थी, परन्तु अब वह नारा लोगों को संगठित नहीं कर पा रहा था और लोग शंका करने लगे थे कि कहीं वे हिन्दुओं के प्रभुत्व में तो नहीं फंस जायंगे।

जब डा० खान साहब ने पठानिस्तान का प्रश्न छेड़ा उस समय बात-चीत कुछ विश्रृङ्खल और विस्फोटक हो उठी। कुछ समय से गांधीजी पठा-निस्तान की कल्पना में सक्रिय दिलचस्पी ले रहे थे। और इधर उन्होंने उसका काफी गुणगान किया था। यदि वह कल्पना मूर्त्त-रूप ग्रहण कर सकी, तो एक नई सीमाप्रांतीय राष्ट्रीयता का उदय हो जायगा, जो पाकिस्तान के प्रति प्रान्त की साम्प्रदायिक और राजनैतिक एकता को खंडित कर देगी। डा० खान साहब ने चेतावनी दी, "पठान राष्ट्र को नष्ट करने के परिणाम भयानक होंगे।"

माउंटबेटन ने पूछा कि सीमाप्रान्त में मिली-जुली सरकार का संगठन क्यों नहीं किया गया? डा० खान साहब ने उत्तेजित होकर कहा, "यदि कांग्रेस मिलीजुली सरकार बनाना चाहेगी तो मैं उसमें न रहूंगा।" माउंटबेटन ने तुरन्त उत्तर दिया, "मैंने केवल जानकारी के लिए पूछा था।"

खान साहब ने आगे कहा, "हमारी जनता बहुत गरीब है। यहां की मुस्लिम लीग केवल अपने संकीर्ण, स्वार्थी और कुछ विशेषाधिकारी वर्गों का ही प्रतिनिधित्व करती है।" केरो ने बताया, "कांग्रेस के भी कुछ धनी समर्थक हैं।"

माउंटबेटन ने प्रान्त में साम्प्रदायिक स्थिति की बात पूछी। केरो ने

उत्तर दिया, "मुस्लिम जनता हिन्दुओं और सिखों की रक्षा कर रही है। केवल हजारा में ऐसा नहीं। मुसलमानों का दिल और दिमाग सही है।" खान साहब ने आरोप किया कि अधिकारियों ने मुसलमानों को कानून तोड़ने की छूट दे रखी है। केरो ने दृढ़तापूर्वक कहा कि मुझे एक उदाहरण भी नहीं मालूम, जिसमें कर्मचारियों ने अपने कर्तव्य का पालन न किया हो, फिर भी उन्हें हमेशा दोष दिया जाता है।

इसके पश्चात वैधानिक कार्यविधि के बारे में बातचीत हुई। गवर्नर ने प्रधान-मंत्री पर अनुचित शासनिक दबाव डालने का आरोप लगाया। दूसरी ओर, प्रधान-मंत्री ने गवर्नर पर हस्तक्षेप का दोषारोपण किया। माउंटबेटन ने बीच में दखल देते हुए कहा, "मैं यहां कोई स्वार्थ सिद्ध करने के लिए नहीं आया। मैं जनता की इच्छा के अनुसार सत्ता हस्तांतरण करना चाहता हूं। आदर्श तो यह होता कि मैं यहां की जनता का मतसंग्रह कर लेता, परन्तु इसके लिए समय नहीं है।"

उन्होंने प्रान्तों को सत्ता हस्तांतरित करने और सामान्य दृष्टि से, तथा सीमा-प्रान्त की विशेष दृष्टि से देश के विभाजन की समस्याओं पर बातचीत की। अपने ऊपर आये हुए गंभीर कर्तव्य की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा, "मेरे सामने समस्या यह है कि हम जाने के पूर्व यहां चुनाव करा दें या वर्तमान न्याय और व्यवस्था सरकार को कायम रखने के लिए काफी है।" उन्होंने चुनावों के बारे में सलाह देने के लिए दोनों हाई-कमानों की संयुक्त बैठक का सुझाव दिया। उन्होंने कहा, "अंग्रेजों ने सदैव मनमानी की थी, किन्तु मुझे निष्पक्ष रहने का आदेश मिला है।"

इस बैठक के बाद ही स्थानीय हिन्दुओं के प्रतिनिधियों के साथ बातचीत आरम्भ हो गई। उन्होंने बताया कि उनका शिष्ट-मंडल राजनैतिक या लीग-विरोधी नहीं है, बल्कि साम्प्रदायिक है। उन्हें मंत्रिमंडल के भाग्य से कोई वास्ता नहीं, वे केवल निर्दोष हिन्दुओं और सिखों की रक्षा चाहते थे।

माउंटबेटन ने कहा, "मैं वस्तुस्थिति जानने का प्रयत्न कर रहा

हूं। क्या आप सरकार के समर्थक हैं ?"

हिन्दुओं ने उत्तर दिया, "हम किसी भी सरकार के शासन में शांति-पूर्वक रहने को तैयार हैं।"

माउंटबेटन ने कहा, "मुझे इस बुद्धिमत्तापूर्ण रुख से प्रसन्नता है। मैं वैधानिक रूप से काम करने का प्रयत्न कर रहा हूं।"

पुलिस की कमी की शिकायतें की गईं। वास्तव में उसपर असाधारण भार था। चार ब्रिटिश ब्रिगेड उपलब्ध थे फिर भी पेशावर में हत्याएं जारी हैं और पुलिस कोई प्रभावोत्पादक कार्यवाही नहीं करती। माउंटबेटन ने पुलिस के स्थान पर सैनिकों के उपयोग का खतरा बताया। दोनों का काम भिन्न है। उन्होंने कहा कि इस समय सीमाप्रांत में भारत के सब प्रान्तों की अपेक्षा अधिक सेना है। केरो ने कहा कि उसका उपयोग जितना इस समय किया जा रहा है उतना गत २५ वर्षों में—जिनमें १९३०-३१ का काल भी सम्मिलित है—कभी नहीं हुआ। माउंटबेटन ने कहा कि मैं एक बड़ा हल निकालने और अस्थिरता का अन्त करने का प्रयत्न कर रहा हूं, परन्तु यह ऐसा हल नहीं होगा, जो सबको स्वीकार हो।

मैं तीसरी बैठक के लिए नहीं रुक सका। यह बैठक उन मुस्लिम लीगी नेताओं के साथ हुई, जो इसके लिए विशेष रूप से जेल से छोड़े गए थे। इन व्यक्तियों में मनकी शरीफ के नौजवान और धर्मांध पीर और खान अब्दुल कय्यूम खां सम्मिलित थे। आइन स्काट से मुझे ज्ञात हुआ कि इन लोगों ने अत्यन्त आवेश के साथ बड़े विस्तारपूर्वक अपनी बातें कहीं। माउंटबेटन ने यह बुद्धिमत्तापूर्ण आदेश दिया था कि इन सबको एक ही जेल में रखा जाय, जिससे ये एक-दूसरे से मिल सकें और परस्पर विचार-विनिमय कर सकें। वह उनके इस प्रस्ताव से भी सहमत हो गए कि उन्हें जिन्ना से परामर्श करने के लिए दिल्ली जाने दिया जाय।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
बुधवार, ३० अप्रैल १९४७

हमारा दल दो टुकड़ों में विभक्त हो गया—माउंटबेटन पेशावर और रावलपिंडी के दौरे के बाद सीधे दिल्ली लौटे और लेडी माउंटबेटन ने दंगाग्रस्त इलाके का दौरा जारी रखा। मैं उन सम्वाददाताओं के साथ व्यस्त हो गया, जो इस दौरे के नतीजों के बारे में अन्दरूनी जानकारी पाने के लिए उत्सुक थे। सावधानी से कदम रखने की जरूरत थी। कांग्रेस और लीग की सारी नजरें अस्थायी रूप से सीमान्त प्रदेश पर केन्द्रित थीं। वातावरण तरह-तरह के अटकलों से भरा हुआ था।

मेरा पहला काम था 'डॉन' के सम्पादक अल्ताफ हुसैन से निबटना। अल्ताफ हुसैन ने अपने पेशावर सम्वाददाता की एक निहायत गलत कहानी इन बड़े-बड़े शीर्षकों के अन्तर्गत छापी थी: "माउंटबेटन की सीमान्त नेताओं से चर्चा—मनकी और कय्यूम ने पेरोल पर छोड़ा जाना ठुकराया—पठान स्त्री पुरुषों द्वारा विराट् प्रदर्शन—वाइसराय हवाई जहाज से जमरूद जा रहे हैं।" चूंकि माउंटबेटन ने दो घंटे से भी अधिक मनकी शरीफ के पीर और कय्यूम के साथ चर्चा में बिताए थे, जो मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि मंडल के प्रमुख प्रवक्ता थे, इसलिए उनकी पहली प्रतिक्रिया यह हुई कि उन्हें जिन्ना के पास व्यक्तिगत रूप से विरोध भेजना चाहिए। लेकिन अल्ताफ हुसैन के इस वादे पर कि यह कहानी कल सुधार दी जायगी, मैंने उन्हें ऐसा करने से रोका। इस पत्र के सम्वाददाता की कल्पनाशक्ति ने सबसे बड़ी अक्लमंदी तो इस बात में ज़ाहिर की थी कि वाइसराय हवाई जहाज से जमरूद जायंगे जबकि जमरूद में हवाई अड्डा ही नहीं।

रायटर के डून केम्पबेल ने आधी रात गए मुझे फोन पर बतलाया कि जिन्ना और डा० राजेंद्रप्रसाद ने अभी-अभी बड़े आवेशपूर्ण वक्तव्य पत्रों के लिए दिये हैं। उन्होंने कहा कि जिन्ना ने असल में 'कटे-फटे और घुन लगे पाकिस्तान' के खिलाफ आन्दोलन का पहला तीर छोड़ा है, और कहीं

अधिक विशाल आकार वाले राष्ट्रीय स्वदेश की महत्वाकांक्षा जाहिर की है। उनकी मांग है कि मंत्रिमंडल योजना के 'ख' और 'ग' भाग के समस्त प्रांतों (सिंध, पंजाब, उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश, बलूचिस्तान, बंगाल और आसाम) को उनके साम्प्रदायिक बहुमतों का विचार किये बिना प्रस्तावित "राष्ट्रीय स्वदेश" में शामिल किया जाय। ऐसा प्रतीत होता था कि राजेंद्रप्रसाद के वक्तव्य में मुस्लिम लीग के १९४० के लाहौर-प्रस्ताव की ओर ध्यान आकर्षित किया गया था। इसी प्रस्ताव में पाकिस्तान की कल्पना सामने रखी गई थी, जिसमें कहा गया था कि केवल वही भाग पाकिस्तान में शामिल होंगे, जहां मुसलमानों का बहुमत है। विधान-सभा के तीसरे अधिवेशन में, जो इसी सप्ताह प्रारम्भ हुआ था, डा० राजेन्द्रप्रसाद ने सभा के नये अध्यक्ष के नाते बोलते हुए सदस्यों के दिमाग भारत-विभाजन के लिए तैयार कर दिए थे। अब वह लोगों के दिमाग प्रान्तों के बंटवारे के लिए तैयार कर रहे थे।

डा० राजेंद्रप्रसाद कांग्रेस हाई कमान के सब से प्रभावशाली नेताओं में से हैं और अंतरिम सरकार में खाद्य तथा कृषि विभाग के मंत्री थे। अभी उस दिन, जब मैं उनके यहां चाय पीने गया तो मेरे ऊपर उनकी सौम्यता, दिमाग की गहराई और चरित्र की दृढ़ता का गहरा असर पड़ा। मूलतः, वह नरम विचारों वाले व्यक्ति हैं और समझौतावादी हैं। वह जनता के आदमी हैं और उनकी कीर्ति में किसी प्रकार के पाखंड का कोई योग नहीं। उनकी कीर्ति तो राष्ट्र की ईमानदारी से लम्बी सेवाओं का फलमात्र है। चाहे भारत संयुक्त रहे या विभाजित हो, उसकी नई सरकार में वह निश्चय ही महत्वपूर्ण-स्थिति में भाग लेंगे।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
शुक्रवार, २ मई १९४७

मैंने आज यह विज्ञप्ति प्रेस को दी थी कि माउंटबेटन सपरिवार थोड़े

दिनों के लिए शिमला जा रहे हैं। माउंटबेटन यह स्पष्ट करने को व्यग्र थे कि इससे उनके काम में किसी प्रकार का खलल नहीं पड़ेगा। इसलिए वक्तव्य में बतलाया गया था कि भारतीय नेताओं के साथ उन्होंने अपनी प्रारम्भिक बातचीत पूरी कर ली है और मंत्रिमंडल की साप्ताहिक बैठक में भाग लेने के बाद वह ६ तारीख को यहां से रवाना होंगे और मंत्रि-मंडल की अगली बैठक के समय तक यहां लौट आवेंगे।

मैं आज रात दिल्ली-मेल से रवाना हो रहा हूं, जिससे सोमवार को शिमले में वाइसराय के मुख्य दल के पहुंचने के पूर्व कुछ दिन अपने परिवार के साथ शांति से मशोबरा में बिता सकूं।

: ७ :

शिमला में संकट

'दि रिट्रीट', मशोबरा, शिमला,
सोमवार, ५ मई १९४७

पिछले अड़तालीस घंटे मैंने आराम करने में बिताए और अपने पहाड़ी घोंसले में बैठकर हिमालय की भव्यता और एकांतवास का रस-पान किया। कई-कई दिनों तक कोहरा और बादल विशाल परदे की भांति आकाश में तन जाते और नीचे की घाटी तथा पड़ोस के 'शाली'-शिखर के अतिरिक्त, जो सिर्फ बारह हजार फुट ऊंचा है, और कुछ दिखलाई नहीं पड़ता। 'शाली' भी वसन्त के मौसम में बरफ से खाली रहता है। फिर सहसा यह पर्दा उठ जाता है और अनंत हिम की एक अटूट अर्द्धचन्द्र रेखा सामने आ खड़ी होती है, जिसमें कितनी ही पर्वतमालाएं हैं अधिकांश सोलह सौ फुट से अधिक ऊंचाई वाली। हिमालय की मुख्य पर्वतमाला में इतने ही प्रभावशाली और दृश्य भी होंगे, क्योंकि "दुनिया की यह छत" दो सौ पचास हजार वर्गमील में फैली हुई है और चौबीस हजार फुट से अधिक ऊंचाई वाले कम-से-कम चालीस शिखर उसमें शामिल हैं। शिमले से दृष्टिगोचर होनेवाला यह शानदार और सिहरन पैदा करनेवाला दृश्य उस विराट् का ही एक प्रतीक है।

इधर मैं मशोबरा में आराम कर रहा था, उधर दिल्ली में राज-नैतिक घटनाओं की गति तेज हो रही थी। इस्मे और एबेल दो मई को लन्दन के लिए रवाना हुए। प्रस्तावित मसविदा ब्रिटिश सरकार के विचार के लिए वे अपने साथ ले गए थे।

शनिवार को भारतीय पत्रों ने पहली बार माउंटबेटन पर भारी हमला किया। महत्व की बात यह थी कि यह हमला 'हिन्दुस्तान टाइम्स' से शुरू

हुआ। 'हिन्दुस्तान टाइम्स' को काफी मान दिया जाता था।

लेख का प्रारम्भ इस प्रकार था: "जब से लार्ड माउंटबेटन ने वाइसराय का पद सम्भाला है तबसे पहली बार कांग्रेस-जनों और सिख नेताओं के दिलों में यह आशंका उठी थी कि शायद वे ईमानदारी से काम नहीं कर रहे।" इसके बाद वाइसराय के मुख्य निष्कर्षों का ज़िक्र था, जिनके सही अंदाज को देखकर लगता था कि पत्र को काफी अन्दरूनी जानकारी रही होगी। इसपर कांग्रेस की धमकी भरी प्रतिक्रिया का भी उल्लेख था। यह बात भी काफी सही थी। कांग्रेस ने पंजाब में सिखों के लिए विशेष सुविधाओं की मांग की थी। सीमाप्रांत में चुनाव की मांग मंजूर करने के बारे में भी आशंकापूर्ण अनिच्छा का प्रदर्शन किया गया था। लेख में कहा गया था कि "कांग्रेस कार्यकारिणी ने सीमान्त के प्रश्न को कसौटी मान लिया है। उसने वाइसराय को साफ बतला दिया है कि अगर सीमाप्रांत मंत्रिमंडल को भंग करने और नये चुनाव करवाने का सुझाव रखा गया तो कांग्रेस ब्रिटिश सरकार के बारे में अपने सारे दृष्टिकोण को बदल देगी।"

ज्ञात हुआ कि माउंटबेटन ने कल गांधीजी और जिन्ना के साथ दो महत्वपूर्ण चर्चाएं कीं। इन चर्चाओं का असर यह हुआ कि माउंटबेटन सोचने लगे कि शायद इस्मे को भेजने में जल्दबाजी हो गई। संयोगवश, पहले मुलाकाती के जाने के पहले दूसरे मुलाकाती वहां आ गए। माउंटबेटन ने दोनों नेताओं को मिलाकर राजनैतिक सूझ-बूझ और सामाजिक शिष्टाचार का परिचय दिया। दोनों नेताओं की गत तीन वर्षों में यह पहली मुलाकात थी। लेकिन परस्पर अभिवादन खत्म होते ही जो कुछ हुआ उस से माउंटबेटन के अनुमानों पर पानी फिर गया। दूर-दूर कुर्सियों पर बैठे गांधी और जिन्ना सुन सकने योग्य आवाज में बोलने में असमर्थ थे और लगता था, मानो दो पुराने षड्यंत्रकारी कठपुतलियों का तमाशा कर रहे हों। लाख कान लगाने पर भी माउंटबेटन उनकी बातों का अधिकांश भाग नहीं सुन पाये। फिर भी, उनका असली मकसद तो पूरा हो ही गया। दोनों नेता जिन्ना के निवासस्थान पर विस्तृत चर्चा करने पर राजी हो गए।

शिमला के लिए प्रस्थान करने के पूर्व माउंटबेटन इस विषय में पंजाब, बंगाल और उत्तर-पश्चिमी सीमान्त-प्रदेश के गवर्नरों के मत जानने का प्रयास कर रहे थे कि उनके प्रान्तों में मत-संग्रह करना उचित होगा या नहीं। केरो सीमान्त प्रदेश में मत-संग्रह के पक्ष में थे। बरोज बंगाल के बारे में गोलमोल बात कहते थे हालांकि सब मिलकर इसके खिलाफ थे। जेनकिन्स स्थिति को नितांत निराशाजनक समझते थे और उन्हें शक था कि न जिन्ना इसे स्वीकार करेंगे और न सिख लोग। फिर भी माउंटबेटन का यह पक्का विश्वास था कि अंत में जिन्ना मत-संग्रह के लिए राजी हो जायंगे और सिखों के लिए अपनी स्थिति को सुधारने का एकमात्र मार्ग है बातचीत।

'दि रिट्रीट', मशोबरा, शिमला
मंगलवार, ६ मई १९४७

गांधीजी और जिन्ना के बीच जिन्ना के औरंगजेब रोड स्थित निवास-स्थान पर तीन घंटे तक चर्चा हुई।

निम्नलिखित वक्तव्य दोनों की सहमति से प्रकाशित किया गया:

"हमने दो विषयों पर चर्चा की। पहली भारत को पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में विभाजित करने के प्रश्न पर। श्री गांधी विभाजन के सिद्धांत से सहमत नहीं हैं। उनका विचार था कि विभाजन अवश्यंभावी नहीं है। जबकि मेरा विचार है कि पाकिस्तान अवश्यंभावी ही नहीं, बल्कि भारत की राजनैतिक समस्या का एकमात्र व्यावहारिक हल भी वही है।

"जिस दूसरे विषय पर हमने चर्चा की वह था एक पत्र। जिसपर हम दोनों ने हस्ताक्षर कर जनता से शांति बनाये रखने की अपील की है। हम दोनों इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि अपने-अपने दायरों में हमें पूरा प्रयत्न कर यह चेष्टा करनी चाहिए कि हमारी इस अपील पर अमल हो और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए हम पूरी कोशिश करेंगे।"

हालांकि जहां तक बातचीत का सम्बन्ध था, उसका कोई फल नहीं निकला, लेकिन, जैसाकि संयुक्त वक्तव्य के मसविदे से जाहिर था, पलड़ा

जिन्ना का ही भारी रहा। मंत्रिमंडलीय-योजना एक कदम और नीचे को सरक गई। सवाल अब सिर्फ यही था कि विभाजन की दिशा में बहने वाले प्रवाह को रोकने के लिए गांधीजी क्या कर सकते हैं और क्या करेंगे।

'दि रिट्रीट', मशोबरा, शिमला,
बुधवार, ७ मई १९४७

आज वाइसराय भवन से बुलावा आने के साथ ही मेरे अल्पविश्राम का अन्त हो गया। माउन्टबेटन वी. पी. मेनन को अपने साथ लाये हैं। इन्होंने १९४५ की शिमला-वार्ताओं और १९४६ की मंत्रिमंडलीय-योजना-सम्बन्धी चर्चाओं में काफी हाथ बटाया था। वह सरदार पटेल के विश्वासपात्र हैं।

आते ही मैं कर्मचारीमंडल की दो लगातार बैठकों में व्यस्त हो गया। एक में माउन्टबेटन उपस्थित नहीं थे। दोनों बैठकों में हमने वी.पी. मेनन की इस मान्यता के आधार पर दूसरी योजना तैयार करने के प्रश्न पर विचार किया कि जिन्ना प्रस्तावित योजना स्वीकार नहीं करेंगे। माउन्टबेटन ने कहा कि इस संभावना को उन्होंने हमेशा ध्यान में रखा है कि जिन्ना उसे ठुकरा देंगे। इसलिए जिन्ना और लियाकत के साथ हुई मुलाकातों में इस इरादे का संकेत पाने के लिए सावधान रहें। लेकिन ऐसा कोई संकेत उन्हें नहीं मिला। हर नजर से विचार करने के बाद वह इसी नतीजे पर पहुंचे कि वे योजना को स्वीकार करेंगे। जिन्ना के इसे स्वीकार न करने के दो कारण हो सकते थे। पहला तो यह कि उनका असली इरादा अंग्रेजों को भारत में रखना हो, और सौदेबाजी को लम्बा करके वह अंग्रेजों के लिए यहां से जाना कठिन कर देना चाहते हों, जिससे अपने लिए और भी सुभीते पा सकें। दूसरा यह कि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे हों कि पाकिस्तान की स्थापना व्यावहारिक नहीं है।

लेकिन वह नहीं सोचते कि इन दोनों में से कोई भी बात जिन्ना के दिमाग में थी। फिर भी वह वी. पी. मेनन के इस सुझाव से सहमत हो गए

थे कि जिन्ना के साथ बातचीत करते समय उन्हें एक दूसरी योजना भी तैयार रखनी चाहिए। दूसरी योजना के अन्तर्गत प्रान्तों में सत्ता का बंटवारा वर्तमान विधान के अनुसार ही किया जायगा। प्रान्तीय विषय वर्तमान प्रान्तीय सरकारों को सौंप दिये जायंगे और केन्द्रीय विषय वर्तमान केन्द्रीय सरकार को। लेकिन इसमें मुसलमानों को हिन्दू बहुमत के अन्तर्गत काम करना पड़ेगा।

लन्दन भेजने के लिए एक तार का मजमून तैयार किया गया। सारी जानकारी देते हुए ऐसी योजना की स्वीकृति मांगी गई। भारत को राष्ट्र-मंडल में बनाये रखने की संभावनाओं पर हमने आगे विचार किया। मेनन ने इस सम्बन्ध में पटेल और नेहरू के स्वीकारात्मक दृष्टिकोण की चर्चा की और सम्राट् तथा साम्राज्य शब्दों को निकालने की जरूरत बताई, क्योंकि बहुत से भारतीय इनके खिलाफ थे। अन्त में वी. पी. मेनन से एक अभिलेख तैयार करने को कहा गया, जिसमें विस्तार के साथ बतलाया गया हो कि विभाजन अथवा प्रान्तों में सत्ता वितरण की योजना के अन्तर्गत भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने की क्या कार्यविधि होगी।

'दि रिट्रीट', मशोबरा, शिमला,
शुक्रवार, ९ मई १९४७

नेहरू और कृष्ण मेनन यहां पहुंच गए हैं। अगर औपनिवेशिक स्व-राज्य का प्रश्न सामने आया तो उसकी सफलता का दारोमदार इसपर निर्भर करेगा कि माउन्टबेटन उसके लिए इन दोनों को राज़ी कर पाते हैं या नहीं। अभी से कृष्ण मेनन औपनिवेशिक स्वराज्य जल्दी आ जाने पर भारतीय सेना के टुकड़े किये जाने के खिलाफ थे। मिएविल का विचार था कि अगर भारत राष्ट्रमंडल में रहा तो राष्ट्रमंडल की अपेक्षा भारत को इससे ज्यादा लाभ होगा। लेकिन माउन्टबेटन का कहना था कि भारत के शामिल होने से ब्रिटेन का दुनिया में मान भी बढ़ेगा और युद्धनीति की दृष्टि से भी उसे अपार लाभ होगा।

कल तीसरे पहर चर्चाओं के गम्भीर दौर से जरा छुट्टी मिली। माउन्टबेटन-दम्पति नेहरू को चाय के लिए रिट्रीट लाये।

चाय के बाद नेहरू ने कहा कि वह हमारे बच्चों को देखना चाहेंगे। माउन्टबेटन ने मेरे लड़के कीथ को अपना मुंह-बोला बेटा बतलाते हुए कहा, "यह इतना सीधा खड़ा होता है कि पीछे को जा गिरेगा।" फिर हम विशाल भवन और उसके बागों की सैर करने चले गए।

'दि रिट्रीट,' मशोबरा, शिमला,
शनिवार, १० मई १९४७

कर्मचारी-मंडल की आज की बैठक में माउंटबेटन ने बताया कि कांग्रेसी नेताओं को औपनिवेशिक स्वराज्यवाली बात अधिकाधिक अपील कर रही है। कृष्ण मेनन का दावा है कि यह सुझाव सबसे पहले उन्होंने ही दिया था। उनका खयाल है कि नेहरू भी इस सुझाव से आकर्षित हुए थे; क्योंकि इसमें माउंटबेटन अनिच्छुक राजाओं को प्रभावित कर सकेंगे। वी. पी. मेनन सोचते थे कि जबतक भारत का संविधान पूरा न हो जाय तबतक के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य भी कोई बुरी चीज नहीं है। किन्तु कांग्रेस के लिए सबमें बड़ी कठिनाई यह दीखती थी कि वामपक्षी लोग कहेंगे कि औपनिवेशिक स्वराज्य लेकर ब्रिटेन के सामने घुटने टेक दिये गए हैं।

आज मैंने यह महत्वपूर्ण सूचना निकाली कि वाइसराय ने शनिवार १७ मई को साढ़े दस बजे सवेरे पांच नेताओं को तथा दोपहर बाद रियासतों के प्रतिनिधियों को मिलने के लिए आमंत्रित किया है। मुलाकात का उद्देश्य है सत्ता हस्तांतरण की ब्रिटिश-योजना से उन्हें परिचित करना।

'दि रिट्रीट', मशोबरा, शिमला,
रविवार, ११ मई १९४७

माउन्टबेटन ने मुझे फोन किया कि कल रात की विज्ञप्ति में नेताओं

के साथ बैठक की जो घोषणा की गई थी उसे स्थगित करना पड़ेगा। उन्होंने कहा कि मैं दूसरी विज्ञप्ति तैयार कर डालूं। शाम को साढ़े छः बजे जब मैं वाइसराय भवन पहुंचा तो निराशा और घबराहट का वातावरण देखने को मिला।

ऐसा लगता था कि माउन्टबेटन ने नेहरू को वह योजना दिखाई, जो लन्दन से सुधर कर और मंजूर होकर आई थी। उसे पढ़कर नेहरू ने उसका कड़ा विरोध किया। उनका मत था कि माउन्टबेटन और उनके कर्मचारियों ने जो योजना तैयार की थी और जिसे लेकर इस्मे और जार्ज एबेल इस महीने के प्रारम्भ में लंदन गये थे,प्रस्तुत योजना उससे बुनियादी रूप से भिन्न थी।

नेहरू का विश्वास था कि मंत्रिमंडलीय-योजना और माउन्टबेटन के मसविदे में यह मानकर चला गया था कि भारत कोई नया राज्य नहीं है। लेकिन लन्दन ने जो मसविदा भेजा था उसका अर्थ तो शुद्ध खंडीकरण था। नेहरू असल में चाहते यह थे कि यह बात स्पष्टतः मान ली जाय कि भारत और उसकी विधान-सभा ब्रिटिश भारत के उत्तराधिकारी हैं और पाकिस्तान तथा मुस्लिम लीग उससे पल्ला झाड़नेवाले थे। उनकी उठाई बहुत-सी आपत्तियां बिल्कुल गौण थीं और उन्हें सहज ही निबटाया जा सकता था। उदाहरण के लिए,उनका कहना था कि वह बलूचिस्तान के भाग्य के निबटारे के लिए सुझाई गई कार्यप्रणाली को नहीं मानेंगे। यह वास्तव में अतिरंजना थी, लेकिन असलियत यह थी कि लन्दन के मसविदे में जो नई बातें जोड़ी गई थीं उनसे उनका यह संशय फिर जाग उठा था कि लन्दन विदेशी सिविल कर्मचारियों का गढ़ है, जिनके दिल कठोर हैं और जहां तक भारत की समस्याओं का सम्बन्ध हैं, उनकी समझ निहायत सीमित है।

उनके इस दृष्टिकोण का एक तात्कालिक नतीजा यह हुआ कि माउंट-बेटन और उनके कर्मचारियों को तेज़ी के साथ एक संशोधित मसविदा तैयार करना पड़ेगा, जो तुरन्त इस्मे को भेजा जा सके।

दूसरी विज्ञप्ति तैयार कर मैं मिएविल के साथ माउन्टबेटन की बैठक

में पहुंचा। उन्होंने बताया कि कैसे केवल उनकी सूझ मात्र से ही उनका सत्यानाश होते-होते बच गया है। इसके बिना ब्रिटिश सरकार के सामने वह मूर्ख सिद्ध होते, क्योंकि उन्होंने लन्दन को यह आशा दिलाई थी कि नेहरू योजना को स्वीकार कर लेंगे। उन्होंने बतलाया कि उनके अधिकांश कर्मचारी नेहरू को पहले से योजना का मसविदा दिखाने के पक्ष में नहीं थे। लेकिन उनकी सलाह की बजाय अपनी सूझ का अनुसरण कर उन्होंने स्थिति संभाल ली।

काफी विचार-विमर्श के बाद यह विज्ञप्ति निकालना तय हुआ : "चूंकि लन्दन की पार्लमिंट का अधिवेशन शीघ्र ही खत्म होनेवाला है, इसलिए हिज़ एक्सलेन्सी वाइसराय की भारतीय नेताओं के साथ शनिवार, १७ मई को होनेवाली बैठक सोमवार २ जून तक के लिए स्थगित कर दी गई है।"

'दि रिट्रीट', मशोबरा, शिमला,
सोमवार, १२ मई १९४७

माउन्टबेटन ने कहा कि यद्यपि वह भारतीय नेताओं पर अपनी ईमानदारी का सिक्का जमा चुके हैं, फिर भी लन्दन से आनेवाले प्रस्तावों के बारे में उनके दिलों में पुरानी शंकाएं और भय मौजूद हैं। स्पष्ट है कि भविष्य में योजनाओं का संशोधित मसविदा भारत में ही उनके कर्मचारियों को बनाना होगा। उन्होंने यह निश्चय किया कि एक संशोधन तो यह होगा कि बंगाल या किसी अन्य प्रांत के लिए दिये जाने का विकल्प मिटा दिया जायगा। उनका खयाल था कि इस निश्चय को दोनों पक्षों की प्रार्थना पर बदला भी जा सकता था। हमारी योजना के समान नेहरू की योजना थी कि अन्तरिम सरकार को ही औपनिवेशिक स्वराज्य के आधार पर सत्ता सौंपी जाय।

: ८ :

योजना में परिवर्तन

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
वृहस्पतिवार, १५ मई १९४७

माउंटबेटन को काफी विनम्र किन्तु ज़ोर का बुलावा आया था कि वह विचार-विनिमय के लिए लन्दन आवें। पहले तो इस प्रस्ताव की उनके ऊपर बड़ी कड़ी प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने कहा कि उनको लन्दन जाने की कोई जरूरत नहीं मालूम होती। किन्तु प्रधानमंत्री का दूसरा सुझाव कि यदि वह न आ सके तो मंत्रिमंडल के किसी सदस्य को नई दिल्ली आना पड़ेगा, यह उन्हें और भी नापसन्द था।

आज की बैठक का अधिकांश समय इस्मे को दिये जानेवाले जरूरी सन्देश की तैयारी और स्वदेश जाने की व्यवस्था में लग गया। लन्दन से प्रधानमंत्री ने माउंटबेटन की प्रस्तावित स्वदेश-यात्रा के बारे में एक विज्ञप्ति का मसविदा भेजा था। मेरा खयाल है कि मसविदे की भाषा बहुत अच्छी थी। स्वाभावतः माउन्टबेटन यह स्पष्ट करने को उत्सुक थे कि वह अपनी स्वेच्छा से घर जा रहे हैं, केवल जरूरी बुलावे के कारण नहीं। उनका इरादा था कि प्रस्तावित योजना पहले जिन्ना को दिखलाएं और फिर नेहरू को। पटेल और लियाकत से भी वह आज मिलनेवाले थे। वी. पी. मेनन का अनुमान था कि शिमला में नेहरू की उदासी का मुख्य कारण था अपने साथियों से दूर होना। पटेल का सहारा प्राप्त होने पर उनकी उदासी दूर हो जायगी।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
शुक्रवार, १६ मई १९४७

नेहरू और पटेल ने मांग की थी कि कांग्रेस अध्यक्ष कृपालानी का नाम

भी नेताओं की बैठक में आमंत्रित व्यक्तियों में शामिल कर लिया जाय। वे सोचते थे कि ऐसा करने से उन्हें कांग्रेस का समर्थन प्राप्त करने में सरलता होगी। इसके अतिरिक्त उनका यह भी कहना था कि कृपालानी की स्थिति वैसी ही है जैसी मुस्लिम लीग के सभापति के नेता जिन्ना की। माउन्टबेटन ने यह लिखने और कहने का निश्चय किया था कि यद्यपि वह कृपालानी के महत्व को स्वीकार करते हैं तथापि वह उन्हें बैठक में आमंत्रित करना स्वीकार नहीं कर सकते। हां, उनसे बैठक में तुरन्त पहले या बाद में अवश्य मिल सकते हैं। यह समस्या बड़ी पेचीदा थी। पहले देखने में तो यह बड़ी मामूली जान पड़ती थी किन्तु जल्दी ही संगीन स्थिति भी पैदा हो सकती थी। यदि कृपालानी को नहीं बुलाया जाता तो कांग्रेस को यह शिकायत रहेगी कि जिन्ना के सामने उसे एक बार और दबना पड़ा। यदि उन्हें बुलाया जाता है तो जिन्ना को बुरा लगता था।

वी. पी. मेनन ने उन विषयों की एक बड़ी प्रामाणिक सूची तैयार की थी जिन पर सबकी सहमति थी। इनकी संख्या कुल आठ थी। नेता लोग अप्रिय निर्णय लेने से कतराते थे। इस बहाने की आड़ में छिपने का प्रयास करते हैं कि अपनी पार्टी की तरफ से वे हामी कैसे भरें। इस कठिनाई से पार उतरने का यह साहसिक प्रयास था। इस विषयसूची में इस मांग का उल्लेख था कि अन्तर्कालीन व्यवस्था के रूप में भारत सरकार के १९३५ के विधान के संशोधित-आधार पर औपनिवेशिक स्वराज्य देने की शीघ्रता की जाय। सर्वसत्ता-सम्पन्न एक अथवा दो राष्ट्रों का निर्माण हो। यदि एक ही राष्ट्र की स्थापना हो तो सत्ता वर्तमान केन्द्रीय सरकार को सौंप दी जाय। छठे सूत्र में कहा गया था कि दोनों राष्ट्रों का एक ही गवर्नर-जनरल हो। अंत में सेना के विभाजन के हल का उल्लेख था। इसमें कहा गया था कि टुकड़ियों का बंटवारा भर्ती के अनुसार होना चाहिए। जिस प्रदेश से भर्ती करके जो टुकड़ी बनाई गई हो उसे उसी प्रदेश की सरकार को सौंप दिया जाय। मिली-जुली टुकड़ियों के लिए विशेष व्यवस्था का निर्देश था।

उक्त प्रस्ताव पर माउन्टबेटन जिन्ना और लियाकतअली की स्वीकृति

पाने में असफल रहे। प्रस्ताव के आम सिद्धांतों से वे सहमत थे; लेकिन अपनी सम्मति लिखित रूप में देने को तैयार नहीं थे। वी. पी. मेनन के अनुसार पटेल और नेहरू यह चाहते थे कि जिन्ना उक्त योजना को ऐसे ढंग से स्वीकार कर लें कि यह निश्चित हो जाय कि यह उनकी आखिरी प्रादेशिक मांग थी। यदि वह ऐसी घोषणा कर दें तो कांग्रेस को संतोष हो जायगा।

माउन्टबेटन ने कहा कि समझौते के अभाव में अन्तरिम सरकार को औपनिवेशिक स्वराज्य देने के बारे में जिन्ना की प्रतिक्रिया उन्होंने परखी थी। जिन्ना ने शान्ति से कहा कि ऐसी स्थिति को वह किसी भी हालत में नहीं रोक सकते। कुछ दृष्टियों से माउन्टबेटन और जिन्ना के बीच यह कूटनीति का सबसे सूक्ष्म दौर था। माउन्टबेटन के अनुसार जिन्ना की प्रतिक्रिया असाधारण और अशान्तिकारक थी।

वायसराय भवन, नई दिल्ली
रविवार, १८ मई १९४७

माउन्टबेटन सेवेरे ८॥ बजे पालम से लन्दन को रवाना हो गए। उनके स्थान पर कालविल स्थानापन्न वाइसराय बनेंगे। माउन्टबेटन अपने साथ वी. पी. मेनन को भी ले गए थे। इन दिनों मेनन का सितारा चमक रहा था और वह माउन्टबेटन के पूर्ण विश्वासभाजन थे। शासनिक-योग्यता और मसविदा बनाने की निपुणता उनमें ऊंचे दर्जे की है। समझौता-चर्चा में भी उनका योग सराहनीय रहा था। इससे पता चलता था कि माउन्टबेटन उपयुक्त व्यक्तियों का चुनाव करने में कितने पटु थे।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
बृहस्पतिवार, २२ मई १९४७

जिन्ना ने ऐन समय पर एक चौंकाने वाली मांग की थी। वह पश्चिमी

और पूर्वी पाकिस्तान को जोड़ने के लिए ८०० मील लम्बा गलियारा मांग रहे थे। अपनी मांग प्रकाशित करने में उन्होंने स्टालिन का अनुकरण किया था। यह मांग उन्होंने रायटर के संवाददाता डून कैम्पबैल के प्रश्नों का उत्तर देते हुए व्यक्त की थी। अर्सकिन क्रम को मैंने जो लन्दन तार दिया, उसमें लिखा था, "जिन्ना ने उत्तर मौखिक रूप से नहीं, बल्कि लिखित रूप में दिये।" ज्यों ही रायटर ने उक्त मांग प्रकाशित की, त्यों ही जिन्ना के सेक्रेटरी ने फोन करके विदेशी पत्रकारों का ध्यान उसकी ओर आकर्षित किया। संवाददाता ने मुझे यह बताया कि जिन्ना स्वयं पत्रकारों से मिलने को तैयार थे। पत्रकारों का खयाल था कि जिन्ना अपना वक्तव्य देने को यों भी तैयार थे, रायटर के संवाददाता की प्रर्थना तो एक बहाना मात्र थी। रायटर का उपयोग जिन्ना ने अपना दबाव लन्दन पर डालने और ब्रिटिश समाचार-पत्रों में पूरा प्रचार पाने में किया।

माउन्टबेटन की समझौता-चर्चाएं सरलतापूर्वक चल रही थीं यद्यपि अटकलबाजियां इसके विपरीत थीं। लन्दन में उनकी उपस्थिति से ब्रिटिश अधिकारियों को ढाढ़स मिला। विरोधी दल के नेताओं से भी उन्होंने भेंट की, क्योंकि उनके सहयोग बिना पार्लमेंट में 'भारतीय स्वतंत्रता बिल' शीघ्रता से पास होना संभव नहीं था। श्री एटली ने भारत सरकार की नीति और उसके परिणामों की जिम्मेदारी स्वयं अपने ऊपर ले ली थी। हां, विभाजन के सेना-सम्बन्धी प्रश्न पर अवश्य काफी चिन्ता प्रकट की जा रही थी। माउन्टबेटन और वी. पी. मेनन द्वारा प्रस्तुत औपनिवेशिक स्वराज्य की योजना का जोरों से स्वागत किया गया।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
शुक्रवार, २३ मई १९४७

मैंने वरनोन को लन्दन में निम्नलिखित रिपोर्ट भेजी है :

"जिन्ना की रायटर संवाददाता से मुलाकात के बारे में केवल 'हिन्दुस्तान टाइम्स' ने सम्पादकीय टिप्पणी की है। उसने दृढ़ रुख ग्रहण किया है। पर वह उत्तेजना फैलाने वाला नहीं है। गलियारे के बारे में वह साफ लिखता है कि यदि पाकिस्तान का अस्तित्व गलियारे पर ही निर्भर करता है तो पाकिस्तान कभी नहीं बन सकेगा। मेरा खयाल है कि यहां राजनैतिक क्षेत्रों तथा समाचार-पत्रों की प्रतिक्रिया की जितनी आशा थी, उससे कहीं मंद हुई है। जिन्ना की मांग का उद्देश्य मुख्य रूप से लन्दन को प्रभावित करना था।"

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
सोमवार, २६ मई १९४७

जिन्ना की गलियारे की मांग की देर से ही सही, किन्तु जोरदार प्रतिक्रिया हुई। विवाद की ज्वालाएं भभक रही थीं और किसी तात्कालिक राजनैतिक निर्णय से ही शान्त हो सकती थी। माउन्टबेटन द्वारा निर्माण की गई सद्भावना का स्रोत उनकी अनुपस्थिति में सूख रहा था। राजेन्द्रप्रसाद और शंकरराव देव (कांग्रेस-मंत्री) ने जोरदार वक्तव्य निकाले थे। राजेन्द्रप्रसाद कहते थे, "जिन्ना की मांग जरा भी ध्यान देने योग्य नहीं है।" देव का कहना था कि, "जिन्ना की मांग इस भ्रांति के कारण बढ़ रही है कि अंग्रेज अब भी उनकी मदद कर सकते हैं। देश पर इन धमकियों का कोई असर नहीं पड़ेगा तथा गलियारे की मांग पूरी नहीं की जा सकेगी।"

'डान' ने देव और राजेंद्रप्रसाद को उत्तेजनात्मक जवाब दिया था। 'सारे जड़-मूर्ख हैं' शीर्षक से उसने लिखा, "गलियारे की मांग कोई नई नहीं है। कायदेआज़म जिन्ना इस मांग को कई बार दोहरा चुके हैं जो पाकिस्तान के लिए अनिवार्य है। पाकिस्तान को यदि वास्तविक रूप देना है तो उसके पूर्वी और पश्चिमी प्रदेशों को जोड़नेवाला गलियारा अत्यन्त

आवश्यक है। हमें कोई संदेह नहीं है कि यदि मुसलमान पाकिस्तान ले सकते हैं तो कहीं-न-कहीं गलियारा भी बना सकते हैं। देव यह भली भांति जानते हैं।"

शनिवार को नेहरू ने 'युनाइटेड प्रेस आव अमरीका' को जो मुलाकात दी थी उसमें उन्होंने पहली बार सार्वजनिक रूप से गलियारे की मांग का उल्लेख किया। उन्होंने कहा, "जिन्ना का हाल का वक्तव्य सर्वथा अवास्तविक है और यह बतलाता है कि वह किसी प्रकार का समझौता नहीं चाहते। गलियारे की मांग विचित्र और निस्सार है। हम तो एक संयुक्त भारत के पक्ष में हैं, जिसमें विशिष्ट प्रदेशों को अलग होने का अधिकार प्राप्त रहेगा। हम दबाव नहीं डालना चाहते। यदि और प्रादेशिक मांगें किये बिना समझौता नहीं किया जाता तो हम संयुक्त भारत का विधान बनाने और उसे कार्यान्वित करने का कार्य प्रारम्भ कर देंगे।"

नेहरू का कहना था कि चूंकि जिन्ना ने प्रस्तावित योजना को अस्वीकार कर दिया है, अतएव अन्तरिम सरकार को ही औपनिवेशिक सरकार बना दिया जाय। उनकी शिकायत थी कि जिन्ना को जो मिलता है, उसे तो वे स्वीकार कर ही लेते हैं और फिर अधिकाधिक मांगते जाते हैं। इस प्रकार एकतरफा वादे कैसे किये जा सकते हैं?

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
मंगलवार, २७ मई १९४७

बरोज द्वारा भेजी गई रिपोर्टों से पता चलता था कि वह कलकत्ता की अशांत स्थिति से बहुत चिंतित हैं। पिछले एक-दो दिनों में उन्होंने महसूस किया कि तनाव उनके अनुमान से कहीं अधिक गंभीर था। इसलिए चाहते थे कि सबको शांत करने के लिए रेडियो पर भाषण दें, जिसके लिए वह माउंटबेटन की अनुमति चाहते थे। उन्होंने 'अमृत बाजार पत्रिका' में

छपी एक रिपोर्ट का जिक्र किया, जिसमें नेहरू के कथन का उल्लेख करते हुए कहा कि संघर्ष का नया दौर २ जून से शुरू हो रहा है, और शांति-पूर्ण समझौते की उन्हें कोई आशा नहीं।

इस कथित वक्तव्य के विषय में जांच करने पर मुझे मालूम हुआ कि यह निराधार था। यह घटना भी मौजूदा घबराहट और अनिश्चितता का उदाहरण थी।

मुझे मालूम हुआ कि कलकत्ता में हिन्दू और मुसलमान मोर्चे बनाकर उन पर आ डटे हैं। मकानों और पूरी-की-पूरी सड़कों को लड़ाई की चौकियों का रूप दे दिया गया था।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
शनिवार, ३१ मई १९४७

माउंटबेटन दिल्ली लौट आये हैं। अपने कर्मचारियों को उन्होंने तरन्त विचार-विनिमय के लिए बुलाया। नेताओं की बैठक होने में अब एक ही सप्ताह शेष था जिसमें भारत के भविष्य का निर्णय किया जायगा।

माउंटबेटन की शारीरिक और मानसिक शक्ति आश्चर्यजनक थी। अपनी लम्बी यात्रा से अथवा लंदन की चर्चाओं से वह बिलकुल भी थके हुए नहीं मालूम देते। इसके विपरीत वह पहले से कहीं अधिक तेजस्वी और उत्साही जान पड़ते थे और कर्मचारियों को आदेश-पर-आदेश देते जाते थे।

माउंटबेटन गांधीजी के हाल के प्रार्थना-प्रवचनों पर विस्तार से विचार करने को व्यग्र थे। इन प्रवचनों में गांधीजी ने संयुक्त भारत का पक्ष लिया था और उनके भाषणों से ऐसा लगता था मानो वह मंत्रिमंडलीय-योजना के जबरन लादे जाने के पक्ष में हों। कालविल और वी. पी. मेनन, दोनों ने यह मत व्यक्त किया कि विभाजन के प्रति गांधीजी का विरोध

योजना को तोड़ने की सीमा तक नहीं पहुंचेगा।

माउंटबेटन का स्पष्ट मत था कि वह जिन्ना पर नाराजी की बजाय दुख ही प्रकट करेंगे। जिन्ना को बतलाएंगे कि उनकी गलियारे की मांग से उन्हें कितनी परेशानी हुई। जिन्ना के नाम चर्चिल का एक संदेशा भी वह साथ लाये थे जिसे वह जरूरत पड़ने पर प्रयोग में ला सकते थे। चर्चिल ने अपने संदेश में कहा था कि योजना को स्वीकार करना जिन्ना के लिए जीवन-मरण के प्रश्न से कम नहीं है।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
रविवार, १ जून १९४७

मैंने अपनी मां को लिखा :

"यहां हम महत्वपूर्ण घटनाओं के द्वार पर खड़े हैं और मैं सत्ता-हस्तांतरण के बारे में माउंटबेटन की ऐतिहासिक घोषणा की प्रचार-व्यवस्था को अंतिम रूप देने के काम में आकंठ डूबा हुआ हूं। वातावरण बहुत ही क्षुब्ध है और अगर फैसला विभाजन के पक्ष में हुआ—जैसा कि निश्चय-सा है—तो काफी साम्प्रदायिक दंगे हो सकते हैं। लेकिन आज की अनिश्चितता से तो कोई भी फैसला बेहतर ही होगा। यह बात ध्यान देने योग्य है कि यह गुस्सा अन्तरिम और आपसी है। अंग्रेज हिन्दू और मुसलमानों दोनों में जितने लोकप्रिय आज हैं, उतने पहले कभी नहीं थे।

"सरकार की २० फरवरी वाली घोषणा का खास असर यह हुआ कि कांग्रेस हाई कमान को यह मान लेना पड़ा था कि विभाजन अवश्यम्भावी है। गांधीजी इस विचार-धारा से सहमत नहीं हो रहे थे और इसके खिलाफ कड़ा संघर्ष कर रहे थे। उनके इस विरोध की सीमा क्या होगी, यह कहना मुश्किल था।

"अन्तरिम सरकार के दोनों प्रमुख कांग्रेसी नेताओं नेहरू और पटेल ने इस धारणा पर विभाजन को स्वीकार किया था कि जिन्ना

को पाकिस्तान देकर वे उनसे मुक्ति पा जायंगे या जैसा कि नेहरू खानगी तौर से कहते थे, 'सिर कटाकर हम सिरदर्द से छुट्टी पा लेंगे।' उनका यह रुख दूरदर्शितापूर्ण लगता था क्योंकि अधिकाधिक खिलाने के साथ-साथ जिन्ना की भूख बढ़ती ही जाती थी और पूर्वी तथा पश्चिमी पाकिस्तान को जोड़ने के लिए ८०० मील लम्बे गलियारे की मांग उनकी सर्वग्राही नीति का सुन्दर उदाहरण था। इसलिए दोनों पक्ष समझौते पर बहुत ही अशोभनीय ढंग से विचार कर रहे थे। विभाजन निश्चय ही एक दुखांत घटना थी, लेकिन इससे भी दुखांत घटना होगी एक ऐसी एकता थोपने का प्रयास करना, जो १० करोड़ मुसलमानों के अधिकांश भाग को स्वीकार नहीं थी।"

: ९ :

ऐतिहासिक समझौता

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
सोमवार, २ जून १९४७

ऐतिहासिक घड़ी आ पहुंची। अपनी बड़ी अमरीकी-कारों में सवार नेता लोग उत्तरी आंगन में आने लगे हैं। जिन्ना सबसे बाद में आये, कुछ मिनट देर से। माउंटबेटन ने इधर-उधर की बातें करने की पूरी कोशिश की, किन्तु साफ जाहिर है कि वातावरण काफी आवेशपूर्ण है। कृपालानी को शामिल करने की समस्या जिन्ना को अपने साथ रबनिश्तर को लाने की अनुमति देकर हल कर ली गई थी। इस प्रकार 'पांच बड़े' अब 'सात बड़े' हो गए हैं।

माउंटबेटन इस बात के लिए उत्सुक थे कि इस प्रारम्भिक बैठक की कार्यवाही में किसी प्रकार की रुकावट न आवे। इसलिए फोटो लेने का काम भारत सरकार के फोटोग्राफर तक ही सीमित रखा गया। इससे तत्काल भारतीय और विदेशी फोटोग्राफरों में बहुत नाराजी फैल गई और उन्होंने मेक्स डेस्फॉर के नेतृत्व में 'वाक् आउट' कर दिया और मुझे एक विरोध-पत्र भेजा। मैं उनकी शिकायत को पूरी तरह समझता था और आशा करता था कि कल इसका कोई इलाज कर सकूंगा। लेकिन आज तो महत्व की बात यह थी कि बिना किसी मानसिक खिचाव या विघ्न के माउंट-बेटन कार्यवाही का शुभ श्रीगणेश कर सकें।

बैठक ठीक दो घंटे चली। वरनोन ने बतलाया कि अधिकांश बोलने का काम माउंटबेटन ने ही किया और घटनाओं के विकास का तर्कपूर्ण विश्लेषण करने में बड़ी कुशलता दिखाई। उनके शुरू के शब्दों में नेताओं को उन परिस्थितियों के स्तर तक उठने की चुनौती थी, जिनका निर्माण उनके हाथों

हो रहा था । उन्होंने कहा कि गत पांच वर्षों में उन्होंने युद्ध के भाग्य का निर्णय करनेवाली बहुत-सी महत्वपूर्ण बैठकों में भाग लिया । लेकिन शायद ही किसी बैठक में किये गए निर्णयों का विश्व के इतिहास पर इतना गहरा असर हुआ हो जितना आज की बैठक के निर्णयों का होगा। माउंटबेटन ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह नेताओं की इच्छाओं के खिलाफ रफ्तार बढ़ाने की कोशिश नहीं कर रहे। जिन लोगों से उनकी बातें हुईं, उन सबने ही स्थिति की विशद गंभीरता पर जोर दिया था । उन सबने मौजूदा अनिश्चितता का अन्त करने की इच्छा ज़ाहिर की । इसलिए जितनी जल्दी सत्ता-हस्तांतरण हो, उतना अच्छा।

इसके बाद माउंटबेटन ने मंत्रिमंडलीय-योजना को पुनरुज्जीवित करने का आखिरी औपचारिक प्रयास किया और जिन्ना ने आखिरी बार औपचारिक रूप से उसे ठुकरा दिया। अब माउंटबेटन ने विभाजन द्वारा उत्पन्न दुविधा का जिक्र किया। उन्होंने कहा कि कांग्रेस भारत के विभाजन के सिद्धांत से सहमत नहीं है। लेकिन अगर विभाजन टाला न जा सके तो वह प्रांतों के विभाजन का आग्रह करेगी, जिसमें मुसलमान या हिन्दू बहुमतवाले इलाकों पर कोई जोर-जबरदस्ती न हो । उधर जिन्ना प्रांतों के विभाजन के विरोधी थे, लेकिन भारत के विभाजन की मांग करते थे।

माउंटबेटन ने यह बतलाने की कोशिश की कि उनकी योजना को ब्रिटिश विरोधी दल का समर्थन प्राप्त है। उन्होंने कहा कि इस योजना को लंदन में पार्टीबन्दी की दृष्टि से नहीं देखा जा रहा । उन्होंने सिखों की स्थिति के बारे में अपनी व्यथा की चर्चा की और कलकत्ता को स्वतन्त्र बन्दरगाह बनाने या न बनाने के प्रश्न पर मत-संग्रह किये जाने के सुझाव को दृढ़ता के साथ अन्तिम रूप में रद्द कर दिया।

फिर बड़ी चतुराई के साथ उन्होंने योजना की नई धारा २० को 'तुरन्त सत्ता-हस्तांतरण' शीर्षक के अन्तर्गत पेश किया। उन्होंने इसके फलस्वरूप उत्पन्न औपनिवेशक स्वराज्य का पक्ष समर्थन किया, इसलिए नहीं कि समय की मर्यादा बीत जाने पर भी ब्रिटेन यहां जमा रहना

चाहता है, बल्कि यह आक्षेप किये जाने के भय से कि वह अपने दायित्व से भाग खड़ा हुआ। उन्होंने कहा कि इसलिए आवश्यकता होने पर ब्रिटेन को सहयोग से असमय हाथ नहीं खींचना चाहिए।

जिन्ना ने अपनी एक पिछली मुलाकात में एक प्रस्ताव पर 'सहमति' और 'स्वीकृति' में भेद बताकर माउंटबेटन को चौंका दिया था। इस 'पांडित्य' का उपयोग आज माउंटबेटन ने अपने सुभीते के लिए किया।

योजना की प्रतियां सबको बांट देने के बाद उन्होंने कहा कि वह महसूस करते हैं कि नेताओं से योजना के प्रति पूरी सहमति की मांग करना नेताओं को अपनी आत्मा के विरुद्ध काम करने पर मजबूर करना होगा। इसलिए वह उनसे केवल यही अनुरोध करना चाहेंगे कि वे योजना को शांतिपूर्ण भावना से अपनी स्वीकृति दे दें। जब नेहरू ने 'स्वीकृति' और 'सहमति' के भेद और उसकी परिभाषा करने को कहा तो माउंटबेटन ने तुरन्त उत्तर दिया कि सहमति में यह विश्वास निहित है कि वह सही सिद्धांतों पर आधारित है। लेकिन चूंकि उन्हें दोनों पक्षों के सिद्धांतों की अवहेलना करनी पड़ी थी, इसलिए वह पूरी सहमति की मांग नहीं कर सकते। वह केवल यह चाहते हैं कि योजना पर यह विश्वास प्रकट करते हुए स्वीकृति दे दी जाय कि देश की भलाई के लिए वह एक न्यायपूर्ण और ईमानदारी का हल है।

इसपर नेहरू ने कहा कि यद्यपि कांग्रेस इस योजना से पूरी तौर से सहमत तो कभी नहीं हो सकती, लेकिन हां, उसे वह स्वीकार करने को तैयार है। निश्तर ने कहा कि योजना की स्वीकृति में वस्तुतः उसे कार्यान्वित करने की सहमति निहित है। माउंटबेटन ने इसपर अपनी हार्दिक स्वीकृति प्रकट की, और उस क्षण से जान लिया कि असली लड़ाई जीती जा चुकी है।

तब जिन्ना ने इस बात की लम्बी-चौड़ी सफाई दी कि सर्वशक्तिमान कायदे-आज़म होते हुए भी वह क्यों स्वयं कोई निर्णय नहीं ले सकते। उन्होंने कहा कि प्रस्तावों को उन्होंने आत्मसात कर लिया है, किन्तु

अन्तिम निर्णय करने से पूर्व उन्हें और उनकी कार्यसमिति दोनों को, अपने मालिकों, आम जनता, के सामने जाना पड़ेगा। माउंटबेटन ने कहा कि ऐसे मौके भी आते हैं जब नेताओं को बिना अपने अनुयायियों से सलाह किये महत्वपूर्ण निश्चय करने पड़ते हैं—इस विश्वास के साथ कि बाद में वे उनका समर्थन प्राप्त कर सकेंगे। ऊपर से एक निश्चय कर लिया जाय और बाद में जनता द्वारा उसकी पुष्टि हो जाय तो यह जनतंत्री कार्यविधि के अनुकूल होगा। फिर, जिन्ना स्वीकृतिसूचक निर्णय के इतने नज़दीक पहुंच गए जितनी एक ऐसे व्यक्ति से अपेक्षा की जा सकती थी जो बार-बार 'नहीं' कहकर ही इतनी सफलता पा सका हो। उन्होंने जोर देकर कहा कि वह अपने मालिकों, आम जनता, के सामने इस योजना को तोड़ने नहीं, बल्कि उन्हें इसे स्वीकृति देने के लिए राजी करने के ईमानदारीपूर्ण इरादे से जायंगे। अभी वह अपना व्यक्तिगत आश्वासन मात्र दे सकते हैं कि वह अपनी ओर से पूरी कोशिश करेंगे।

माउंटबेटन कांग्रेस और मुस्लिम लीग की कार्यसमितियों तथा सिखों की प्रतिक्रिया आधी रात तक जानना चाहते थे। कृपालानी और बलदेवसिंह ने उसी शाम पत्र भेजना मंजूर कर लिया। जिन्ना ने अपनी कार्यसमिति की राय को लिखित रूप से भेजने में असमर्थता प्रकट की किन्तु वह इस बात पर राजी हो गए कि वाइसराय से मिलकर वह उन्हें मौखिक रिपोर्ट दे देंगे। माउंटबेटन इससे संतुष्ट हो गए।

नेहरू, जिन्ना और बलदेवसिंह की इस बात के लिए स्वीकृति भी माउंटबेटन ने प्राप्त कर ली कि अगले दिन शाम को वे उनके बाद आल इंडिया रेडियो से जनता के नाम संदेश प्रसारित करें। माउंटबेटन ने कहा कि वह उन्हें अपने भाषण का मसविदा सुबह दिखा देंगे। पटेल ने, जो बहुत कम बोले थे, कुटिल मुसकान से कहा कि आम कायदा तो यह है कि रेडियो-भाषण की पांडुलिपियां प्रसारित होने से पहले सूचना-मंत्री को (अर्थात् स्वयं उन्हें) भेजी जानी चाहिएं। जिन्ना ने बिना मुसकराए उत्तर दिया कि वह अपने भाषण में वही कहेंगे जो उस समय उनके दिल में

आयगा।

जैसा कि पहले ही तय था, बैठक के बाद माउंटबेटन ने जिन्ना से रुकने को कहा। इसके दो उद्देश्य थे। वह गांधीजी को, जो कभी कांग्रेसी नेताओं के साथ नहीं आते थे, अलग मुलाकात देनेवाले थे और इस विषय में मुस्लिम लीग की आलोचना को निस्सार कर देना चाहते थे। दूसरा कारण यह कि वह जिन्ना पर व्यक्तिगत दबाव डालना चाहते थे और जरा ज्यादा स्पष्टतया जानना चाहते थे कि अन्त में जिन्ना क्या रुख अपनायंगे। लेकिन जिन्ना ने योजना पर कुछ नहीं कहा। अब सारा दारोमदार उनकी रात की भेंट पर निर्भर करता था।

फिर साढ़े बारह बजे महात्माजी आये। एक तरह से वह सारी कार्य-वाही में उपस्थित रहे थे। विभाजन-योजना के औपचारिक रूप से पेश किये जाने पर उनकी अन्तिम प्रतिक्रिया के बारे में अनिश्चितता ने सवेरे की बैठक में कांग्रेसी-नेताओं के हाथ-पैर बांधने का काम किया था। अपनी अन्तरात्मा के आदेशों पर गांधीजी किसी चीज के बारे में क्या रुख अपनाते हैं, इस विषय में अनिश्चितता से कांग्रेसी-नेता खूब परिचित थे। काफी लोगों को तो आशंका थी कि अपनी अन्तरात्मा के आदेश पर वह योजना को तोड़ने का भरपूर प्रयास करेंगे जिससे, भारत के विभाजन को रोक सकें। माउंटबेटन इस मुलाकात से काफी डर रहे थे। उनके आश्चर्य और राहत की सीमा न रही जब गांधीजी ने इस्तेमाल किये लिफाफों तथा रद्दी कागजों की पीठ पर लिखकर सूचित किया कि आज उनका मौन दिवस है।

भेंट खत्म हो जाने के बाद माउंटबेटन ने कागज़ के इन टुकड़ों को उठा लिया। इन्हें वह ऐतिहासिक स्मृति-चिह्न समझते थे। उनपर महात्मा-जी ने लिखा था, "खेद है कि मैं बोल नहीं सकता। सोमवार के मौन का निर्णय लेते समय मैंने केवल दो अपवाद रखे थे। जरूरी मामलों पर उच्च-अधिकारियों से बात करना और बीमारों की परिचर्या। लेकिन मैं जानता हूं कि आप नहीं चाहते कि मैं अपना मौन तोड़ूं। क्या मैंने अपने

भाषणों में एक भी शब्द आपके विरुद्ध कहा है ? यदि आप स्वीकार करें कि मैंने नहीं कहा तो आपकी चेतावनी अनावश्यक है । दो-एक चीजों पर मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूं, लेकिन आज नहीं । अगर हम फिर मिले तो कहूंगा ।"

इस विचित्र कार्यविधि में राजनैतिक त्याग, निःस्पृहता और आत्मसंयम का महान् कार्य छिपा हुआ था। जब इस ऐतिहासिक बैठक के बाद मैं प्रेस-विज्ञप्ति के बारे में माउंटबेटन से दो शब्द कहने अन्दर गया तो मैंने भी छोटी गोलमेज़ से एक तोफा खोज निकाला। यह था जिन्ना द्वारा अपनी महानतम राजनैतिक विजय के क्षण में अनजाने एक सफेद कागज पर खींची लकीरों का गोरख-धंधा। मैं कोई मनोवैज्ञानिक नहीं, लेकिन मेरा खयाल है कि इस गोरख-धंधे में शक्ति और गौरव के चिह्न सहज ही देखे जा सकते थे ।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
मंगलवार, ३ जून १९४७

माउंटबेटन ने आजका काम सुबह ही कर्मचारी-मंडल की बैठक से शुरू किया, जिसमें उन्होंने कल आधी रात के समय जिन्ना के साथ हुई नाटकीय झड़प का हाल बताया। चूंकि जिन्ना ने योजना पर अपना उत्तर लिखित रूप में देने से साफ इन्कार कर दिया था इसलिए उनकी जबानी बात के गवाह के रूप में इस्मे भी माउंटबेटन के साथ शामिल हो गए। जिन्ना ने उन्हीं बातों को विस्तार से दोहराना शुरू किया जो उन्होंने सुबह नेताओं की बैठक में कही थीं, और माउंटबेटन के कितना ही दबाव डालने पर भी वह यह स्वीकृति देने पर राज़ी नहीं हुए कि मुस्लिम लीग कौंसिल की बैठक योजना पर दृढ़तापूर्वक अपनी सहमति प्रकट कर देगी। वह केवल इतना जिम्मा लेने को तैयार थे कि कौंसिल से योजना मनवाने का वह वैधानिक तरीके से भरसक प्रयत्न करेंगे और इस कार्य

में उनकी कार्यसमिति उनका समर्थन करेगी।

माउंटबेटन ने तब जिन्ना को याद दिलाई कि कांग्रेस को उनकी इस तरह की पैंतरेबाज़ी पर भयंकर संदेह है, जिसे वह हमेशा इस्तेमाल करते हैं। वह यह कि जबतक किसी योजना के बारे में कांग्रेस कोई पक्का निश्चय नहीं कर लेती तबतक तो वह इंतज़ार करते रहते हैं और उसके कई दिन बाद मुस्लिम लीग के मन-माफिक फैसले की घोषणा करने की छूट रखते हैं। माउंटबेटन ने चेतावनी दी कि नेहरू, कृपालानी और पटेल ने यह शर्त रखी थी कि यदि मुस्लिम लीग ने भी उनके साथ ही योजना को स्वीकार नहीं किया तो वे योजना को ठुकरा देंगे। उन्होंने यह भी शर्त रखी थी कि मुस्लिम लीग इसे एक अन्तिम समझौते के रूप में स्वीकार करे।

माउंटबेटन के लाख कहने पर भी जिन्ना टस-से-मस न हुए। जिन्ना ने फिर एक बार यह बहाना किया कि मुस्लिम लीग कौंसिल की सलाह के बिना उन्हें निर्णय करने का कोई वैधानिक अधिकार नहीं और कहा कि कौंसिल की बैठक तो वह अभी कई दिनों तक नहीं बुला सकेंगे। माउंटबेटन ने कहा, "अगर यही आपका रुख है तो कांग्रेसी और सिख नेता भी कल सुबह की बैठक में योजना को नामंजूर कर देंगे, फिर अराजकता फैल जायगी और आप अपना पाकिस्तान भी खो बैठेंगे शायद हमेशा के लिए।" जिन्ना ने कंधे हिलाते हुए केवल इतना कहा, "जो होना होगा हो जायगा।"

इसपर माउंटबेटन ने कहा, "मि. जिन्ना, इस समझौते को तैयार करने में जो मेहनत लगी थी, उसे मैं आपको इस तरह बेकार नहीं करने दूंगा। चूंकि आप मुस्लिम लीग की ओर से स्वीकृति देने को तैयार नहीं इसलिए मैं उसकी ओर से बोलूंगा। मैं यह कहने का खतरा उठाऊंगा कि जो आश्वासन आपने मुझे दिये थे उनसे मैं संतुष्ट हूं। यदि आपकी कौंसिल समझौते की पुष्टि नहीं करे तो आप मुझे दोष दे सकते हैं। लेकिन मेरी एक शर्त है। जब सुबह की बैठक में मैं यह कहूं कि मि. जिन्ना ने मुझे कुछ आश्वासन दिये हैं, जिन्हें मैंने स्वीकार कर लिया है और मैं उनसे संतुष्ट हूं तो आप

किसी भी हालत में उसका खंडन नहीं करेंगे। और जब मैं आपकी ओर देखूं तो आपको सहमति स्वरूप अपना सिर हिलाना होगा।"

इस प्रस्ताव के उत्तर में भी जिन्ना ने कोई मौखिक स्वीकृति न देकर केवल सिर हिला दिया। माउंटबेटन का अन्तिम प्रश्न यह था, "क्या मेरा एटली को यह सलाह भेजना ठीक होगा कि वह योजना की घोषणा कल कर दें ?" इसके उत्तर में जिन्ना ने कहा, "हां !" इस अन्तिम आश्वासन से माउंटबेटन और इस्मे ने यह समझ लिया कि मुस्लिम लीग कौंसिल की बैठक होने से पहले, जो एक सप्ताह के अन्दर होगी, जिन्ना से जिस हद तक 'हां' कराना संभव था, वह करा ली गई।

जिन्ना के जाने के थोड़ी देर बाद ही कृपालानी का पत्र आया। इसमें कुछ छोटी बातों पर स्वीकृति न देने के अलावा वैसे आम तौर से पूरी योजना पर कांग्रेस कार्यसमिति की दृढ़ स्वीकृति प्रकट की गई थी।

नेताओं के साथ दूसरी बैठक का प्रारम्भ माउंटबेटन ने कल रात जिन्ना के साथ हुई मुलाकात की रिपोर्ट देकर किया। उन्होंने बताया कि जिन्ना के आश्वासन उन्होंने स्वीकार कर लिये हैं। जिन्ना ने इसकी पुष्टि चुपचाप सिर हिलाकर की। फिर उन्होंने उन गंभीर आपत्तियों का जिक्र किया जो विभिन्न दलों ने योजना के अलग-अलग मुद्दों पर उठाई थीं। इनके उठाए जाने पर उन्होंने कृतज्ञता प्रकट की। लेकिन उन्होंने कहा कि चूंकि वह अच्छी तरह जानते हैं कि किसी दल का कोई सुझाव किसी दूसरे दल को स्वीकार नहीं होगा, इसलिए वह उन्हें इस बैठक में छेड़ना ठीक नहीं समझते। अतः उन्होंने नेताओं से आग्रह किया कि वे उनकी इस बात को स्वीकार करें। नेताओं ने बात मान ली। इस प्रकार अपने-आप, और शायद अनजाने ही, विवाद के सब प्रश्न ठिकाने लग गए।

माउंटबेटन के यह घोषणा करते ही कि शतप्रतिशत सहमति के जितने नज़दीक पहुंचना संभव था, यह योजना, उतने नज़दीक पहुंच गई है। जिन्ना, कृपालानी और बलदेवसिंह ने कहा कि वाइसराय ने उनके विचारों का ठीक अर्थ समझा है। माउंटबेटन ने कहा कि अब योजना की

सरकारी रूप से घोषणा की जायगी। इस पर किसी नेता ने कोई आपत्ति नहीं की।

इसलिए ऐसा लगने लगा कि आगे का रास्ता अब साफ है। लेकिन माउंटबेटन के यह अपील करने पर कि छोटे नेता संयम से काम लें और अतीत को भूल जायं जिससे सुन्दर भविष्य निर्माण करने का मार्ग प्रशस्त हो सके, लियाकत से यह कहे बिना नहीं रहा गया कि संयम की ज्यादा जरूरत छोटे नेताओं की बजाय बड़े नेताओं को है, जैसे गांधीजी को अपनी प्रार्थना सभाओं के समय। इससे कटुता के पुराने जख्म फिर हरे हो गए।

जिन्ना और लियाकत ने आरोप लगाया कि गांधीजी लोगों को मनमानी करने के लिए उकसा रहे हैं और इस बैठक में भाग लेनेवाले नेताओं की बजाय और किसी पर आस लगाने की सलाह दे रहे हैं। इसपर कृपालानी ने जवाब दिया कि गांधीजी के सारे क्रम अहिंसात्मक होते हैं। पटेल ने मत व्यक्त किया कि गांधीजी किसी भी फैसले का निष्ठा के साथ पालन करेंगे। माउंटबेटन को यह कहकर इस खतरनाक विवाद का अन्त करना पड़ा कि उनकी राय में इस प्रश्न पर काफी चर्चा हो चुकी है।

फिर माउंटबेटन ने बड़े नाटकीय ढंग के साथ विभाजन के प्रशासन-संबंधी नतीजों के अभिलेख को सिर तक उठा कर और फिर मेज़ पर पटकते हुए नेताओं के सामने पेश किया। बड़े-बड़े अधिकारियों द्वारा लिखा यह दस्तावेज आज ही के दिन के लिए तैयार किया गया था। इसमें फुलस्केप आकार के घने टाइप वाले चौंतीस पृष्ठ थे। थोड़े में लिखने की कला का यह उत्कृष्ट उदाहरण था।

बोलने की ज़रा-सी भूल को लेकर तिल का ताड़ बनाये जाने का एक और उदाहरण सामने आया। माउंटबेटन ने सुझाव दिया कि इस दस्तावेज़ को 'मंत्रिमंडल की बैठक' के सामने पेश करने के पहले उस-पर प्रारम्भिक चर्चा कर ली जाय। जिन्ना और लियाकत ने खट से लम्बी-चौड़ी आपत्ति की कि 'ब्रिटिश मंत्रिमंडल' इस बारे में निर्णायक अधि-

कारी नहीं। कई मिनट बाद पता चला कि जिन्ना समझे कि माउंटबेटन का आशय भारतीय मंत्रिमंडल या अन्तरिम सरकार से नहीं, बल्कि ब्रिटिश मंत्रिमंडल से है। इसपर उन्होंने शिकायत की कि उन्हें भ्रम में डाल दिया गया था। उन्होंने कहा, "आपका आशय वाइसराय की एक्ज़ीक्यूटिव कौंसिल से है तो फिर स्पष्ट बात क्यों नहीं कहते ?" उन्होंने कहा कि उनका दिमाग वैधानिक ढंग से काम करता है।

दस्तावेज़ में सुझाया गया था कि दोनों दलों की एक मिली-जुली विभाजन समिति की रचना की जाय। इसके बारे में लियाकत ने पूछा कि क्या इस समिति में प्रश्नों का निबटारा बहुमत के आधार पर किया जायगा ? माउंटबेटन ने कहा कि नहीं, वार्तालाप के आधार पर ही औचित्य का निर्णय किया जायगा। उन्होंने कहा कि उन्हें भरोसा है कि चूंकि विभाजन का प्रश्न अन्तिम रूप से तय हो चुका है, इसलिए शेष प्रश्नों पर विचार करने में एक नई भावना से काम लिया जायगा। लियाकत ने बड़ी तेजी से उत्तर दिया कि यह नई भावना का प्रश्न नहीं है। सेनाओं के विभाजन के महत्वपूर्ण प्रश्न पर गंभीर मतभेद हैं।

लेकिन जल्दी ही इस विवाद की गर्मी जाती रही। यह तय होते देर नहीं लगी कि बंटवारा नागरिकता के आधार पर किया जाना चाहिए और नागरिकता का आधार भौगोलिक होना चाहिए। जिन्ना ने बड़े जोश के साथ ऐलान किया कि पाकिस्तान में कोई साम्प्रदायिक भेदभाव नहीं किया जायगा और वहां रहनेवाले लोगों को उनके धर्म का विचार किये बिना पूरा नागरिक माना जायगा।

चार बजे रियासती वार्ता कमेटी के सदस्य कौंसिल भवन में एकत्रित हुए, जिसमें आज रात के सरकारी ऐलान और भाषणों के पहले उन्हें माउंटबेटन और नेताओं के बीच हुए समझौते की पृष्ठभूमि समझाई जा सके।

विशाल अंडाकार मेज़ के इर्द-गिर्द रियासती जगत के श्रेष्ठ सलाहकार बैठे हुए थे। भोपाल, पटियाला, डूंगरपुर, नवांनगर और बिलासपुर के

शासक स्वयं। हैदराबाद के दीवान सर मिर्ज़ा इस्माइल, बड़ौदा के सर बी. एल. मित्तर, मैसूर के सर रामास्वामी मुदलियार, काश्मीर के काक, ग्वालियर के श्रीनिवासन, त्रावनकोर के सर सी. पी. रामास्वामी ऐयर, जयपुर के सर वी. टी. कृष्णमाचारी, बीकानेर के पणिक्कर, सर सुल्तान-अहमद और नरेंद्र मंडल के प्रतिनिधि डी. के. सेन।

यह बात मार्के की थी कि ब्रिटिश भारत के बहुत से श्रेष्ठतम बुद्धिमान लोग रियासतों के दीवान हैं। उनमें से कई तो पहले दर्जे के वकील थे, जिससे उन्हें 'सार्वभौमता के अन्त' के समान गुत्थीदार समस्याओं से निबटने में सहायता मिलती है। अपने राजाओं के साथ उनका वही संबंध रहता था जो एक बैरिस्टर का अपने मूल्यवान मवक्किल के साथ होता है।

वे लोग खासतौर से यह जानने को उत्सुक थे कि क्या ब्रिटिश-भारत में सत्ता-हस्तांतरण के पहले ब्रिटिश-सत्ता का अन्त करना संभव होगा? उनकी कल्पना यही थी कि ऐसा होने पर रियासतें सत्ता पाने वाली सरकारों से ज्यादा सुभीते के साथ मोल-भाव कर सकेंगी।

माउंटबेटन ने बैठक को वास्तविकता के निकट लाने का भरपूर प्रयास किया। उन्होंने बतलाया कि दो राज्यों के निर्माण का अर्थ होगा दो मजबूत केंद्रीय सरकारें, जो अपनी सत्ता का विभाजन सहन नहीं कर सकेंगी। दूसरी ओर औपनिवेशिक स्वराज्य स्वीकार कर लेने से उन राजाओं को, जिन्होंने ब्रिटेन के साथ हुई अपनी संधियों और दोस्ती का स्वामिभक्ति के साथ पालन किया था, सुरक्षा और मुआवजा दोनों मिल सकेंगे। उन्होंने सलाह दी कि कोई भी निर्णय लेने के पहले वे अपने दिमागों को दस साल आगे ले जायं और कल्पना करें कि उस समय भारत और दुनिया की क्या परिस्थिति होगी।

नियत समय पर वाइसराय की रोल्स मोटर में मैं माउंटबेटन के साथ आल इंडिया रेडियो पहुंचा। अधिकारी लोग खिड़कियों से झांक रहे थे और छज्जों पर भीड़ लगी हुई थी। भवन के प्रवेश-द्वार पर भी लोगों

की थोड़ी-सी भीड़ जमा थी। फे भी एक छज्जे पर खड़े थे और उन्होंने बाद में मुझे बताया कि हमारे भवन में प्रवेश करते ही गेरुए रंग की टोपी पहने साधुओं के एक दल ने नारे लगाना शुरू कर दिया था। उनका प्रदर्शन करना था कि हमारे पीछे आनेवाली एक पुलिस मोटर ने उन्हें धर पकड़ा। यह काम इतनी सफाई से हुआ कि वहां मौजूद भद्र भारतीयों की भीड़ खिलखिलाकर हंस पड़ी। ये साधु देश के विभिन्न भागों से आये हुए थे और जमुना के किनारे उन्होंने डेरा डाल रखा था। वे आये थे हिन्दू धर्म और जाति के प्रति विश्वासघात का विरोध करने, जो उनके खयाल से विभाजन का आवश्यक परिणाम होगा।

इधर यह बैठक हो रही थी और मैं माउंटबेटन द्वारा आल इंडिया रेडियो से प्रसारित होनेवाली घोषणा की प्रतिलिपियां तैयार कर रहा था। मैंने ये प्रतिलिपियां समाचारपत्रों को घोषणा से तीन घंटे पूर्व दे दीं।

माउंटबेटन बड़ी धीमी और नपी-तुली आवाज में बोले, जबकि व्यक्तिगत चर्चा में वह फर्राटे के साथ बोला करते हैं। उनका भाषण संतुलित और अतिरंजना से परे था। अपनी व्यक्तिगत विजय के क्षण में उनका संदेश उदार और वास्तविक था।

नेहरू का भाषण भाव और अभिव्यक्ति दोनों दृष्टियों से प्रभावपूर्ण था। उसमें न अहंकार था, न क्षमा-याचना। थी एक उदासी मात्र, जो सफलता की चिरसंगिनी होती है। नेहरू की शक्ति का रहस्य यह है कि हालांकि वह एक पक्ष के आंदोलनकर्ता के रूप में इतने बड़े बने हैं, फिर भी उन्होंने अनासक्ति की भावना कायम रखी है। उनका रूप मुख्यतः कलाकार और विद्वान का है। इसीलिए इस परिवर्तनकारी घड़ी में वह यह कह सके, "महान अनुष्ठान में योग देनेवाले हम अदने आदमी हैं। लेकिन चूंकि अनुष्ठान महान् है इसलिए उसकी महानता का कुछ अंश हमारे हाथ भी आ गया है।"

फिर आये जिन्ना। मुस्लिम लीग के भाषण-शास्त्रियों ने मुझे

विश्वास दिलाया कि उनका भाषण उत्कृष्ट था। उनमें से एक ने मुझ से भाषण के तुरन्त बाद कहा भी, "यह भाषा बाजार वाले भी समझेंगे। इसका अर्थ है शांति।" लेकिन वास्तविक ढंग से मुझे उनके भाषण में कोई जादू नज़र नहीं आया। मुझे तो लगा कि जिन घटनाओं का उन्होंने निर्माण किया था उसके स्तर तक उठने में वह इस क्षण असफल रहे।

उनके शुरू के वाक्य में अधिकारियों की इस बात के लिए आलोचना की गई थी कि एक गैरसरकारी व्यक्ति के रूप में आज से पहले उन्हें रेडियो पर भाषण देने की सहूलियत नहीं दी गई थी। "मैं उम्मीद करता हूं कि भविष्य में अपनी राय जाहिर करने की ज्यादा सुविधाएं मुझे मिल सकेंगी और मेरी आवाज अखबारों के बेजान अक्षरों की बजाय ताजी और सजीव आपके पास पहुंचा करेगी।" लेकिन उन्होंने जो कहा उसमें न मुझे ताज़गी मिली, न सजीवता। इसका अगर थोड़ा बहुत आभास मिला तो उन शब्दों में, जो उन्होंने माउंटबेटन को श्रद्धांजलि देते हुए कहे।

बड़ी चतुराई से उन्होंने योजना पर कोई ऐलान भी नहीं किया और स्वीकृति का आभास भी बनाये रखा। सब में बड़ी गुत्थी उनके इन शब्दों में छिपी हुई थी "हमें यह सोचना है कि ब्रिटिश सरकार द्वारा पेश की गई योजना को हम सहमति समझें या समझौता। इस बारे में मैं पहले से कुछ कहना नहीं चाहता।" नेहरू के अन्तिम शब्द थे "जय हिन्द!" जिन्ना ने भाषण का अन्त "पाकिस्तान जिन्दाबाद" कहकर किया। लेकिन यह उन्होंने ऐसे जोर से कहा कि कुछ सुनने-वालों को ऐसा लगा मानो कायदे-आज़म ने सारी सज्जनता को तिलां-जलि देकर कहा हो, "पाकिस्तान हमारी मुट्ठी में है!"

बलदेवसिंह सबसे बाद में बोले। और यह देखते हुए कि विभाजन से सिखों को कितनी भारी हानि उठानी पड़ेगी और इससे उनके सह-धर्मियों में कितनी गहरी कटुता फैलेगी, उनके शब्द काफी जानदार और साहसपूर्ण थे। उन्होंने भारत की सेनाओं को आह्वान किया कि वे

अनुशासन के ऊंचे आदर्शों पर कायम रहें, खासकर आंतरिक सुरक्षा के अप्रिय काम को अन्जाम देने में। जिन्ना के विपरीत उन्होंने योजना को समझौता नहीं माना। उन्होंने कहा, "मैं इसे सहमति कहना पसन्द करूंगा।"

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
बुधवार, ४ जून १९४७

आज सवेरे लगभग तीन सौ भारतीय और विदेशी पत्रकारों के सामने लेजिस्लेटिव असेम्बली-भवन में माउंटबेटन ने जिस कुशाग्रता का परिचय दिया, वह मेरे लिए अभूतपूर्व था। बिना किसी कागज की सहायता लिये, और बिना भूले-भटके उन्होंने पौन घंटे तक योजना के बारे में विभिन्न गुत्थियों की सुन्दर व्याख्या की।

इसके बाद उनसे करीब सौ सवाल पूछे गए। सवाल पूछनेवाले मुख्यतः भारतीय पत्रकार थे, जिनके प्रश्नों का उद्देश्य उतना जानकारी हासिल करना नहीं था जितना राजनैतिक प्रचार करना। माउंटबेटन के ठीक नीचे इस्मे, मिएविल, जार्ज एबेल, आएन स्काट, वी. पी. मेनन, वरनोन और मैं बैठे थे। लेकिन केवल दो बार ही उन्हें अपने कर्मचारियों की सहायता की आवश्यकता पड़ी।

काफी प्रश्न केवल कल्पना पर आधारित थे, जिनके उत्तर भी उसी ढंग से दिये गए। जैसे, बिलकुल प्रारम्भ में उनसे पूछा गया, "अपने पिछले अनुभवों के आधार पर हम यह पूछना चाहेंगे कि यदि मुस्लिम लीग कौंसिल ने योजना को ठुकरा दिया तो पाकिस्तान का क्या होगा?"

माउंटबेटन ने उत्तर दिया, "यह तो एक कल्पित प्रश्न है। अगर यह सवाल कभी उठे तो मेरे पास आइएगा। मैं बतला दूंगा कि मैं क्या करना चाहता हूं।"

प्रश्नकर्ता ने फिर पूछा, "लेकिन ऐसे अनुभव हमें पहले हो चुके हैं।"

माउंटबेटन बोले, "आपको हुए होंगे लेकिन मुझे नहीं। सच, अगर ऐसा हो तो मेरे पास आइएगा।"

उत्तर-पश्चिमी-सीमांत-प्रदेश में प्रस्तावित जनमत-संग्रह के प्रश्न पर भी उनसे बहुत से प्रश्न पूछे गए। इस प्रश्न पर आज भी कांग्रेस का ध्यान केंद्रित है। राजाओं के बारे में भी उनसे काफी देर तक सवाल पूछे गए। इन सवालों का उत्तर देने में भी माउंटबेटन का पलड़ा भारी रहा, क्योंकि प्रत्येक उत्तर के साथ वह योजना का वैधानिक औचित्य स्पष्ट करने में सफल हुए थे।

जब एक प्रश्नकर्ता ने मुस्लिम लीग की "गलियारे" की मांग पर उनसे भेद निकालना चाहा, तो माउंटबेटन ने उत्तर दिया, "आप योजना की किस धारा का जिक्र कर रहे हैं?" उनसे सिखों के भविष्य और उनके प्रति अपनाए रुख के बारे में भी प्रश्न पूछे गए। उन्होंने स्पष्ट कहा कि योजना के अन्तर्गत सिखों की समस्या ने उन्हें जितनी चिन्ता में डाला है, उतना अन्य किसी प्रश्न ने नहीं। सीमा-आयोग के बारे में उनसे विशेषकर प्रश्न पूछे गए। सीमा-आयोग को पंजाब, बंगाल और आसाम के मुस्लिम बहुमत प्रदेश की सीमाएं निर्धारित करने का भार सौंपा गया था। एक सिख संवाददाता ने पूछा कि क्या सीमाएं निर्धारित करने में अचल संपत्ति संबंधी योग्यता को भी एक आधार माना जायगा? माउंटबेटन ने मुसकराते हुए उत्तर दिया, "ब्रिटिश सरकार से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह अचल संपत्ति के आधार पर विभाजन से सहमत होगी, मौजूदा सरकार तो बिल्कुल ही नहीं।"

इस सम्मेलन में उन्होंने पहली बार अनौपचारिक रूप से यह संकेत किया कि दोनों उपनिवेशों की सत्ता हस्तांतरित किये जाने की संभावित तिथि १५ अगस्त होगी। असल में उनको सबसे अधिक कसा गया इसी औपनिवेशिक स्वराज्य के प्रश्न पर। इसी प्रश्न पर देवदास गांधी से उनकी टक्कर हुई। देवदास गांधी का बात करने का ढंग ऐसा विनम्र है कि वह विरोधी के सारे शस्त्र बेकार कर देते हैं। मुझे ऐसा

लगा कि जिस आग्रह के साथ वह प्रश्न करते रहे उससे उनके पिता की मनःस्थिति का भी कुछ अंदाज किया जा सकता था।

पहले तो माउंटबेटन की समझ में ही नहीं आया कि देवदास पूछ क्या रहे थे। लेकिन असल में वह कह यही रहे थे कि यदि कोई एक रियासत औपनिवेशिक दर्जा प्राप्त करना चाहे तो ब्रिटेन को यह मांग ठुकरा देना चाहिए और जोर देना चाहिए कि पूरा भारत ही राष्ट्रमंडल की सदस्यता का फैसला करे। उन्होंने कहा कि उन्हें लगता है कि विभिन्न विधान सभाओं को यह निर्णय करने की छूट देकर "भारी शैतानी की गुंजाइश" पैदा कर दी गई है। इस प्रश्न के पीछे यही पुराना शक काम कर रहा था कि औपनिवेशिक स्वराज्य स्वाधीनता से कम है। इसके साथ यह डर भी जुड़ा हुआ था कि अगर पाकिस्तान ने राष्ट्रमंडल के भीतर रहने का फैसला किया और भारत बाहर चला गया, तो शायद पाकिस्तान में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अड्डा बन जायगा ।

इस संबंध में माउंटबेटन के अन्तिम शब्द ये थे, "जो प्रश्न यहां पूछे गए हैं उनसे मुझे लगता है कि एक बात लोगों के सामने स्पष्ट नहीं है। न जाने क्यों लोगों के दिलों में इस शब्द औपनिवेशक स्वराज्य के बारे में कुछ शक भरे हुए हैं। इसका अर्थ पूर्ण स्वतन्त्रता है। अन्तर केवल इतना है कि राष्ट्रमंडल के सदस्य राष्ट्रों का आपस में स्वेच्छा से नाता बना रहेगा। सहायता, पारस्परिक विश्वास और आगे चलकर स्नेह के लिए वे एक-दूसरे का मुंह ताकेंगे।"

वाइसराय-भवन लौटते ही माउंटबेटन को यह मालूम होते देर न लगी कि देवदास की शंकाओं का आधार जितना लगा उससे कहीं गंभीर था। महात्माजी असंतुष्ट थे और शाम की प्रार्थना सभा में योजना की कड़ी आलोचना करनेवाले थे। इतना ही नहीं, कल नेताओं के रेडियो-भाषण के पहले उन्होंने कहा था कि कोई नेता आलोचना के परे नहीं है। उन्होंने अपनी दुधारी आलोचना का खास लक्ष्य बनाया था नेहरू को। उनको 'हमारे राजा' कहने के बाद उन्होंने कहा, "राजा जो कुछ करता

है या नहीं करता, हमें उसके कहे में नहीं आना चाहिए। अगर उसने कोई अच्छा काम किया है तो हमें उसके गुण गाना चाहिए। अगर उसने ऐसा नहीं किया है तो हमें यह भी साफ-साफ कह देना चाहिए।"

माउंटबेटन का यह निश्चय ठीक रहा कि गांधीजी को समझाने का समय आ गया है। उनकी शंकाओं की जड़ें गहरी होने और खतरनाक शक्ल लेने के पहले ही यह काम किया जाना चाहिए। इसलिए प्रार्थना सभा के जरा पहले उन्होंने गांधीजी को वाइसराय-भवन आने का आमंत्रण दिया। गांधीजी सचमुच दुखी थे; योजना के पहले सदमे से उन्हें लग रहा था कि हिन्दू-मुस्लिम-एकता के लिए उनके सारे जीवन के प्रयत्नों पर पानी फिर गया था। किन्तु माउंटबेटन ने मनाने की अपनी पूरी शक्ति का उपयोग कर उनसे कहा कि सरकारी ऐलान को माउंटबेटन-योजना न समझ कर गांधी-योजना समझें। पूरी ईमानदारी के साथ उन्होंने गांधीजी के प्रमुख विचारों—जोर-जबरदस्ती न किया जाना, आत्मनिर्णय, अंग्रेजों के जाने की निकटतम तिथि और औपनिवेशिक स्वराज्य—को योजना में शामिल करने का भरपूर प्रयास किया था।

आज के दिन फिर माउंटबेटन की ही जीत हुई। यह आज रात की गांधीजी की कही हुई बातों से देखा जा सकता है। उन्होंने अपनी प्रार्थना सभा में कहा, "विभाजन के लिए ब्रिटिश सरकार जिम्मेदार नहीं है। वाइसराय का इसमें कोई हाथ नहीं। सच बात तो यह है कि वह विभाजन के इतने ही विरोधी हैं जितनी कि कांग्रेस है। लेकिन अगर हम दोनों—हिन्दू और मुसलमान—किसी और बात पर राजी होने को तैयार नहीं तो वाइसराय के सामने दूसरा चारा नहीं रह जाता है।" उन्होंने बतलाया कि वाइसराय ने बहुत मेहनत की है और समझौता कराने की जी-तोड़ कोशिश। यह योजना ही ऐसी चीज थी, जिसके आधार पर समझौता हो सका। वाइसराय देश को अराजकता के हाथों छोड़कर नहीं जाना चाहते। इसीलिए उन्होंने समझौते की इतनी कोशिशें कीं। शायद
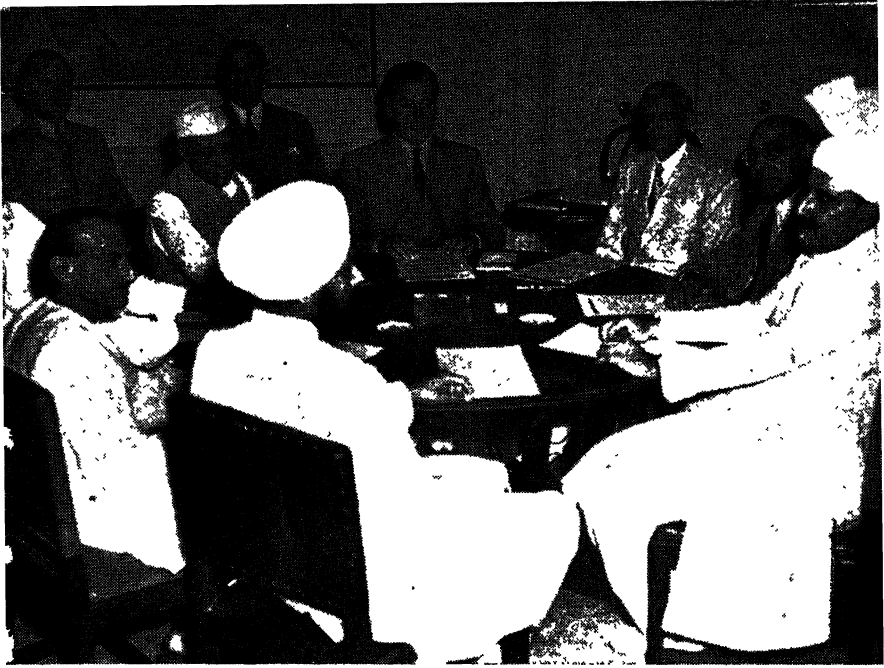
२ जून १९४७ को भारतीय नेताओं की सम्मिलित कांफ्रेंस :
माउंटबेटन के दाहिने से—नेहरू, पटेल, कृपालानी, बलदेव-
सिंह, रब निश्तर, लियाकत, जिन्ना । पीछे बैठे :
एरिक मिएविल, इस्मे

१५ अगस्त १९४७ को सरकारी भवन में 'स्वतंत्रता-निमंत्रण' के अवसर पर डा. राजेंद्रप्रसाद भावावेश में जो कहना था वह भूल गए और पं. नेहरू ने उन शब्दों को दोहराया

ही किसी और वाइसराय ने गांधीजी के दिलोदिमाग पर इतनी तेजी से इतनी गहरी जीत हासिल की हो।

कल की तारीख का एक व्यक्तिगत तार, जिसे जॉएस ने भेजा है, आज मुझे मिला। इसमें लिखा था, "आज तीसरे पहर ठसाठस भरी कामन्स सभा में बड़ी गहरी उत्सुकता के साथ प्रधानमंत्री का ऐलान सुना गया। भारत से आये सुझावों और प्रतिक्रियाओं से यहां सब दलों को संतोष हुआ। आज जितनी एकता की भावना है और घटनाओं के भारी महत्व को समझने का जो प्रयास दिखाई देता है, उसकी तुलना लड़ाई के दिनों के ऐतिहासिक क्षणों से ही की जा सकती है।"

शाम को ७.३० बजे माउन्टबेटन ने कर्मचारी मंडल की बैठक की। एक पीढ़ी पुराना गतिरोध तोड़ने के बाद भी उनके या हमारे किसी के लिए चैन नहीं थी।

रियासतों के प्रश्न पर तूफान के लक्षण मुझे नज़र आ रहे थे। नवाब भोपाल ने नरेंद्र-मंडल की अध्यक्षता से स्तीफा दे दिया था और वह व्यक्तिगत अलगाव एवं स्वाधीनता के मार्ग से हटाए नहीं हटते थे, जो आज की मौजूदा प्रगति के खिलाफ पड़ता था।

'विभाजन के प्रशासन संबंधी नतीजों' पर तैयार दस्तावेज के बारे में नेहरू की प्रतिक्रिया अच्छी नहीं हो रही थी, और अन्तरिम सरकार का ढांचा तथा अस्तित्व बनाए रखने में लोहे के चने चबाना पड़ेंगे।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
गुरुवार, ५ जून १९४७

आज सवेरे माउन्टबेटन की नेताओं के साथ तीसरी बैठक हुई। इसमें 'विभाजन के शासन संबंधी नतीजों' पर खुलकर चर्चा हुई। जिन्ना यह समझाने को आतुर थे कि हर प्रकार से दोनों राज्य स्वतन्त्र और समान होंगे। नेहरू का दृढ़ आग्रह था कि भारत तो जैसा पहले था वैसा ही अब है। अनि-

च्छुक प्रान्तों को बाहर जाने की इजाजत से पाकिस्तान का निर्माण हुआ था। इससे भारत सरकार के काम में कोई रुकावट नहीं आनी चाहिए और न उसकी विदेश-नीति में कोई परिवर्तन की जरूरत थी। आरोप और प्रत्या-रोप के इस वातावरण में माउन्टबेटन ने स्पष्ट कह दिया कि इन झगड़ों में पंच बनने की प्रार्थना वह स्वीकार नहीं करेंगे। इस कृतज्ञताहीन काम को पूरा करने के लिए वह एक ऐसे पंच की नियुक्ति करने पर सहमत हो गए जो दोनों को मंजूर हो।

अड़तालीस घंटे पुरानी विभाजन-योजना से निस्संदेह पूरे देश में तनाव कम हुआ, लेकिन दिल्ली-स्थित नेताओं में इससे कोई भाईचारे की भावना नहीं पैदा हो सकी। यहां की स्थिति अब भी तनावपूर्ण थी और मामूली-सी बात से भी गंभीर संकट पैदा हो सकता था।

: १० :

प्रशासन सम्बन्धी नतीजे

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
रविवार, ८ जून १९४७

माउन्टबेटन की मुख्य समस्या अब भी मूलतः राजनैतिक ही है और इस समय सबसे बड़ा भय यह था कि किसी दल द्वारा त्याग-पत्र दे देने से अन्तरिम सरकार भंग न हो जाय। अन्तरिम सरकार हमेशा से नाजुक चीज रही थी। विभाजन का सिद्धान्त पूरे तौर से स्वीकार हो जाने के बाद उसे मिलाकर स्थिर रखनेवाली आन्तरिक निष्ठा और उद्देश्य का दिखावा तक भी शेष नहीं रह गया था। माउन्टबेटन यह बात अच्छी तरह समझते थे कि विभाजन-योजना को ब्रिटिश पार्लमेंट द्वारा पुष्टि मिलने के पूर्व यदि किसी दल ने अन्तरिम सरकार से त्याग-पत्र दे दिया तो ३ जून की योजना की सफलता को भारी खतरा पैदा हो जायगा और उनकी स्थिति भी बुरी तरह से खराब हो जायगी।

आज ऐसा लगा कि ठीक यही आफत आनेवाली है, क्योंकि बड़ी मुश्किल से माउन्टबेटन उसे भंग होने से रोक पाए। अन्तरिम सरकार के कर्त्तव्यों को सीमित करके झगड़े कम करने के इरादे से उन्होंने सुझाया कि नीति और बड़ी नियुक्तियों सम्बन्धी सब फैसलों को फिलहाल स्थगित रखा जाय।

मंत्रिमंडल में प्रश्नों का निबटारा कांग्रेस के बहुमत द्वारा ही न हो जाया करे, इसलिए यह रास्ता निकाला गया कि ऐसे मामले सीधे माउन्टबेटन के पास भेजे जाया करें। इसके बाद नेहरू ने कुछ कूटनीतिक नियुक्तियों के लिए माउन्टबेटन की स्वीकृति मांगी और कहा कि माउन्टबेटन मानेंगे कि इनसे पाकिस्तान को कोई वास्ता नहीं। लियाकत ने तुरन्त आपत्ति उठाते हुए कहा कि उदाहरण के लिए वह नहीं चाहते कि मास्को में किसी राजदूत की

नियुक्ति की जाय। दुर्भाग्य की बात यह कि सुझाव ठीक इसी नियुक्ति के विषय में किया गया था और जिनकी नियुक्ति की जानी थी वह थीं स्वयं नेहरू की बहन श्रीमती विजया लक्ष्मी।

इसके बाद का दृश्य कोलाहलपूर्ण था—सब लोग एक साथ गरमी से बोल रहे थे। नेहरू ने कहा कि सरकारी काम में मुस्लिम लीग का हस्तक्षेप सहन करने की बजाय वह बहुमत के आधार पर काम करने का आग्रह करेंगे और अगर सरकार लीग को ही सौंपी जानी है तो वह तुरन्त स्तीफा दे देंगे।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली
मंगलवार, १० जून १९४७

मुस्लिम लीग कार्यकारिणी ने एक प्रस्ताव पास किया था, जिसका स्वर कांग्रेस को उभाड़ने वाला था। किंतु प्रस्ताव के शब्द ऐसे थे कि जिन्ना योजना को स्वीकार करने में इससे आगे शायद ही बढ़ना चाहेंगे। मंत्रिमंडलीय-योजना को त्यागने के प्रति संतोष प्रगट करने के बाद प्रस्ताव में कहा गया था कि बंगाल और पंजाब के विभाजन के लिए सहमति या असहमति सत्ता-हस्तांतरण के लिए ३ जून की योजना का पूरा अध्ययन कर लेने के बाद ही दी जायगी। प्रस्ताव में जिन्ना को यह अधिकार दिया गया था कि यदि वह चाहें तो योजना के मूल-सिद्धान्तों को समझौते के रूप में स्वीकार कर सकते हैं।

समाचार-पत्रों को मैंने यह समाचार देकर फिलहाल मौन कर दिया था कि वाइसराय शिमला और वहां से काशमीर जा रहे हैं।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
सोमवार, २३ जून १९४७

शिमले में आराम करने के बाद फिर दिल्ली की भट्टी में जलने आ गया हूं।

पिछले दस दिन माउन्टबेटन और उनके कर्मचारियों ने एक बड़े व्यापक क्षेत्र में काम करने में बिताए थे, जिससे योजना के स्वीकार किये जाने के काम में भारी सहायता पहुंची थी। मुख्य घटना हुई थी अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा योजना की स्पष्ट स्वीकृति। दोनों दलों के मुख्य राजनैतिक निर्णयों के बारे में अब किसी प्रकार के संदेह की गुंजाइश नहीं रह गई थी।

ऐन मौके पर गांधीजी ने भी योजना का समर्थन कर दिया और कांग्रेस हाई कमान के साम्प्रदायिक तत्वों का अन्दरूनी विरोध दुबले-पतले शरीर-वाले इस व्यक्ति की अजेय शक्ति के आगे साकार नहीं हो सका।

जहां तक उन प्रांतों का प्रश्न था, जिनपर योजना का सीधा असर पड़ता था, काफी आत्म-चिन्तन और कुछ टालमटोल के बाद कांग्रेस ने उत्तर पश्चिमी-सीमान्त-प्रदेश में मतसंग्रह करना स्वीकार कर लिया था। पहले तो डा. खान साहब ने इसका बहिष्कार करने की धमकी दी। पर गांधीजी की सलाह पर तय हुआ कि स्थानीय लालकुर्ती वाले सविनय-अवज्ञा के सिद्धान्तों को अमल में लायंगे और शान्ति के साथ इसमें भाग लेने से इन्कार कर देंगे। मत-संग्रह के समय केरो छुट्टी पर चले जायंगे। माउन्टबेटन ने बुद्धिमानी से प्रान्त का शासन फौज के हवाले करने का निश्चय किया। भारत की दक्षिणी कमान के लेफ्टिनेन्ट-जनरल सर रॉब लॉक्हार्ट कैरो की जगह गवर्नर का पद सम्भालेंगे।

बंगाल के प्रश्न पर जिन्ना की जिद बढ़ती जा रही थी। अन्तरिम सरकार में तो वह अपनी मुस्लिम लीग के लिए मंत्रिपद की मांग करना अपना अधिकार समझते थे, लेकिन पश्चिमी बंगाल के कांग्रेसजनों को बंगाल के अन्तरिम शासन में यह अधिकार देने को तैयार नहीं थे।

पंजाब व्यवस्थापिका सभा ने आज औपचारिक रूप से विभाजन का

निश्चय किया है। तीन दिन पहले बंगाल ने भी ऐसा ही फैसला किया था। वहां सुहरावर्दी द्वारा रखा यह प्रस्ताव कि एक स्वतन्त्र और संयुक्त बंगाल का निर्माण किया जाय, दोनों दलों के विरोध से गिर गया था। इस प्रकार नियति का चक्र एक पूरा चक्र लगा चुका था और जिस कांग्रेस ने कर्जन की बंग-भंग योजना का कटुता से विरोध किया था, वही चालीस साल बाद आज खुद उसी नीति का सुझाव दे रही थी।

रियासतों के बारे में अपनी नीति के संबंध में नेताओं ने एक बुनियादी फैसला किया था। दिल्ली में एक रियासती विभाग कायम किया जायगा जो रियासतों के साथ नये संबंधों तथा उनसे संबंधित अन्य विषयों के लिए उत्तर-दायी होगा। इस बीच यह तय किया गया कि यह नया विभाग सत्ता को छोड़कर अन्य सभी चीज़ें ब्रिटिश सम्राट के प्रतिनिधि के राजनैतिक विभाग से अपने हाथ में ले ले।

सत्ता-हस्तांतरण के बाद सर्वसत्ता-सम्पन्नता का प्रश्न राजनैतिक और कानूनी प्रश्नों से भरा हुआ था। यह बात माउन्टबेटन को उन चर्चाओं से स्पष्ट हो गई, जो उन्होंने पिछले दस दिनों विभिन्न नेताओं, निज़ाम के वैधानिक सलाहकार और अपने पुराने दोस्त सर वाल्टर मौंकटन, नवाब भोपाल और उनके सलाहकार सर जफरुल्ला खां के साथ की थीं। वे कुछ रियासतों के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग कर रहे थे।

राजाओं की अनिश्चितता और निष्क्रियता का अनुभव तो माउन्टबेटन स्वयं काश्मीर में कर आये थे, जहां से वह आज ही लौटे थे। नेहरू और गांधी दोनों इस बात के लिए बहुत व्यग्र थे कि काश्मीर के महाराज स्वाधीनता की कोई घोषणा न करें। नेहरू खुद काश्मीर जाने को उत्सुक थे, जिससे अपने दोस्त शेख अबदुल्ला को, जो रियासती राज्य-परिषद् के अध्यक्ष थे, जेल से छुड़वा सकें। गत वर्ष जब नेहरू काश्मीर गये थे तो काश्मीर सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया था। गान्धीजी का मत यह था कि उन्हें नेहरू के लिए रास्ता तैयार करना चाहिए। काश्मीर के महाराज ने यह स्पष्ट कह दिया था कि वह दोनों में से किसी को आने देना नहीं चाहते। माउन्टबेटन यह कह-

कर दोनों की यात्रा टालने में समर्थ हुए थे कि महाराज ने उन्हें बहुत दिनों से काश्मीर आने का निमंत्रण दे रखा है और पहले वह स्वयं वहां जाना पसन्द करेंगे।

वहां पहुंचने पर उन्होंने पाया कि महाराजा राजनैतिक रूप से सहज पकड़ में नहीं आ रहे। उनके बीच तभी कुछ बातचीत हो पाती जब वह मोटर में बैठकर साथ घूमने निकलते थे। इन मौकों पर माउन्टबेटन ने उनको और उनके प्रधानमंत्री काक को समझाया कि स्वाधीनता की कोई घोषणा न करें, बल्कि जितनी जल्दी हो सके, काश्मीर की जनता की इच्छा मालूम करने की कोशिश करें और १४ अगस्त तक फैसला कर लें कि वह किस देश की विधान-सभा में अपने प्रतिनिधि भेजेंगे। माउन्टबेटन ने उन्हें बतलाया कि नव-निर्मित रियासती विभाग यह आश्वासन देने को तैयार है कि अगर काश्मीर पाकिस्तान में शामिल हुआ तो भारत सरकार इसे मित्रताहीन काम नहीं समझेगी। उन्होंने समझाया कि यदि सत्ता-हस्तांतरण के दिन तक काश्मीर को दोनों उपनिवेशों में से किसी का समर्थन प्राप्त न हो सका तो उसकी स्थिति कितनी खतरनाक हो जायगी। उनका इरादा था कि पहले यह सलाह महाराजा को व्यक्तिगत रूप में अकेले में दें और फिर इसे उनके प्रधानमंत्री के सामने जार्ज एबेल और रेजीडेन्ट कर्नल वेब की उपस्थिति में होनेवाली एक छोटी बैठक में दोहराएं और इस बैठक की कार्यवाही का लेखा रखा जाय।

महाराजा ने सुझाया कि यह बैठक उनकी यात्रा के अन्तिम दिन हो। माउन्टबेटन यह सोच कर राजी हो गए कि इससे महाराज को किसी नतीजे पर पहुंचने के लिए काफी समय मिल जायगा। लेकिन जब बैठक का समय आया तो महाराजा ने कहला भेजा कि पेट में शूल उठने के कारण वह खाट से उठने में मजबूर हैं और इसलिए बैठक में भाग लेने में असमर्थ हैं।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली
शुक्रवार, २७ जून १९४७

पंजाब और बंगाल ने अपने विभाजन के पक्ष में फैसला कर लिया था, जिसके फलस्वरूप दोनों का आधा-आधा भाग एक नई और पृथक् विधान-सभा में भाग लेगा। इसलिए अब सारा शासन-यंत्र पूरे वेग से विभाजन के काम में जुट गया था। उस विभाजन समिति के स्थान पर, जो केवल अन्त-रिम सरकार कें कांग्रेसी और लीगी सदस्यों तक ही सीमित थी, अब एक नई विभाजन कौंसिल की स्थापना की गई जिसके अधिकार ज्यादा व्यापक थे और जो नीति के बारे में भी अन्तिम निर्णय ले सकती थी। मि. जिन्ना भी इसके सदस्य थे।

नई कौन्सिल की आज एक महत्वपूर्ण बैठक हुई। माउन्टबेटन आज की बैठक के भी अध्यक्ष थे और उन्होंने आज भी पंच का काम करने से इन्कार कर दिया। लेकिन उनके लिए यह काम करना जरूरी नहीं रह गया था, क्योंकि कौंसिल ने बड़ी आश्चर्यजनक तेजी और एकमत के साथ जिन्ना का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था कि पंजाब और बंगाल के सीमा-आयोगों की अध्यक्षता के लिए सर साइरिल रेडक्लिफ को आमंत्रित किया जाय। दोनों आयोगों के बारे में उन्हें अपने निर्णायक-मत का प्रयोग करने का अधिकार होगा।

उधर नेहरू सीमा-आयोग के लिए सरल उद्देश्य निश्चित करवाने में सफल हुए। यह उद्देश्य निम्न थे: "मुसलमानों और गैर मुसलमानों के बहुमत वाले प्रदेशों के आधार पर दोनों नये प्रान्तों की सीमाएं तय की जायं और ऐसा करते समय अन्य अंशों का ध्यान भी रखा जाय।" इस समझौते से दोनों दलों को संतोष हुआ। मुस्लिम लीग ने सोचा कि बंगाल के बारे में विस्तृत शर्तों के आधार पर उसकी कलकत्ता पा लेने की संभावना बढ़ जायगी। कांग्रेस और सिखों ने सोचा कि अन्य अंशों के अन्तर्गत सम्पत्ति तथा अन्य चीजों पर ध्यान देने से पंजाब में उनको फायदा होगा।

पहले इरादा यह था कि सीमा निश्चित करने का कंटीला काम संयुक्त

राष्ट्र-संघ को सौंप दिया जाय। लेकिन नेहरू ने इसका विरोध करते हुए कहा था कि इसकी कार्यविधि बहुत पेचीदा होगी और समय भी बहुत अधिक लग जायगा। दोनों आयोगों में रेडक्लिफ की सहायता के लिए चार-चार हाईकोर्ट के जज रहेंगे। इनमें से दो कांग्रेस द्वारा नामांकित किये जायंगे और दो मुस्लिम लीग द्वारा।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
सोमवार, ३० जून १९४७

माउन्टबेटन के सुझाव पर स्थापित विभाजन कौंसिल बिना देरी या विवाद के भारतीय सेना के बंटवारे के सवाल पर सहमत हो गई।

इसके लिए आचिन्लेक और इस्मे की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी होगी, क्योंकि उन्होंने सेना के 'पुनर्निर्माण' का ढांचा तैयार किया। लेकिन संकट की घड़ी में उड़ीसा के गवर्नर त्रिवेदी को विचार-विमर्श में सम्मिलित कर माउन्टबेटन ने दूरदर्शिता का परिचय दिया। त्रिवेदी ही एकमात्र ऐसे भारतीय सिविल अधिकारी थे, जिन्हें युद्धकाल में सुरक्षा-विभाग के सचिव पद पर काम करने के कारण ऊंचे स्तर के सुरक्षा संगठन का काफी अनुभव था। उन्हें नेहरू और पटेल का विश्वास-भाजन बनते देर न लगी। लियाकत-अली खां से उनकी पुरानी दोस्ती थी। पिछले सात दिन विस्तृत चर्चाएं कर वह दोनों पक्षों को कुछ सहूलियतें देने पर राज़ी कर सके, जिसके फलस्वरूप वास्तविक समझौता हो सका।

इस विषय में यह बुनियादी सिद्धान्त स्वीकार किया गया : भारत और पाकिस्तान अपनी-अपनी सशस्त्र सेनाएं रखें, जिनमें क्रमशः गैर-मुसलमानों और मुसलमानों का बाहुल्य रहे। पन्द्रह अगस्त से यह सेनाएं अपनी-अपनी पृथक् कमानों के अन्तर्गत काम करें। दोनों पक्ष इस बात पर दृढ़ता से जमे हुए थे कि समझौते की पहली शर्त यह होनी चाहिए कि उनकी सेनाएं पूर्णतः स्वतन्त्र रहेंगी। जिन्ना और लियाकतअली खां ने तो खुले तौर से कहा

था कि जबतक उनकी फौज नहीं बन जाती तबतक वे सरकार की बागडोर अपने हाथ में नहीं लेंगे।

१५ अगस्त के बाद किसी प्रकार के केन्द्रीय प्रशासन संबंधी नियंत्रण के खिलाफ भी दोनों पक्षों ने जोरदार आपत्तियां उठाईं। लेकिन माउन्ट-बेटन ने इस प्रश्न पर हस्तक्षेप करते हुए कहा कि जबतक सिपाहियों और साज-सामान के बंटवारे का काम पूरा नहीं हो जाता तबतक सेना के संचालन का काम आचिन्लेक के हाथ में रहना चाहिए। फिलहाल वह भारत में रहकर भारतीय सशस्त्र सेना का शासन चलायंगे। यह काम वह संयुक्त सुरक्षा परिषद् के अन्तर्गत करेंगे, जिसमें उनके अतिरिक्त दोनों देशों के गवर्नर-जनरल और सुरक्षा-मंत्री सम्मिलित रहेंगे।

दोनों देशों के नये प्रधान-सेनापतियों के बारे में भ्रम से बचने के लिए १५ अगस्त से लेकर इस कार्य की समाप्ति तक आचिन्लेक को सर्वोच्च सेना-पति कहा जायगा। सेना के बंटवारे का काम करने की अन्तिम तिथि १ अप्रैल १९४८ ठहराई गई।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
मंगलवार, १ जुलाई १९४७

ज्यों-ज्यों १५ अगस्त का दिन नज़दीक आता जा रहा था, पंजाब में तनातनी बढ़ रही थी। इस हवा के रुख का पता उस पत्र से मिलता है जो आचिन्लेक को दिल्ली के एक सिख विस्थापित ने भेजा था। पत्र में लिखा था, "सातवीं सिख पल्टन अब भी बसरा में पड़ी फारस के तैल-क्षेत्रों पर पहरा दे रही है जबकि पिछले बारह महीनों में उनके स्वदेश में दुखान्त घटनाएं घटी हैं, जिनसे विदेश में रहनेवाले हमारे बहादुर सिख भाइयों के दिमाग ठिकाने नहीं रह पाए। जब भारत का विभाजन हो रहा है तो हमारे सिपाहियों को स्वदेश में अपने घरवालों के बीच होना चाहिए। मैं आशा करता हूं कि अगस्त का नाटक शुरू होने के पहले आप उन्हें घर लौटने की

उचित आज्ञा देने में देरी न करेंगे।"

जेनकिन्स ने सूचना भेजी थी कि लाहौर और अमृतसर की स्थिति अत्यधिक चिन्तनीय है। यहां की व्यापक-हिंसा हत्या और लूट का रूप ले रही है। यह काम ऐसे चुपचाप और अचानक किये जाते हैं कि सामान्य सैनिक और पुलिस की कार्यवाही द्वारा उन्हें दबाना बहुत मुश्किल है। एक बार यह पता लग जाने पर कि भारत के नगरों को जलाना कितना सहज है, सबमें अधिक खतरा आग लगानेवाली चीजों से पैदा हो गया है।

: ११ :

नये गवर्नर-जनरल का प्रश्न

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
बुधवार, २ जुलाई १९४७

कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेता वाइसराय भवन के अलग-अलग कमरों में बठे हुए प्रस्तावित 'उपनिवेश विधेयक' की शर्तों पर विचार कर रहे थे। इस विधेयक का नाम अब 'भारतीय स्वाधीनता विधेयक' रख दिया गया था।

अभी तक जिन्ना गवर्नर-जनरल की नियुक्ति के प्रश्न पर कोई औपचारिक विचार यह कहकर टालते रहे थे कि विधेयक का अध्ययन किये बिना वह कुछ नहीं कह सकेंगे। फिर उन्होंने इस निर्णय को कई घंटों के लिए इस बहाने टाल दिया कि उन्हें अपने कुछ घनिष्ट सहयोगियों की सलाह लेना है जो इस समय मत-संग्रह के काम में व्यस्त हैं।

लेकिन आखिर उन्हें साफ-साफ बात कहनी पड़ी। जिन्ना का फैसला जिन्ना के पक्ष में हुआ। वह अब भी दिखावा यही कर रहे थे कि माउन्टबेटन के लिए दोनों देशों के अध्यक्षों के ऊपर किसी पद पर रह कर न्यायपूर्ण विभाजन करवाना संभव होगा। जिन्ना ने कहा कि यह फैसला उन्होंने किसी हद तक अपनी इच्छा के खिलाफ केवल अपने घनिष्ट मित्रों के आग्रह पर किया था। जानना यह चाहूंगा कि आखिर यह घनिष्ट मित्र कौन थे, क्योंकि मालूम तो यह हुआ था कि उनके बुजुर्ग सहयोगियों और शुभाकांक्षियों की सलाह इसके बिलकुल विपरीत थी। यह इसलिए, क्योंकि उनका विचार था कि प्रधानमंत्री के नाते उनके हाथों में कहीं अधिक सत्ता रहेगी। वह यह बात खूब अच्छी तरह समझते थे कि सम्पत्ति के बंटवारे में भारत की स्थिति बहुत मजबूत थी। अधिकांश सम्पत्ति अभी भी उनके ही कब्जे में थी। ऐसी स्थिति में, यदि

आठ महीने के लिए माउन्टबेटन दोनों राज्यों के संयुक्त गवर्नर जनरल रहेंगे तो फायदा मुख्यतः पाकिस्तान को होगा।

जब माउन्टबेटन ने उनसे साफ शब्दों में पूछा कि उन्हें मालूम है कि उनके इस फैसले की कितनी कीमत उनके बनाये गए राष्ट्र को चुकानी पड़ेगी, तो जिन्ना ने बड़ी स्पष्टवादिता के साथ मंजूर किया कि इसका मतलब होगा कई करोड़ रुपये की सम्पत्ति से हाथ धोना। लेकिन उन्होंने कहा कि १५ अगस्त को वह पाकिस्तान के गवर्नर जनरल के पद के अतिरिक्त और कोई पद स्वीकार करने में असमर्थ हैं।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
शुक्रवार, ४ जुलाई १९४७

अन्तरिम सरकार के भविष्य के प्रश्न पर उत्पन्न संकट को टालने के लिए माउंटबेटन ने एक नया कदम उठाया। उन्होंने कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों के सब सदस्यों से स्तीफे देने को कहा और फिर उनको आमंत्रित किया कि लन्दन में भारतीय स्वाधीनता विधेयक पास न हो जाने तक कार्य करते रहें। इस काम के पीछे, जो समस्या का कोई स्थायी समाधान न होकर केवल संकट टालने का प्रयास था, काफी लम्बे और खतरनाक झगड़े की कहानी छिपी हुई थी, जो संक्षेप में इस प्रकार है। ३ जून की योजना स्वीकार होने के बाद से माउंटबेटन पर दो प्रकार के विरोधी दबाव डाले जा रहे थे। कांग्रेस की तरफ से पटेल यह शिकायत दोहरा रहे थे कि 'आप स्वयं हुकूमत नहीं करना चाहते, तो कम-से-कम हमें तो करने दीजिए।' इसपर जिन्ना की प्रतिक्रिया यह थी कि अगर एक भी लीगी-मंत्री को हटाया गया तो वे सब सामूहिक रूप से स्तीफा दे देंगे, और कह देंगे कि वे अब किसी प्रकार का सहयोग नहीं देंगे और पूरी विभाजन-योजना से हाथ धो रहे हैं। माउंटबेटन जानते थे कि अगर उन्होंने ऐसा कोई कदम उठाया तो शांति और पाकिस्तान दोनों की सारी संभावनाएं नष्ट

हो जायंगी।

थके और बोझ से दबे नेहरू पर कांग्रेस की इस मांग का दबाव बढ़ता जा रहा था कि वह तुरन्त अपने घर के मालिक बनें। इसके कारण पिछले सप्ताह नेहरू स्तीफा देनेवाले थे। पहले तो जिन्ना ने ऐसे किसी भी सूत्र पर विचार करने से इन्कार कर दिया, जिसका अर्थ मुस्लिम लीग सदस्यों द्वारा पद छोड़ना हो। इसे उन्होंने लीग के लिए अपमानजनक बतलाया। जब माउंटबेटन ने एक योजना तैयार की और उनकी इस प्रकार की आपत्तियों का समाधान करने के लिए एक प्रेस-विज्ञप्ति का मसविदा तैयार कर लिया तो जिन्ना बदल गए। उन्होंने कहा कि इस योजना को १९३५ के विधान के अन्तर्गत गैरकानूनी मानकर वह इसका विरोध करेंगे। इससे माउंटबेटन ने एक नया रास्ता निकाल लिया। लन्दन से पूछ-ताछ करने पर उन्हें पता चला कि जिन्ना की कानूनी आपत्ति में इतनी सचाई थी कि नये विधान के पास होने के पूर्व वह सरकार का पुनर्संगठन नहीं कर सकते।

१५ अगस्त के बाद वह भारत के गवर्नर जनरल पद पर बने रहें या नहीं, इस प्रश्न पर कोई आखिरी निर्णय करने के पहले माउंटबेटन लंदन से राजा, प्रधान-मंत्री तथा अन्य लोगों की अधिकृत सलाह चाहते थे। उनको यह भी आशंका थी कि कहीं ब्रिटिश सरकार यह न समझ बैठे, और उसका समझना गलत नहीं होगा, कि उन्होंने दोनों राष्ट्रों के संयुक्त गवर्नर-जनरल की संभावना के बारे में गलत विश्वास दिलाकर उन्हें भुलावे में डाल दिया है।

इसलिए उन्होंने निश्चय किया कि इस्मे तुरन्त लंदन के लिए प्रस्थान करें। अधिकृत तौर से यही कहा जायगा कि वह लन्दन इसलिए जा रहे हैं, जिसमें 'भारत स्वाधीनता विधेयक' को संसद में पास करवाने में सरकार की सहायता कर सकें। लेकिन इसके अलावा उन्हें गुप्त रूप से प्रमुख लोगों की राय भी प्राप्त करना पड़ेगी कि माउंटबेटन भारत रुके रहें या स्वदेश लौट आयें। मैं भी इस्मे के साथ जा रहा हूं, जिससे

नई स्थिति के बारे समाचार पत्रों तथा अन्य जानकारों की प्रतिक्रिया का अनुमान लगा सकूं ।

लंदन,
मंगलवार, ८ जुलाई १९४७

रात के भोजन के बाद कल इस्मे ने १०, डाउनिंग स्ट्रीट में एक वार्ता में भाग लिया, जो आधी रात के बाद तक चलती रही। हालांकि इस बारे में कुछ शंकाएं उठाई गईं कि दोनों देशों के गवर्नर जनरल के रूप में पंच होने की बजाय केवल एक देश का गवर्नर जनरल बनने से उनकी स्थिति कैसी होगी, खासकर जब दोनों देशों के बीच कोई झगड़े के सवाल उठेंगे। फिर भी मंत्रियों की सामान्य राय यह थी कि माउंटबेटन भारत के आमंत्रण को स्वीकार कर लें । एटली ने तो यहां तक कह डाला कि माउंटबेटन के अलावा कोई और इस काम को सिरे नहीं चढ़ा सकता। इस सुझाव के बारे में मुस्लिम लीग की स्वीकृति के प्रमाणस्वरूप लियाकत का जो पत्र इस्मे अपने साथ लन्दन ले गए थे, उसका सरकार पर गहरा असर पड़ा। दरअसल अब स्थिति यह थी कि दोनों दलों ने माउंटबेटन से भारत में रुके रहने को प्रार्थना की थी।

आज सवेरे प्रधान-मंत्री ने निम्नलिखित विरोधी नेताओं को मिलने के लिए बुलाया। सेल्सबरी, मेकमिलन, बटलर, सेम्युअल और क्लैम डेविस। इस्मे ने स्थिति का खुलासा उनके सामने रखा । लार्ड सेम्युअल अपने इस विचार पर अमल कराने के लिए उत्सुक थे कि वाइसराय दो गवर्नर-जनरलों का प्रधान रहे। यह सुझाव उन्होंने माउंटबेटन को मेरे निवास-स्थान पर माउंटबटन के भारत जाने के पूर्व भी दिया था। लेकिन लोगों का आम मत यह था कि इस सुझाव को अमल में लाने का समय बीत चुका है, और कांग्रेस शायद ही इसे स्वीकार करे। उदार-दली सदस्यों का हार्दिक मत था कि माउंटबेटन भारत के गवर्नर जनरल

का पद संभालें। किन्तु अनुदार दली नेता भी, यद्यपि इस सुझाव से सहमत थे, तथापि उनका कहना था कि चर्चिल से सलाह किये बिना वे कोई फैसला नही कर सकते। चर्चिल उस समय हाल ही की बीमारी के बाद चार्टवेल में आराम कर रहे थे और ईडन भी बैठक में सम्मिलित नहीं हो पाए थे।

एटली ने इस्मे को सुझाया कि वह चार्टवेल जाकर चर्चिल से मिल आवें। इस्मे को जाते देर नहीं लगी। इस महान नेता से अपनी मुलाकात के बारे में इस्मे के दिल में जो डर थे, वे तुरन्त दूर हो गए। चर्चिल का विचार था कि जिन्ना के फैसले से स्थिति में किसी प्रकार का फर्क नहीं पड़ा। समुद्रीतार द्वारा वाइसराय को भेजे जाने के लिए एक संदेश का मजमून उन्होंने इस्मे को लिखाया। इसका आशय यह था कि वैधानिक गवर्नर जनरल को जानकारी प्राप्त करने और सलाह देने का असीम अधिकार रहता है। इसके आधार पर माउंटबेटन नई सरकार को काफी मदद दे सकते थे, जिससे उन्हें संकोच नहीं करना चाहिए। यह फैसला माउंटबेटन की कल्पना पर छोड़ते हुए कि उनकी उपयोगिता कबतक रहेगी, चर्चिल ने खास जोर उनके कर्त्तव्यों के राजनैतिक पक्ष पर दिया। उन्होंने कहा कि माउंटबेटन साम्प्रदायिक तनाव कम करने, राजाओं के हितों को सुरक्षित रखने और भारत तथा शेष राष्ट्र-मंडल के बीच दोस्ती के संबंध पुष्ट करने का काम कर सकते हैं।

बड़ी राहत के साथ इस्मे तुरन्त लन्दन लौटे और चर्चिल के अनुदार-दली साथियों को अपनी मुलाकात और संदेश का पूरा ब्यौरा दिया। संदेशा तुरन्त दिल्ली भेज दिया गया। इस निर्णायक सलाह ने सबके दिलों को हल्का कर दिया।

जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा था औपचारिक चर्चाओं द्वारा कूट-नीतिक उद्देश्य सिद्ध करने के बारे में मेरा विश्वास बढ़ता जा रहा था। जिस तरह से इस्मे माउंटबेटन, ब्रिटिश सरकार और विरोधी दल के दिलों की शंकाएं मिटाने में सफल हुए, वह काम इतनी सफलता और फुर्ती के साथ लम्बे पत्रों या तारों से करना संभव नहीं था।

लन्दन,
बृहस्पतिवार, १७ जुलाई १९४७

आज शाम वुडरो वाएट ने कामन्स सभाभवन में पटवर्धन से मेरा परिचय कराया। पटवर्धन समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण के विश्वासपात्र हैं और भारतीय स्वाधीनता-विधेयक पर होने वाली बहस सुनने लंदन आये हुए हैं। उन्होंने कहा कि उनका मत है कि माउंटबेटन को गवर्नर-जनरल पद पर बने रहने का आमंत्रण देकर कांग्रेस ने दूरदर्शिता का काम किया है। समाजवादियों को आशा है कि माउंटबेटन की उपस्थिति से राजाओं की अपरिवर्तनशीलता कम हो सकेगी और पुनर्मिलन के लिए द्वार खुला रहेगा। मैंने उनसे पूछा कि इस बारे में उनका स्पष्ट मत क्या है कि कांग्रेस द्वारा जनतंत्र की स्थापना करने का निर्णय किये जाने के बाद भी माउंटबेटन से गवर्नर-जनरल के पद पर रुकने का आग्रह किया गया है? व्यक्तिगत रूप से बोलते हुए उन्होंने कहा कि समय आने पर इस बारे में नेहरू जो रुख अपनाएंगे उससे समाजवादियों को संतोष होगा। मैंने उनसे कहा कि वह विश्वास रखें कि माउंटबेटन प्राप्त आमंत्रण से एक घंटा भी ज्यादा नहीं रुकेंगे।

इस मुलाकात से मेरी यह धारणा बन गई है कि समाजवादी लोग माउंटबेटन या औपनिवेशिक स्वराज्य के प्रश्न पर झगड़ा नहीं खड़ा करेंगे। वे अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे रियासतों पर, जहां कांग्रेस-समाजवादियों की काफी बड़ी संख्या मौजूद है। पटवर्धन इस बात के लिए व्यग्र हैं कि वाइसराय को रियासतों में प्रजातांत्रिक अधिकार दिलवाने की आवश्यकता महसूस करनी चाहिए। मैंने कहा कि कुछ वामपंथियों में मैंने यह प्रवृत्ति पाई है कि वे केवल 'क्रांति के लिए क्रांति' चाहते हैं। किन्तु पटवर्धन ने दृढ़ता से कहा कि स्वतः क्रांति कोई अच्छी चीज नहीं है। वह वैधानिक रीति से परिवर्तन के पक्ष में हैं और आखिरी हथियार के तौर पर ही क्रांतिकारी कार्रवाई करने की सलाह देते हैं।

लन्दन
शुक्रवार, १८ जुलाई १९४७

वुडरो वाएट के साथ, जो १९४५ के चुनाव में बर्मिंघम से लेबर-सदस्य चुने गए थे, मेरी कई मनोरंजक मुलाकातें हुईं। दोनों पक्षों में वह ही एकमात्र तरुण संसद-सदस्य हैं, जिन्होंने भारत को अपना विशेष विषय बनाया है। मंत्रिमंडलीय योजना के समय वह क्रिप्स के व्यक्तिगत सहायक के रूप में भारत आये थे। सुदूरपूर्व के लिए संसदीय प्रतिनिधि-मंडल के भी वह एक सदस्य थे।

इस महत्वपूर्ण प्रवास के बारे में उन्होंने एक मजेदार घटना सुनाई, जिसका संबंध उनकी सहयोगिनी, एक स्पष्टवादी संसद-सदस्या मिसेज़ निकोल्स से था। प्रतिनिधिमंडल की गांधीजी से मुलाकात के समय उन्होंने सोचा कि दल की एकमात्र महिला-सदस्य के नाते उन्हें बातचीत को थोड़ा पारिवारिक स्वरूप देना चाहिए। इसलिए उन्होंने महात्माजी से उनके बच्चों के बारे में सवाल पूछा, "आपके कोई लड़की भी है ?"

महात्माजी ने उत्तर दिया, "मेरी लाखों बेटियां हैं ? क्या आप इतने से संतुष्ट हैं ?"

मिसेज़ निकोल्स ने उत्तर दिया, "मैं तो संतुष्ट हूं, मि. गांधी ! पर क्या आपको भी संतोष है ?"

: १२ :

संघ-प्रवेश-पत्र पर राजाओं के हस्ताक्षर

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
मंगलवार, २२ जुलाई १९४७

आज तीसरे पहर हम पालम हवाई अड्डे पर पहुंच गए। यात्रा वैसे तो निर्विघ्न थी, लेकिन थकान बेहद हो गई थी। इस छः हजार मील लम्बी हवाई यात्रा के बाद कोई भी अभी तक ताजगी महसूस नहीं कर पाया था, और लंदन में घटनाओं की सरगर्मी के दौर के बाद तो हम राजनैतिक सत्ता-परिवर्तन के महत्वपूर्ण आखिरी चरण में भाग लेने के लिए भी नितांत पंगु-से हो गए थे।

हमारी अनुपस्थिति में एक संकट को सरकारी तौर पर हल कर दिया गया था, हालांकि तनातनी अब भी काफी थी। माउन्टबेटन ने अन्तरिम सरकार का इस प्रकार पूर्ण गठन कर लिया था कि वास्तव में दो अस्थायी सरकारें कायम होगईं। एक भारत और दूसरी पाकिस्तान के लिए। इनमें से प्रत्येक सरकार अपने निजी मामलों से मतलब रखेगी और केवल दोनों देशों से सम्बंधित प्रश्नों पर ही एक-दूसरे से सलाह लिया करेगी। इस योजना का लाभ यह हुआ कि लीगी-मंत्रियों के त्याग-पत्र देने का प्रश्न हल होगया।

भारतीय स्वतन्त्रता-अधिनियम पर शाही-स्वीकृति प्राप्त होने के करीब चौबीस घंटे बाद, गत शनिवार को प्रकाशित आज्ञा में कहा गया था कि गवर्नर-जनरल ने 'मंत्रि-पदों के पुनर्वितरण' की मंजूरी दे दी। नेहरू और पटेल बड़ी मुश्किल से इस योजना पर राजी हुए। जहां तक जिन्ना का सवाल था, जब माउंटबेटन ने यह योजना उनके सामने रखी तो उन्होंने फिर यही कहा कि वह उसपर विचार करेंगे। लेकिन माउंट-बेटन अब उनसे यह कह सकने की स्थिति में थे कि उनके विचारों और

सलाह की जरूरत नहीं है, क्योंकि माउंटबेटन अपने बलबूते और जिम्मेदारी पर ही नई व्यवस्था को लागू करने की आज्ञा जारी कर रहे थे।

अपनी स्वाभाविक मौलिकता के साथ माउंटबेटन ने अपने कर्मचारियों, मंत्रियों और विभाजन की व्यवस्था से संबंध रखनेवाले अन्य अधिकारियों के सुभीते के लिए एक कैलेंडर तैयार किया, जिसमें दिन और महीना दिया हुआ था और हर दिन के नीचे लिखा था "सत्ता-हस्तांतरण तैयारी के लिए इतने दिन शेष हैं।" विभाजन-कौंसिल इस काम के महत्व को समझ गई थी और फुर्ती से काम कर रही थी। वह काम में पिछड़ी भी नहीं। इसका मुख्य कारण यह था कि संचालन-समिति ने उसको बहुत अच्छी तरह सारा काम समझा दिया था। एच. एम. पटेल और मुहम्मदअली प्रारम्भिक काम निबटाने में काफी मेहनत करते थे। इसका फल यह हुआ कि १५ जुलाई की बैठक में कम-से-कम सात ऐसे विषय पच्चीस मिनट से भी कम समय में निबटा दिये गए, जिनको माउंटबेटन अत्यधिक पेचीदा और विवादग्रस्त समझ रहे थे। स्वयं विभाजन-कौंसिल की भी नियमित रूप से हफ्ते में तीन बैठकें होती थीं।

आज शाम मैंने सवा सात बजे माउंटबेटन से मुलाकात की और चूंकि मैं अपने अन्तिम पत्र के पहले ही यहां पहुंच गया था, इसलिए उन्हें विभिन्न संदेशों और अनुभवों से लाद दिया। माउंटबेटन बहुत खुश थे और लंदन के हमारे काम की प्रशंसा करते नहीं अघाते थे। जब वह रात के खाने के लिए कपड़े पहन रहे थे, तब भी मैं उनसे बातें करता रहा। मैंने उन्हें बतलाया कि उनके भविष्य के बारे में कैसी-कैसी बातें चल रही हैं। लंदन में तो यह भी अफवाह है कि आपको वाशिंगटन में ब्रिटिश-राजदूत का पद दिया जायगा। उन्होंने फिर कहा कि वह अखाड़े में नहीं हैं और उनका यही निश्चय स्थिर है कि ब्रिटिश सरकार को वह यह वादा पूरा करने के लिए कहेंगे कि उन्हें नौसेना में ही वापस भेज दिया जाय। इसका एक कारण यह भी था कि वह थक गए थे। फिर अचानक उन्होंने पूछा, "तुमने समाचार पत्रों में मुझे दिये जाने वाले पद के बारे में

सबसे ताजी खबर देखी है ? मामूली चीज नहीं, जर्मनी का सिंहासन दिया जा रहा है।"

अब माउंटबेटन रियासतों की समस्या में आकण्ठ डूबे हुए हैं। जैसा उन्होंने ३ जून की योजना के पहले की कूटनीति में किया था, वैसे ही इस समय भी वह जानबूझ कर एक जोखिम उठा रहे हैं। रियासतों के संघ-प्रवेश-पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए राजाओं को समझाने का काम वह खुद ही कर रहे थे । इस बीच वी. पी. मेनन ने कांग्रेस को इस योजना पर राजी कर लिया है। अपने काम का आरम्भ उन्होंने पटेल के उस सशक्त सहयोग के आश्वासन के बल पर किया था, जो पटेल ने हमारे लंदन जाने के दिन नये रियासती-विभाग का उद्घाटन करते समय अपने राजनैतिक पूर्ण भाषण में व्यक्त किया था। लेकिन सबसे कठिन सवाल तो हैदराबाद का था, जिस पर निश्चय ही विशेष ध्यान देना पड़ेगा । माउंटबेटन का कहना था, कि जब जरूरत हो वह वहां जाने के लिए तैयार हैं। उनकी धारणा थी कि कोई उचित समझौता करने का एकमात्र तरीका यही है कि निज़ाम से व्यक्तिगत रूप में मिला जाय ।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
बृहस्पतिवार, २४ जुलाई १९४७

मेरा अधिकांश दिन विभाजन-कौंसिल के उस महत्वपूर्ण वक्तव्य के प्रसार की व्यवस्था करने में बीता, जिसमें पंजाब के विभाजित क्षेत्रों में एक सीमा-फौज की स्थापना का ऐलान किया गया था। यह विशेष फौज १४ में से उन १२ जिलों में रखी जायगी, जिन्हें कोई-न-कोई पक्ष विवादग्रस्त बतला रहा था। इसके सेनापति होंगे मेजर-जनरल 'पीट' रीस, जो इसके पहले तक चौथी भारतीय डिवीज़न के कमांडर थे ।

नई फौज का निर्माण भी असल में मुख्यतः इसी डिवीजन से किया

जायगा। सब मिलाकर इस फौज में पचास हजार अफसर और सैनिक होंगे, जो ज्यादातर उन टुकड़ियों से लिये जायंगे, जिनका अभी तक विभाजन नहीं हुआ और जिनमें ब्रिटिश अफसरों का भारी अनुपात है। शांति-काल में न्याय और व्यवस्था की रक्षा के लिए इतनी बड़ी फौज का इस्तेमाल पहले कभी नहीं किया गया था। अज्ञात आकार-प्रकार के खतरों के खिलाफ की जानेवाली यह सबसे बड़ी भौतिक तैयारी थी। और इस तैयारी में यह सट्टा खेला गया था कि शेष सारे देश में साम्प्रदायिक शांति बनी रहे। रीस को दो उच्च अधिकार-संपन्न सैनिक-सलाहकार मिलेंगे। भारतीय-सेना का एक सिख और पाकिस्तान-सेना का एक मुसलमान। पन्द्रह अगस्त के बाद इन क्षेत्रों में मौजूद दोनों देशों की सेनाओं के संचालन का भार रीस के हाथों में रहेगा। सर्वोच्च सेनापति और संयुक्त विभाजन-कौंसिल द्वारा वह दोनों सरकारों के प्रति उत्तरदायी होंगे।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
शुक्रवार, २५ जुलाई १९४७

आज राजाओं के साथ माउंटबेटन की पहली और आखिरी मुलाकात हुई, क्योंकि वाइसराय और ताज के प्रतिनिधि के रूप में वह अब कभी राजाओं के सम्मेलन में भाषण नहीं दे सकेंगे। यह दुआ-सलाम और बिदाई का औपचारिक मौका नहीं था, बल्कि अत्यधिक महत्वपूर्ण राज-नैतिक अवसर था। राजाओं में फूट थी और वे बड़ी दुविधा में थे। घटनाओं की तेजी ने उन्हें चकरा दिया था। उधर माउंटबेटन के पास भी अपने मत-समर्थन के लिए लंदन से कोई विस्तृत आदेश नहीं आ पाए थे। तीन जून और मंत्रिमंडल-मिशन योजना दोनों में राजाओं के बारे में जो थोड़ा जिक्र था, उनसे यही नतीजा निकलता था कि सत्ता का असली हस्तांतरण तो ब्रिटेन और ब्रिटिश-भारत के बीच ही होगा।

कौंसिल-हाउस में वाइसराय तथा राजा-महाराजाओं के स्वागत के

लिए लाल कालीन बिछा दी गई। नरेंद्रमंडल के अध्यक्ष, विशाल दाढ़ी वाले महाराजा पटियाला और उनके छः फुटे शरीर के पास बौने से लगने वाले वी. पी. मेनन माउंटबेटन का स्वागत करने के लिए प्रवेश-द्वार पर खड़े हो गए। वी. पी. मेनन यहां प्रस्तावित रियासती-विभाग के मनोनीत मंत्री के रूप में उपस्थित थे। पटेल ने उन्हें माउंटबेटन के हार्दिक अनुमोदन के साथ अपना बायां हाथ बनाना निश्चित किया था। उनका नया पद इस नई व्यवस्था में निश्चय ही अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।

लगभग चालीस बड़े राजा और उनके प्रतिनिधि विशेष परिचय के लिए पास के एक कमरे में एकत्रित थे और करीब आधा दर्जन मान्यता-प्राप्त फोटोग्राफर अच्छी जगहों पर अड्डा जमाने के लिए उनके बीच बेतकल्लुफी से इधर-उधर भाग रहे थे। बेहद उमस थी और नवानगर के स्थूलकाय जाम साहब कमरे के एकमात्र पंखे के नीचे हवा लेते हुए शिकायत कर रहे थे कि यह पंखा कितने धीरे-धीरे घूम रहा है! सब मिलाकर पच्चीस बड़े राजा और चौहत्तर रियासती प्रतिनिधि नरेंद्र-मंडल के आदित्य-चन्द्राकार भवन में उपस्थित थे।

जब माउंटबेटन इस गौरवशाली समुदाय के सामने भाषण देने के लिए खड़े हुए तो इस ऐतिहासिक सभा का चित्र लेने के लिए कुछ समय दिया गया। अपने चारों ओर फ्लेश बल्बों की चमक के समय माउंटबेटन धीरज के साथ स्थिर रहे। इस मौके पर कुछ फोटोग्राफर उत्साह की सीमा पार गए और उनकी भागदौड़ से ऐसा लगता था मानो किसी मज़ाकिया फिल्म का दृश्य खींचा जा रहा हो। चूंकि भाषण बिलकुल गोपनीय था, इसलिए फोटोग्राफरों के जाने के पहले माउंटबेटन उसे शुरू भी नहीं कर सकते थे। फलतः, विवश होकर मुझे मंच के नीचे मेनन के पास से उठकर उनको बाहर खदेड़ना पड़ा।

माउंटबेटन पूरी पोशाक में थे। इतने तमगे और पुरस्कार सीने पर लगे थे कि राजसी ठाठ के अभ्यस्त राजे भी चकित रह गए। आज भी वह किसी प्रकार के लिखे हुए संकेत देखे बिना बोले और एक भी जगह

अटके या भटके नहीं।

अपने तरकस के सारे तीरों का का उपयोग उन्होंने यही समझाने और स्पष्ट करने में किया कि वी.पी. मेनन ने जो संघ-प्रवेश-पत्र तैयार किया था वह कांग्रेस की ओर से दिया जाने वाला ऐसा राजनैतिक मौका है, जो फिर दोहराया नहीं जायगा। दरअसल तो यह अभी पक्का रुक्का नहीं है, और इसके पक्के होने की संभावना इसी बात पर निर्भर करती है कि वे इसकी सामूहिक स्वीकृति पटेल तक पहुंचा सकते हैं या नहीं। उन्होंने राजाओं को याद दिलाया कि पन्द्रह अगस्त के बाद वह ताज के प्रतिनिधि के रूप में उनकी ओर से मध्यस्थता नहीं कर सकेंगे। जो राजा अपने हथियारों के जखीरे बढ़ाने की सोच रहे थे, उनको उन्होंने चेतावनी देते हुए कहा कि उनको मिलनेवाले हथियार पुराने और बेकार होंगे। उन्होंने एक बात ऐसे मौके की और ऐसे बल के साथ कही कि राजाओं पर उसका वार ख़ाली नहीं गया। उन्होंने कहा कि अगर उन्होंने संघ-प्रवेश-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये तो उन्हें विश्वास है कि औपनिवेशिक स्वराज्य के अन्तर्गत भी पटेल और कांग्रेस ब्रिटेन के बादशाह से उन्हें खिताब और सम्मान मिलने पर रोक नहीं लगावेंगे। माउंटबेटन जानते थे कि राजतंत्र के समर्थक होने के कारण उनके लिए इन खिताबों का कितना मूल्य है। इस संबंध में राजाओं से बात करने में उन्हें एक बड़ा सहारा यह रहा था कि वह ताज के प्रतिनिधि की हैसियत से ही नहीं, बल्कि ब्रिटेन के बादशाह के चचेरे भाई की हैसियत से भी बोल सके थे। इन पुश्तैनी राजाओं के लिए शाही खून का बड़ा मान है। उनके आज के संदेश का सार यह था, "जिस प्रकार आप उस प्रजा से जान बचा कर नहीं भाग सकते, जिसके कल्याण का दायित्व आपके ऊपर है, उसी प्रकार आप अपनी पड़ोसी औपनिवेशिक सरकार से भी नहीं भाग सकते।"

लेकिन, मेरे लिए, इससे अधिक उलझन वाली सभा की कल्पना करना असंभव था, कि जिसमें माउन्टबेटन ने भाषण दिया। यह सभा तो ऐसे पुश्तैनी गड़रियों की थी, जो अपनी भेड़ों को खोकर बड़ी दयनीय स्थिति में

पड़ गए थे। आज फिर मनोबल बढ़ाने की अपनी क्षमता का माउंटबेटन ने अच्छा प्रदर्शन किया। अपनी स्वाभाविक स्फूर्ति और फैसले लेने की शक्ति का उन्होंने न जाने कैसे राजाओं में भी संचार कर दिया। जैसे ही माउंट-बेटन ने उनके पूछे आड़े-टेढ़े प्रश्नों का उत्तर देना शुरू किया, गंभीर रूप में प्रारम्भ हुई इस सभा ने हंसी-मजाक का रूप धारण कर लिया।

इस नाजुक घड़ी में अपने राज्य और देश दोनों से ही अनुपस्थित एक महाराजा ने न तो स्वयं इस बैठक में आने की जरूरत समझी और न अपने दीवान को कोई ही आदेश देने की। दीवान को कोई आदेश प्राप्त नहीं हुआ था। माउंटबेटन ने उनसे पूछा, "निश्चय ही आप अपने राजा के मन की बातों से तो परिचित ही हैं और उनकी ओर से फैसला कर सकते हैं?" बेचारे दीवान ने कहा, "मैं अपने राजा के मन की बात नहीं जानता और समुद्री तार से उत्तर भी नहीं मंगवा सकता।" यह सुनकर माउंटबेटन ने अपने सामने रखा हुआ शीशे का बड़ा-सा गोल पेपरवेट अपने हाथ में उठाते हुए कहा, "इस कांच में देखकर मैं आपको ठीक उत्तर बता देता हूं।" फिर थोड़ी देर के नाटकीय मौन के बाद उन्होंने गंभीरता से कहा, "आपके महाराजा आपको संघ-प्रवेश-पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए कह रहे हैं।"

इस विशिष्ट-समुदाय की भावनाएं उन्होंने इतनी अच्छी तरह भांप ली थीं कि इस विनोद पर सब लोग ठहाका मार कर हंस पड़े। उनका विनोद सचमुच सौजन्यपूर्ण झिड़की भी था, और समयोचित सलाह भी। ऐसा लगता था कि उपस्थित समुदाय के दिमाग की अभेद्य दीवारों को बेधने के लिए विनोद का प्रयोग करना ही उचित था।

वाइसराय-भवन लौट कर मैंने माउंटबेटन को बतलाया कि उनके आज के काम की सभी पर गहरी छाप पड़ी है। मैंने कहा कि यह स्पष्ट है कि हमें पत्रों के लिए पूरे गोपनीय भाषण का काफी कंटा-छंटा रूप ही तैयार करना पड़ेगा, जिसे मैं वी. पी. मेनन के साथ बैठकर तैयार किये लेता हूं। माउंटबेटन ने कहा कि मेनन और हम जो मसविदा तैयार करेंगे वह उन्हें स्वीकार होगा। वह उसे दुबारा नहीं देखना चाहेंगे। उनका

विचार था कि आज उनसे जो प्रश्न पूछे गए थे इनके पीछे कोई वास्तविकता नहीं थी। बहुत कम राजाओं अथवा उनके प्रतिनिधियों को दुनिया की घटनाओं का कोई ज्ञान था। अगर वे संघ-प्रवेश-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं करेंगे, तो वे खत्म हो जायंगे।

फिर, उन्होंने वी. पी. मेनन की तारीफ करते हुए कहा कि वह सचमुच ही मेनन को चाहने लगे हैं और मेनन के समान राजनीति-कुशल बुद्धि-वाले व्यक्ति उन्होंने कम देखे हैं। उन्होंने बतलाया कि किस प्रकार केवल संयोगवश ही मेनन और मेनन के विचार प्रकाश में आ पाए हैं। मई में हमारी शिमला-यात्रा और माउंटबेटन द्वारा नेहरू को योजना का मसविदा दिखाने की इच्छा ही इस परिवर्तन की असली घड़ी थी। इससे वी. पी. मेनन को अपनी औपनिवेशिक स्वराज्य के सूत्रवाली दूसरी योजना तैयार करने का मौका मिला।

वी. पी. मेनन ने उनके सामने मंजूर किया था कि जब उनकी योजना कर्मचारी-मंडल की बैठक के सामने पेश होने पर ठुकरा दी गई तो उनकी आंखें भर आई थीं।

सबसे पहले जार्ज एबेल ने ही यह स्वीकार किया कि माउंटबेटन द्वारा वी. पी. मेनन को नीति-निर्णायक दल में शामिल करना हमारी अबतक की सफलताओं का सबसे बड़ा व्यक्तिगत तत्त्व है।

इस मौके को माउंटबेटन अपनी एक और व्यक्तिगत विजय मान सकते हैं। नेतृत्वहीन और कलहग्रस्त राजाओं ने अवसरवादिता और निर्णय-हीनता के पर्दे के पीछे मुंह छिपाने की हरचन्द कोशिश की, लेकिन घटनाओं का प्रवाह इतना व्यापक और इतना तीव्र था कि रुकावट की उनकी चालें नहीं चल पाईं। पहले की नीतियों के गुण-दोष चाहे जो रहे हों, लेकिन ताज के अंतिम प्रतिनिधि के रूप में आज माउंटबेटन को जिस परिस्थिति से साबिका पड़ा था, वह ऐसी थी कि केवल किसी प्रकार की मध्यस्थता के द्वारा ही इस असामयिक सामन्तवाद से पिंड छुड़ाया जा सकता था।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
शनिवार, २६ जुलाई १९४७

कल रात माउंटबेटन-दम्पति ने जिन्ना-परिवार को जो दावत दी थी, उसके बारे में जार्ज एबेल के साथ मेरी एक मनोरंजक बात हुई। दावत बिलकुल अनौपचारिक थी और वाइसराय भवन के मेहमानों और कर्मचारी-मंडल के सदस्यों के अलावा कोई बाहरी लोग नहीं थे। खूब लम्बे और अधिकांश विनोदहीन मजाक करके जिन्ना बातचीत पर एकाधिकार जमा बैठे। जब माउंटबेटन ने जिन्ना को लेडी माउंटबेटन से बातें करने के लिए छोड़कर अपने पास बैठे मेहमानों से बात करके चर्चा को संतुलित करने का प्रयास किया तो जिन्ना सहसा रुके और फिर मेज के उस ओर से चिल्लाकर बोले, "मेरा खयाल है, माउंटबेटन इस मजाक को सुनना चाहेंगे।" प्रथा के अनुसार राजा का प्रतिनिधित्व करने वाला वाइसराय भोजन करने के कमरे में आने और जाने में सबमें आगे रहता है। लेकिन इस दावत के खत्म होते ही जिन्ना भी माउंटबेटन के साथ ही उठ खड़े हुए और उन्हींके साथ-साथ बाहर गये।

जार्ज ने बतलाया कि दावत के बाद उन्होंने इस भावना से कि मैं तो पन्द्रह अगस्त को जा ही रहा हूं, जिन्ना को सिखों के प्रश्न पर खूब आड़े हाथों लिया। जार्ज ने कहा कि पश्चिमी-पंजाब की सीमा के पास वाले इलाकों में निहायत अयोग्य आदमी नियुक्त किये जा रहे हैं। जिन्ना ने बुरा नहीं माना और इतना ही कहा कि अपने लोगों की वह नस-नस पहचानते हैं। वह जरा तैश में आ गए जब जार्ज ने कहा कि असली दिक्कत यह है कि जिन्ना की योग्यता के लोग एक साथ सब जगह तो मौजूद हो नहीं सकते और इसमें कोई शक नहीं कि जिन्ना उन लोगों को देखने नहीं गये हैं कि जिनकी आलोचना की जा रही है। जार्ज का खयाल था कि सिखों के बारे में जिन्ना का रुख निहायत खतरनाक है।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
रविवार, २७ जुलाई १९४७

आज फिर ठंडे जल से स्नान करते समय माउंटबेटन ने मुझे मिलने बुलाया। उन्होंने मुझे एक घटना का हाल सुनाया जो आज तो विचित्र-सी लगती है, पर उस समय गंभीर शक्ल भी ले सकती थी। उन्होंने लार्ड किल्लर्न को सिंगापुर से बुलवाया था और उनके साथ इस संभावना पर विचार-विमर्श कर रहे थे कि क्या वह पूर्वी-बंगाल का गवर्नर-पद संभाल सकेंगे? यह इसलिए, क्योंकि जिन्ना चाहते थे कि पाकिस्तान की इस चौकी को कोई ऊंची योग्यता वाला ब्रिटिश-शासक संभाले। जब वह नौकरी की शर्तों पर विचार कर रहे थे तब लार्ड किल्लर्न ने पूछा कि क्या दार्जिलिंग के पाकिस्तान में शामिल होने की कोई संभावना है? अगर यह नहीं, तो क्या यह व्यवस्था करना मुमकिन होगा कि बहुत गरम मौसम को वह आसाम के किसी पहाड़ी मुकाम, जैसे शिलांग, में बिता सकें? उन्होंने कहा कि अब वह छियासठ वर्ष के होने आए हैं, उनके कई छोटे-छोटे बच्चे हैं और वह पूर्वी पाकिस्तान की राजधानी ढाका की गरमी बर्दाशत नहीं कर सकेंगे। इसके अलावा, उन्हें जानकारी मिली है कि ढाका में गवर्नर का प्रस्तावित-निवास बहुत ही खस्ता हालत में है। माउंटबेटन ने इस विषय में पता लगाने का वादा किया।

संयोगवश इसके बाद ही उनकी मुलाकात हुई आसाम के प्रधान-मंत्री बार्दोलोई से। आसाम के बारे में कुछ मामूली कामों को चन्द मिनटों में निबटाने के बाद उन्होंने बार्दोलोई से ढाका के बारे में पूछा। क्या वहां कोई पहाड़ी जगहें हैं? बार्दोलाई ने कहा कि पूरे इलाके में ग्यारह सौ फुट से ऊंची कोई जगह नहीं है। फिर माउंटबेटन ने दार्जिलिंग के बारे में पूछा। सीमा-आयोग द्वारा उसके किधर दिये जाने की संभावना है, पाकिस्तान को या भारत को? बार्दोलोई ने कहा कि उसका भारत में रहना निश्चित है। इसके बाद माउंटबेटन ने शिलांग और आसाम के पहाड़ी क्षेत्रों के बारे में भी पूछताछ की।

बार्दोलोई इस पूछताछ के उद्देश्य को बिलकुल गलत समझ बैठे और बड़ी घबराई हुई हालत में गांधीजी के पास पहुंचे। शिकायत की कि दार्जिलिंग, शिलांग और पहाड़ी क्षेत्रों को पाकिस्तान में शामिल करने के लिए भयंकर षड्यंत्र रचा जा रहा है। गांधीजी ने कहा कि इसमें शक नहीं कि अंग्रेज ऐसी धोखाधड़ी करने की सामर्थ्य रखते हैं लेकिन वह यह विश्वास नहीं कर सकते कि माउंटबेटन ऐसे किसी काम में हाथ बंटाएंगे। इसके बाद बार्दोलोई पटेल के पास गये और पटेल इस प्रश्न को लेकर काफी फिक्र में पड़ गए। फलस्वरूप, आज सवेरे वी. पी. मेनन परेशान-से माउंटबेटन के सोने के कमरे में आये।

माउंटबेटन को पूरी बात का खुलासा करते देर नहीं लगी। उन्हें उम्मीद थी कि एकाध दिन में इस प्रश्न पर वह कांग्रेसी नेताओं से हंसी-मजाक भी कर सकेंगे। लेकिन वह इस घटना को बड़ा उद्बोधक भी मानते थे, क्योंकि यह मामूली-सी गलतफहमी बड़े भारी संकट का रूप भी ले सकती थी।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
सोमवार, २८ जुलाई १९४७

आज रात लगभग पचास से ऊपर राजाओं और करीब सौ रियासती प्रतिनिधियों के सम्मान में वाइसराय भवन में एक शानदार समारोह हुआ। समारोह का ठाठबाट उस अयथार्थता और वेदना को ही बल देने वाला था, जो आज राजाओं को घेरे हुए थी। आज जब कि उद्देश्य की एकता का सवाल उनके लिए सबमें अधिक महत्व का होना चाहिए था, वे बेचैनी के साथ इन समस्याओं में डूबे हुए थे कि कौन किससे बड़ा है? हर एक का ध्यान इसी ओर था कि दूसरा क्या कर रहा है, और जैसा कि एक दीवान ने कहा," वह बैरंग लिफाफे के समान भटक रहे थे।"

जिन श्रीमन्तों ने अभी तक संघ-प्रवेश-पत्र पर हस्ताक्षर करने की

इच्छा जाहिर नहीं की थी, उनको एक-एक कर ए. डी. सी. मित्रतापूर्ण बातचीत के लिए माउंटबेटन के पास ले जाने लगे। माउंटबेटन उनको सबके सामने वी. पी. मेनन के हवाले कर देते और मेनन उन्हें पटेल के पास पहुंचा आते। तीन-तीन की कतार में अर्द्धचन्द्राकार खड़े हुए राजा-लोग यह कार्यवाही देख रहे थे।

एक खुर्रांट राजा ने टिप्पणी की, "माउंटबेटन अब किस पर डोरे डाल रहे हैं?" गर्दन आगे बढ़ा कर देखने का प्रयास करते हुए उन्होंने बड़े मजे से कहा, "उन्हें मेरे ऊपर डोरे डालने की जरूरत नहीं। मैं कल हस्ताक्षर कर रहा हूं।" फे ने एक बूढ़े और एक तरुण राजा के बीच यह बातचीत होते सुनी: बूढ़े राजा ने पूछा, "आपकी रियासत में कैसी स्थिति है?" तरुण राजा ने उत्तर दिया, "हमारे यहां एक जगह (जगह का नाम बतलाया) स्थिति ठीक नहीं थी, लेकिन अब समझौता हो गया है।" इस पर बूढ़े राजा ने कहा, "हमारे यहां हर जगह स्थिति खराब है, लेकिन मैं उसे समझौते की सीमा तक नहीं पहुंचने देता।"

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
बुधवार, ३० जुलाई १९४७

पौ फटते ही माउंटबेटन कलकत्ता के लिए रवाना हो गए, जहां की गंभीर स्थिति का वह तत्काल परीक्षण करेंगे। बड़ी रात गये फोन पर उन्होंने मुझसे पत्रों संबंधी कुछ मामूली समस्याओं को सुलझाने के लिए कहा मानो सत्ता-हस्तांतरण का काम उन्हींके सुलझाये जाने पर निर्भर करता हो! बड़ी बातों पर वह कभी दुराग्रह नहीं करते; उन्हें परेशान करती थीं छोटी बातें, जो कर्मचारियों का नाकों दम कर डालती थीं; अगर उनका काम करना हो और उनके दल का सदस्य बने रहना हो तो उन्हें इन छोटी समस्याओं से दूर रखना ही श्रेयस्कर था। लेकिन जब आपका ध्यान दूसरी ओर हो तो वह एकाध ऐसी समस्या कहीं-न-कहीं से पकड़ ही लाते थे।

उनकी गैरहाजरी से मिले इस छोटे से विश्राम का उपयोग मैंने गांधीजी से भेंट करने में किया। इसके लिए मैंने बहुत दिनों से वादा किया हुआ था। उनसे मिलने मैं दोपहर को भंगी बस्ती पहुंच गया। गत मई में, जब मैं शिमला में राजकुमारी अमृतकौर से मिला था, तबसे वह यह मुलाकात जमाने की कोशिश करती आ रही थीं।

दिल्ली में अपने रहने के लिए भंगी बस्ती का चुनाव करना वास्तव में गांधीजी का एक बड़ा संकेतात्मक काम है। लेकिन वैरागीपन की भी अपनी प्रशासनिक समस्याएं होती ही हैं। मेरा खयाल है, शायद श्रीमती सरोजिनी नायडू ने एक बार भंगी बस्ती के बारे में कहा था, "काश, बापू जानते कि उन्हें गरीबी में रखना कितना खर्चीला होता है!" उनके इर्द-गिर्द यहां जो गरीबी है, वह बिलकुल वास्तविक है। बस्ती उस बंजर भूमि पर स्थित है जो दिल्ली को घेरे हुए है, और उसकी पृष्ठ-भूमि कठोर चट्टानों और भूरी मिट्टी से अटी हुई है।

दो काफी भद्दे पहरेदारों ने मुझसे मेरा नाम-पता पूछा और मुझे एक सेक्रेटरी के पास पहुंचा दिया। इन सज्जन ने जो निर्देश दिये उनसे कुछ पता ही नहीं चलता था कि मुझे किधर जाना चाहिए। इतने में एक दूसरे सेक्रेटरी दिखलाई पड़े और वह मुझे एक खाली कमरे में ले गए। मुझे बाद में बताया गया कि गांधीजी वहां सोते और काम करते हैं। मैंने उन्हें चबूतरे पर तकियों के सहारे बैठे हुए पाया। हमारी मुलाकात के बीच दो सेक्रेटरी चुपचाप अन्दर आये और चतुर अनुयायियों की भांति अपना काम करने लगे।

जैसे ही मैं अन्दर दाखल हुआ, गांधीजी ने हंसते हुए कहा, "आप मुझसे खड़े होने की आशा तो नहीं करेंगे?" मुझे बैठने के लिए कुर्सी दी गई। लेकिन मैंने उनके सामने पालथी मारकर बैठना पसन्द किया। मैंने उन्हें याद दिलाई, "आपसे पहली बार मिलने का सौभाग्य मुझे आज से सत्रह वर्ष पूर्व हुआ था, जब मैं बालक था और वेस्टमिन्स्टर स्कूल में पढ़ता था। आप अचानक हमारे सामने भाषण देने आये थे और

हम सब पर इस घटना की गहरी छाप पड़ी थी।" उन्होंने कहा कि यह घटना उन्हें थोड़ी-थोड़ी याद है—शायद किसी भले ईसाई पादरी ने उन्हें वहां आमंत्रित किया था। मैंने बतलाया कि उनके आने के दो दिन बाद लार्ड हैलीफेक्स भी हमारे सामने भाषण देने आये थे। गांधी-इर्विन समझौते के उस साल की सबसे याद रहनेवाली बात यह थी कि दोनों ने एक दूसरे के बारे में कितने सौहार्द से बात की थी। दोनों ने हमारे शिशु-हृदयों पर यह छाप छोड़ी थी कि यह मानवता-भरी सद्भावना ही सच्चे समझौते को जन्म दे सकती है। " उन दिनों मैं लार्ड हैलीफेक्स के बहुत निकट था," गांधीजी ने बीते दिनों की याद करते हुए कहा, "लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि आज नजदीक नहीं हूं।"

मैंने कहा कि मैं अभी-अभी लन्दन से लौटा हूं, जहां मैंने भारतीय स्वतंत्रता-अधिनियम को संसद के दोनों सदनों से गुजरते हुए देखा था। इस विषय में हुई बहस की रिपोर्ट की तीन प्रतियां भी मैंने उन्हें भेंट कीं, जिससे उन्हें खुशी हुई। लार्ड-सभा में लार्ड सेम्युअल ने उनकी जो प्रशंसा की थी, उसकी ओर मैंने उनका विशेष ध्यान खींचा। कहा कि यह उन्होंने देख लिया था और यह लार्ड सेम्युअल की कृपा है कि उन्होंने ऐसे शब्द कहे। एक बार उनका लार्ड सेम्युअल के साथ किसी विषय पर पत्र-व्यवहार हुआ था और उसमें चले तर्क में लार्ड सेम्युअल ने अपनी गलती मानने की उदारता दिखलाई थी। गांधीजी ने कहा कि यह व्यक्ति के बड़प्पन का लक्षण होता है।

स्वतन्त्रता-अधिनियम से पैदा हुई आम स्थिति की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि ब्रिटिश-सत्ता के समाप्त होने से कांग्रेसी नेताओं के कन्धों पर भारी उत्तरदायित्व आ पड़ा है। अबतक तो ये लोग केवल चंद लाखों रुपयों से ही काम चलाते रहे हैं, लेकिन अब राज्य के विशाल साधन उनके हाथों में आ गए हैं। दोनों सरकारों को समय की जरूरत है—सांस लेने के मौके की, जिसमें वे अपने पाये मजबूत बना सकें। वह विभाजन को एक बुराई समझते हैं; लेकिन यह मानने को तैयार थे कि अगर दोनों सरकारें एक-दूसरे के

साथ न्याय का व्यवहार करें तो इस अशुभ से शुभ परिणाम भी निकल सकता है। मैंने कहा कि भारत ही नहीं, समूचे एशिया का भाग्य दांव पर है। खास तौर से दक्षिणी-पूर्वी एशिया के देश भारत की ओर आंखें लगाये हैं और चीन के गृह-युद्ध ने भारत के महत्व को और भी बढ़ा दिया है। उन्होंने हार्दिक स्वीकृति जतलाते हुए कहा, "सारी दुनिया हमारी तरफ देख रही है। भारत कसौटी पर है।"

फिर यहां के अपने खास काम—समाचारपत्रों—की चर्चा करते हुए मैंने कहा कि भारतीय पत्रों को अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और भारतीय पत्रकारों को विदेश जाकर नये अनुभव प्राप्त करने चाहिएं। उन्होंने मंजूर किया कि इसकी जरूरत है, लेकिन इस मान्यता ने उन्हें अपने प्रिय विषय पर पहुंचा दिया। उन्होंने कहा, "भारतीयों में अपने निराकरण के लिए दूसरों का मुंह ताकने की खतरनाक प्रवृत्ति है। अपने आत्म-सम्मान की रक्षा कर हमें स्वयं अपनी मदद करनी चाहिए। दवाओं और डाक्टरों की ही बात लीजिये। मैं एक भी ऐसे अंग्रेज की बात नहीं जानता जो इलाज के लिए भारत आया हो। लेकिन इस या उस प्रसिद्ध यूरोपीय सर्जन से इलाज करवाने के लिए भारतीयों के विदेश जाने की बात हम बराबर सुनते रहते हैं। यह ठीक नहीं है कि भारत को भारतीयों के मरने की ही जगह माना जाय। हमारे यहां काफी योग्य सर्जन हैं, जैसे डाक्टर अंसारी थे।"

उनके तर्क का सार यह था : चूंकि भारत ने अब अपनी राजनैतिक स्वाधीनता पा ली है, इसलिए भारतीयों का कर्तव्य यह है कि शब्दों नहीं, कर्मों के द्वारा देश के प्रति अपने विश्वास और गर्व का परिचय दें। वह यह समझें कि जो सुख-सुविधा के साधन उन्हें विरासत में मिले हैं वे बाहरी दुनिया की चीज हैं और हमारे लिए बिल्कुल अनिवार्य नहीं हैं। भारतीय-स्वाधीनता की यही असली चुनौती है।

करीब तीन-चौथाई घंटे मैं उनके साथ रहा। दो महिला सेक्रेटरी बराबर महात्माजी के शब्दों के नोट लेती रहीं। उनके अन्य शिष्य चुपचाप आते-जाते रहे। पूरी मुलाकात भर राजकुमारी उनके दायीं ओर बैठीं रहीं,

लेकिन बोलीं बहुत कम। जहां तक गांधीजी के आकर्षण और जादू का सवाल है, ऐसा अनुभव इसके पहले केवल एक ही बार हुआ था—१९३६ में लायड जार्ज से मेरी लम्बी बातचीत के समय।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
शुक्रवार, १ अगस्त १९४७

कई प्रमुख नरेशों को आज वाइसराय भवन में दिये गए भोज का हाल मुझे बतलाया गया। वाइसराय और उनकी पत्नी के प्रति चाय-पान के लिए आभार प्रदर्शित करने के बाद वे राजा-लोग वाइसराय के ए. डी. सी. लोगों के पंजे में फंस गए, जिन्होंने संघ-प्रवेश-पत्र के बारे में उनके मत के अनुसार उन्हें "हां" और "नहीं" की कतारों में में खड़ा कर दिया। पटियाला और बीकानेर 'नहीं' की कतार में खड़े हो गए और खूब हंसे। इससे विनोद का वातावरण और भी गाढ़ा हो गया।

हैदराबाद और काश्मीर को छोड़ कर, जिनकी विशेष समस्याएं हैं, अन्य सब पर माउंटबेटन की सलाह का असर हुआ। केवल दो या तीन ही बड़े नरेश यह समझते हैं कि संघ-प्रवेश-पत्र पर हस्ताक्षर न करने से लाभ होगा। दुर्भाग्यवश माउंटबेटन के मित्र, भोपाल-नरेश, इस दल के अगुआ हैं, और उसमें भोपाल के निकट और महत्वपूर्ण पड़ोसी महाराज इन्दौर भी शामिल हैं। सबमें योग्य मुसलमान नरेश होने के नाते मैं खयाल करता हूं कि वह पाकिस्तान की उच्च-स्तर की राजनीति में महत्वपूर्ण भाग लेने में संकोच नहीं करेंगे। कुछ दिनों तक वह जिन्ना के निकटतम सलाहकार भी रहे थे। उनके लिए अभाग्य की बात यह है कि उनकी रियासत की अधिकांश आबादी हिन्दू है और वह भारत के मध्य में स्थित हैं।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
रविवार, ३ अगस्त १९४७

माउंटबेटन उन नरेशों से मुलाकातें करने के लिए जी-तोड़ कोशिश कर रहे हैं, जिनके सामने संघ-प्रवेश का प्रश्न विशेष समस्याएं पैदा कर रहा है। लेकिन जैसे-जैसे अन्तिम घड़ी नजदीक आ रही है, जिम्मेदारियां और फैसले लेने का काम बढ़ता जा रहा है। इसलिए धौलपुर के महाराज राणा से व्यक्तिगत और गैर-सरकारी रूप से सम्पर्क स्थापित करने का काम उन्होंने मुझे सौंप दिया। महाराज राणा ब्रिटेन के युवराज की १९२१ में भारत-यात्रा के समय से उनके मित्र हैं। उस समय दोनों युवराज के ए. डी. सी. थे।

उनके साथ अपनी लम्बी बातचीत के आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि वह बड़े विद्यानुरागी, पांडित्यपूर्ण और साधु-वृत्ति के व्यक्ति हैं। राजाओं के दैवी-अधिकारों में उनका गहरा विश्वास है। ब्रिटिशराज के साथ अपने दर्जे और अपनी जनता के साथ अपने सम्बन्धों के बारे में उनकी धारणाएं बड़ी ही रहस्यमयी हैं। अपने विशेषाधिकारों के बारे में बेहद ऊंचे खयालों के बावजूद अपने व्यवहार और पहरावे में वह बहुत सरल हैं। वह काफी ठिगने व्यक्ति हैं, गांधीजी से ज्यादा ऊंचे नहीं। वह गुलाबी साफा बांधे थे और बहुत चिंतित नजर आते थे।

ब्रिटेन के साथ अपनी सन्धि के समाप्त होने के बारे में उन्होंने बड़ी भावुकता के साथ धीमे-धीमे चर्चा की। उनकी आवाज में नाराजी नहीं, आत्म-समर्पण था। भाग्यवादियों में पाई जानेवाली खिन्नता उनमें भरी हुई थी। ऐसे व्यक्ति के साथ यह तर्क काफी नहीं कि उसका हित कैसे सध सकता है। मूलतः वह यह सहानुभूति और आश्वासन चाहते थे कि वह जो कुछ करेंगे, उसे उचित माना जायगा। अपने दिल में उनको जरा भी उम्मीद नहीं थी कि नया भारतीय-उपनिवेश जिन्दा रह सकेगा। थोड़े ही दिन पूर्व की क्रान्तिकारी स्थितियों में ब्रिटेन के साथ १७६५ में हुई सार्व-भौमिकता की सन्धि की वह अपने शासन काल की लम्बी और स्वामिभक्ति

पूर्ण परम्पराओं के साथ तुलना करते थे। ऐसे भावुक और ईमानदार व्यक्ति को ऐसी दुविधा में पड़े देखकर बड़ी वेदना होती थी। स्वाधीनता का तूफान इस तेजी से चल रहा था कि वह कुछ भी समझने में असमर्थ थे। अगर उनकी चेतना इतनी प्रबल न होती तो शायद वह एक तरफ हट जाना पसन्द करते।

जैसे-जैसे सत्ता-हस्तांतरण का दिन नजदीक आ रहा था, माउंटबेटन और उनके अमले पर पड़नेवाले काम का बोझ बढ़ रहा था। मेरे ऊपर जन-सम्पर्क और पत्रों सम्बन्धी समस्याओं का इतना काम आ पड़ा था कि पूरा केन्द्रीय सूचना-कार्यालय उसे निबटाने में व्यस्त रहता था। कराची और दिल्ली में होनेवाले समारोहों की बड़े सोच-विचार के साथ योजना तैयार की जा रही थी। जिन्ना ने एक बड़ा पेचीदा सवाल खड़ा कर दिया था। कराची में १३ अगस्त के समारोह के अवसर पर माउंटबेटन को क्या प्राथमिकता दी जाय? काफी दृढ़ता के साथ पर बड़े सरल शब्दों में उन्हें बतला दिया गया था कि माउंटबेटन इस समारोह में वाइसराय के नाते भाग लेंगे। और उनसे यह भी कह दिया गया था कि यह सुझाव बिलकुल निरर्थक होगा कि विधान-सभा की विशेष बैठक में वह जिन्ना के नीचे बैठें।

मेरी जिम्मेदारियों में ये काम भी शामिल हैं: दोनों उपनिवेशों को भेजे जाने के लिए ब्रिटेन के राजा के सन्देशों का मसविदा तैयार करना, दोनों देशों की विधान-सभाओं को दिये जानेवाले माउंटबेटन के भाषणों को ठीकठाक कर देना।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
मंगलवार, ५ अगस्त १९४७

आज विभाजन-कौंसिल और संयुक्त-सुरक्षा-परिषद् की बैठकों के बाद माउंटबेटन ने पटेल, जिन्ना और लियाकत से गुप्त बातचीत की। जेनकिन्स द्वारा उनको जबानी रिपोर्ट देने के लिए भेजे गए, पंजाब के एक

खुफिया अधिकारी का उन्होंने इन नेताओं से परिचय कराया। इस अधिकारी ने उन लोगों द्वारा दिये गए भाषणों की जानकारी दी, जिन्होंने दंगे भड़काये थे और जिन्हें बाद में गिरफ्तार कर लिया गया था। इन लोगों से पूछे गए प्रश्नों और अलग जरियों से मिली जानकारी से पता चलता था कि सिख-नेताओं का तोड़-फोड़ की कई योजनाओं में गहरा हाथ था। अगले सप्ताह कराची में स्वाधीनता समारोह में शासकीय सवारी के समय उन्होंने जिन्ना की हत्या की योजना भी बनाई थी। जिन्ना तथा लियाकत ने तुरन्त तारासिंह और अन्य सिख नेताओं की गिरफ़तारी की मांग की। लेकिन पटेल इस कार्रवाई के बिलकुल खिलाफ थे। उनका तर्क था कि इससे वह स्थिति और भी भयंकर रूप ले लेगी, जो आज भी हमारे नियंत्रण के बाहर है।

माउंटबेटन ने कहा कि एक शर्त पर वह इन गिरफ्तारियों का समर्थन करने को तैयार हैं। स्थानीय अधिकारी इसे ठीक समझें तो। इसलिए माउंटबेटन ने जेनकिन्स को लिख भेजा कि पूर्वी और पश्चिमी पंजाब के मनोनीत गवर्नरों, त्रिवेदी और मूडी, से चर्चा करें कि १५ अगस्त के पहले तारासिंह और उनके अन्य सिर-फिरे साथियों को गिरफ्तार करना ठीक होगा या नहीं।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
बृहस्पतिवार, ७ अगस्त १९४७

हमारे जीवन में विनोद के क्षण भी आते हैं। वाइसराय के कर्मचारी मंडल की अड़सठवीं बैठक का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ : पहला विषय ज्योतिष। वाइसराय ने कहा कि उन्होंने मध्यप्रदेश के मनोनीत राज्यपाल श्री मंगलदास पकवासा को यह सुझाया था कि आप १४ अगस्त की बजाय १३ अगस्त को ही अपना कार्यभार संभाल लें, जिससे सर फ्रेडरिक बोर्न पूर्वी-बंगाल के राज्यपाल का पद १५ अगस्त को संभाल सकें। पकवासा ने

कहा कि ज्योतिष के अनुसार यह संभव नहीं हो सकता। वाइसराय ने कहा कि मेरे कर्मचारियों में ज्योतिष-विषयक सलाह देने वालों का अभाव है। इसका इलाज तुरन्त ही यह घोषणा करके किया गया, "वाइसराय महोदय ने गवर्नर-जनरल के अवैतनिक ज्योतिषी-पद के लिए अपने 'प्रेस एटेची' की नियुक्ति की।"

इसके बाद मैं पकवासा से मिला। पटेल ने उन्हें एक दावत दी थी और उसमें मैं और फे भी निमंत्रित थे। यह अवसर अनौपचारिक था। पकवासा और हम दोनों के अतिरिक्त केवल एक अतिथि और थे—मि. डल नाम के एक अमरीकी सज्जन। पटेल के निजी सेक्रेटरी शंकर, जो आक्सफोर्ड में मेरे सहपाठी थे, तथा सरदार की पुत्री और अनन्य सेविका मणिबेन को मिला कर हम लोग कुल सात व्यक्ति थे। पटेल का घर नेहरू के घर के बिलकुल पड़ोस में है तथा शान-शौकत और लम्बाई-चौड़ाई में उससे बहुत कम है।

सत्ता-हस्तान्तरण के बाद नेहरू और पटेल भारत की बागडोर संभालेंगे, और दोनों में अन्तर बतलाना स्वाभाविक बात है। दोनों की व्यक्तिगत और बाहरी आकृति में भी कम अन्तर नहीं है। धोती में सज्जित पटेल चोगा पहने हुए रोमन-सम्राट का स्मरण कराते हैं। सच पूछिए तो इस पुरुष में काफी रोमन विशेषताएं हैं—प्रशासनिक योग्यता, कठोर निर्णय करने और निभाने की क्षमता, तथा चरित्र-बल के साथ पाई जाने वाली सौम्यता। पर नेहरू के समान विश्व-ख्याति और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का उनमें अभाव है। उन्होंने जान-बूझकर अपने-आपको आन्तरिक राज-नीति की समस्याओं तक ही सीमित रखा है। इस क्षेत्र में उनकी शक्ति और जिम्मेदारियां काफी व्यापक हैं। इनके अन्तर्गत सरकारी सूचना-विभाग, आन्तरिक सुरक्षा, पुलिस तथा भारतीय रियासती मामले शामिल हैं। जब उनकी संघ-प्रवेश-संबंधी नीति पर पूरा अमल हो जायगा तो पाकिस्तान बनने से भारत को जितने नागरिकों की हानि होगी, उससे कहीं अधिक नागरिक उसमें शामिल हो जायंगे, क्योंकि इससे हैदराबाद और काश्मीर की दो करोड़ जनसंख्या के अतिरिक्त ९ करोड़ रियासती जनता भारत में

मिल जायगी, जो पाकिस्तान की आबादी से कहीं अधिक है। पटेल के हाथ में ही कांग्रेस की सारी बागडोर है। किसी भी देश में एक व्यक्ति के हाथ में सत्ता का इतना केन्द्रीकरण होना मामूली बात नहीं है। इस व्यस्तता के बावजूद पटेल संसार में भारत की स्थिति को बड़ी अच्छी तरह जानते हैं।

जब पटेल राज-काज के मामलों में नहीं लगे रहते तब वह एक विनम्र हिन्दू का आदर्श रूप उपस्थित करते हैं। औदार्य और स्मित के तो वह भंडार हैं। मैंने भारतीय-स्वतन्त्रता-अधिनियम के लंदन में पास होने का हाल उन्हें बताया, जिसे उन्होंने दिलचस्पी से सुना। बातचीत के दौरान में भाषण देने की बात भी उठी। जब मैंने उनसे पूछा कि क्या आपको भाषण देना अच्छा लगता है, तब वह और मणिबेन हंस पड़े। मणिबेन ने मुझे बताया कि उनके पिता गुजराती के एक महान् वक्ता हैं।

भोजन के अधिकांश समय मणिबेन मौन रहीं। वह सरदार की सभी गोपनीय एवं सरकारी हलचलों में उनकी विश्वास-पात्र हैं। तपस्विनी की भांति खादी की साड़ी पहने हुए तथा कमर में चाबियों का गुच्छा खोंसे, वह सरदार की गृहस्थी की सुयोग्य एवं दत्तचित्त संचालिका जान पड़ती हैं।

प्राय: सभी भारतीय नेता अपने परिवार की महिलाओं से घिरे रहते हैं—चाहे वे पत्नी हो या पुत्री या बहनें। नेताओं के जीवन पर उनका बड़ा प्रभाव है। मैं यह खयाल लेकर भारत आया था कि भारतीय स्त्रियां बाहर नहीं आतीं और राजकीय मामलों में उनकी कोई आवाज या अभिरुचि नहीं है। किन्तु ऊंचे वर्गों में यह बात नहीं है। मिस फातिमा जिन्ना, श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित, बेगम लियाकतअलीखां और श्रीमती सुचेता कृपालानी प्रभावशाली व्यक्तित्व वाली स्त्रियां हैं, जिनकी महत्त्वाकांक्षाएं और रुचियां अपने संबंधित पुरुषों से कुछ कम नहीं। उनमें से सभी मणिबेन की तरह पृष्ठभूमि में रहना पसन्द नहीं करेंगी, किन्तु अपने पिता पर जितना उनका असर है शायद ही उतना किसी और का अपने घरों में हो।

लेडी माउंटबेटन समाज-सेवा के क्षेत्र में भारतीय स्त्रियों के सम्पर्क में आकर बड़ी प्रभावित हुई हैं। इस क्षेत्र में उनकी योग्यता ही बढ़ी-चढ़ी

कहा कि ज्योतिष के अनुसार यह संभव नहीं हो सकता। वाइसराय ने कहा कि मेरे कर्मचारियों में ज्योतिष-विषयक सलाह देने वालों का अभाव है। इसका इलाज तुरन्त ही यह घोषणा करके किया गया, "वाइसराय महोदय ने गवर्नर-जनरल के अवैतनिक ज्योतिषी-पद के लिए अपने 'प्रेस एटेची' की नियुक्ति की।"

इसके बाद में पकवासा से मिला। पटेल ने उन्हें एक दावत दी थी और उसमें मैं और फे भी निमंत्रित थे। यह अवसर अनौपचारिक था। पकवासा और हम दोनों के अतिरिक्त केवल एक अतिथि और थे—मि. डल नाम के एक अमरीकी सज्जन। पटेल के निजी सेक्रेटरी शंकर, जो आक्सफोर्ड में मेरे सहपाठी थे, तथा सरदार की पुत्री और अनन्य सेविका मणिबेन को मिला कर हम लोग कुल सात व्यक्ति थे। पटेल का घर नेहरू के घर के बिलकुल पड़ोस में है तथा शान-शौकत और लम्बाई-चौड़ाई में उससे बहुत कम है।

सत्ता-हस्तान्तरण के बाद नेहरू और पटेल भारत की बागडोर संभालेंगे, और दोनों में अन्तर बतलाना स्वाभाविक बात है। दोनों की व्यक्तिगत और बाहरी आकृति में भी कम अन्तर नहीं है। धोती में सज्जित पटेल चोगा पहने हुए रोमन-सम्राट का स्मरण कराते हैं। सच पूछिए तो इस पुरुष में काफी रोमन विशेषताएं हैं—प्रशासनिक योग्यता, कठोर निर्णय करने और निभाने की क्षमता, तथा चरित्र-बल के साथ पाई जाने वाली सौम्यता। पर नेहरू के समान विश्व-ख्याति और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का उनमें अभाव है। उन्होंने जान-बूझकर अपने-आपको आन्तरिक राज-नीति की समस्याओं तक ही सीमित रखा है। इस क्षेत्र में उनकी शक्ति और जिम्मेदारियां काफी व्यापक हैं। इनके अन्तर्गत सरकारी सूचना-विभाग, आन्तरिक सुरक्षा, पुलिस तथा भारतीय रियासती मामले शामिल हैं। जब उनकी संघ-प्रवेश-संबंधी नीति पर पूरा अमल हो जायगा तो पाकिस्तान बनने से भारत को जितने नागरिकों की हानि होगी, उससे कहीं अधिक नागरिक उसमें शामिल हो जायंगे, क्योंकि इससे हैदराबाद और काश्मीर की दो करोड़ जनसंख्या के अतिरिक्त ९ करोड़ रियासती जनता भारत में

मिल जायगी, जो पाकिस्तान की आबादी से कहीं अधिक है। पटेल के हाथ में ही कांग्रेस की सारी बागडोर है। किसी भी देश में एक व्यक्ति के हाथ में सत्ता का इतना केन्द्रीकरण होना मामूली बात नहीं है। इस व्यस्तता के बावजूद पटेल संसार में भारत की स्थिति को बड़ी अच्छी तरह जानते हैं।

जब पटेल राज-काज के मामलों में नहीं लगे रहते तब वह एक विनम्र हिन्दू का आदर्श रूप उपस्थित करते हैं। औदार्य और स्मित के तो वह भंडार हैं। मैंने भारतीय-स्वतन्त्रता-अधिनियम के लंदन में पास होने का हाल उन्हें बताया, जिसे उन्होंने दिलचस्पी से सुना। बातचीत के दौरान में भाषण देने की बात भी उठी। जब मैंने उनसे पूछा कि क्या आपको भाषण देना अच्छा लगता है, तब वह और मणिबेन हंस पड़े। मणिबेन ने मुझे बताया कि उनके पिता गुजराती के एक महान् वक्ता हैं।

भोजन के अधिकांश समय मणिबेन मौन रहीं। वह सरदार की सभी गोपनीय एवं सरकारी हलचलों में उनकी विश्वास-पात्र हैं। तपस्विनी की भांति खादी की साड़ी पहने हुए तथा कमर में चाबियों का गुच्छा खोंसे, वह सरदार की गृहस्थी की सुयोग्य एवं दत्तचित्त संचालिका जान पड़ती हैं।

प्रायः सभी भारतीय नेता अपने परिवार की महिलाओं से घिरे रहते हैं—चाहे वे पत्नी हो या पुत्री या बहनें। नेताओं के जीवन पर उनका बड़ा प्रभाव है। मैं यह खयाल लेकर भारत आया था कि भारतीय स्त्रियां बाहर नहीं आतीं और राजकीय मामलों में उनकी कोई आवाज या अभिरुचि नहीं है। किन्तु ऊंचे वर्गों में यह बात नहीं है। मिस फातिमा जिन्ना, श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित, बेगम लियाकतअलीखां और श्रीमती सुचेता कृपालानी प्रभावशाली व्यक्तित्व वाली स्त्रियां हैं, जिनकी महत्त्वाकांक्षाएं और रुचियां अपने संबंधित पुरुषों से कुछ कम नहीं। उनमें से सभी मणिबेन की तरह पृष्ठभूमि में रहना पसन्द नहीं करेंगी, किन्तु अपने पिता पर जितना उनका असर है शायद ही उतना किसी और का अपने घरों में हो।

लेडी माउंटबेटन समाज-सेवा के क्षेत्र में भारतीय स्त्रियों के सम्पर्क में आकर बड़ी प्रभावित हुई हैं। इस क्षेत्र में उनकी योग्यता ही बढ़ी-चढ़ी

नहीं है प्रत्युत वे अपने बन्धनों को भी तोड़ रही हैं । भारतीय महिलाओं की मुक्ति भारतीय स्वाधीनता-संग्राम का एक महत्वपूर्ण अंग है । इस समय लेडी माउंटबेटन के नेतृत्व में इस मुक्ति-आन्दोलन को और भी गति मिल रही है ।

वाइसराय भवन, नई दिल्ली,
शनिवार, ९ अगस्त १९४७

आज की कर्मचारी मंडल की बैठक में हमने पंजाब के संकट पर विस्तार से चर्चा की । सीमा-प्रदेश की निहायत गंभीर स्थिति की रिपोर्ट भेजने के साथ ही जेनकिन्स ने सेना, हवाई फौज और पुलिस की कुमुक जल्दी भेजे जाने की मांग की है । इसके अतिरिक्त, जनसम्पर्क का विशाल काम भी माउंटबेटन के सामने है जिस पर लोगों में मनोबल और व्यवस्था कायम रखना निर्भर करता है ।

सुनने में आया है कि रेडक्लिफ आज शाम तक पंजाब सीमा-आयोग का फैसला वाइसराय को दे देंगे । उनके हिन्दू और मुसलमान सहयोगियों में प्रत्याशित असहमति के कारण रेडक्लिफ को सारे फैसले अपने ही बूते पर करना पड़े हैं । लेकिन प्रकाशन का दायित्व जरूर वाइसराय पर है । शुरू से ही माउंटबेटन ने अपने कर्मचारियों को स्पष्ट आदेश दे दिये थे कि जब-तक रेडक्लिफ मध्यस्थता के कठिन और नाजुक काम में लगे हैं, तबतक उनसे कोई सम्बन्ध न रखे जायं । वह खुद भी उनसे दूर ही रहे । इसलिए हमें ठीक-ठीक पता न था कि रेडक्लिफ ने कितनी मंजिल पार कर ली है और किस रास्ते से आगे बढ़ रहे हैं ।

फैसले के प्रकाशन के बारे में कई सुझाव आये । प्रशासनिक दृष्टि से यह तर्क दिया गया कि उसका ऐलान जल्दी होने से जेनकिन्स को मदद मिलेगी और सत्ता-हस्तांतरण के पहले सेनाएं संकट-ग्रस्त इलाकों में भेजी जा सकेंगी । दूसरा सुझाव यह था कि चूंकि इन फैसलों से अशान्ति फैलना

सुनिश्चित है, इसलिए इनके प्रकाशन की सबमें उचित तिथि १४ अगस्त होगी। माउंटबेटन ने कहा कि यदि इस बारे में उनकी कुछ भी चले तो वह इसका प्रकाशन स्वाधीनता-दिवस के समारोहों के बाद तक के लिए मुल्तवी कर देंगे। उनकी धारणा थी कि प्रकाशन के समय का प्रश्न वास्तव में मनोवैज्ञानिक है। वह नहीं चाहते कि इसके प्रकाशन से जो विवाद और विषाद पैदा होनेवाला था उससे दोनों देशों के स्वाधीनता-दिवसों का उत्साह भंग होने दिया जाय।

इस राय से मैं बिलकुल सहमत हूं। मैं तो यहां तक कहता हूं कि रैड-क्लिफ-फैसले को स्वतन्त्रता-समारोह के पहले या उसी दिन प्रकाशित करना हिन्दू, मुसलमान और सिखों को मिलने वाली स्वतन्त्रता के महत्व को ही नष्ट करना होगा। एक भारतीय की मित्रता जितनी सरलता से पाई जा सकती है, उतनी ही सरलता से खोई भी जा सकती है। उसकी आशाओं तथा उसके वातावरण के कारण उसके सुख और दुख के बीच कोई ज्यादा दूरी नहीं रहती। उसके आनन्द की शर्त यह है कि वह आनन्द अनियंत्रित हो और उसे अपने शाश्वत भयों से अस्थायी छुटकारा मिले।

आज की बैठक में इसके बारे में कोई अन्तिम निश्चय नहीं किया गया। वाइसराय के निजी सेक्रेटरी एबेल को आदेश दिया गया कि वह प्रकाशन के समय के विषय में जेनकिन्स के साथ भी चर्चा कर लें। सीमा-आयोग के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्पष्ट करने के लिए माउंटबेटन ने यह निश्चय किया कि उसकी घोषणा वाइसराय भवन की विज्ञप्ति के रूप में न की जाकर 'असाधारण गजट' के रूप में हो।

जेनकिन्स ने इस सुझाव को ठुकरा दिया है कि सिख-नेताओं को १५ अगस्त के पहले गिरफ्तार कर लिया जाय। उन्होंने माउंटबेटन को बतलाया कि उन्होंने इस विषय की चर्चा मूडी और त्रिवेदी से कर ली है और वे भी एक-मत हैं कि ऐसी कार्रवाई से परिस्थिति बिगड़ जायगी। इसलिए तीनों ने यह निश्चय किया कि कोई गिरफ्तारियां न की जायं।

: १३ :

पाक-भारत में स्वाधीनता-दिवस

सरकारी भवन, कराची,

बुधवार, १३ अगस्त १९४७

माउंटबेटन संयुक्त ब्रिटिश भारत के वाइसराय की हैसियत से अपने अंतिम कर्तव्य का पालन करने के लिए आज प्रातःकाल दिल्ली से कराची के लिए रवाना हुए। यह कर्तव्य है नये पाकिस्तानी उपनिवेश के जन्म के समय, राजा की तथा अपनी शुभ-कामनाएं व्यक्त करना।

जब हम वायुयान से उतरे तो सिंध के मनोनीत गवर्नर हिदायतउल्ला ने माउंटबेटन-दम्पति का स्वागत किया। फोटोग्राफरों का समुदाय भी बदस्तूर मौजूद था। सरकारी भवन को जाते समय जिन्ना के सैनिक सेक्रेटरी कर्नल बर्नी ने माउंटबेटन से कहा कि उन्हें कल के जुलूस में जिन्ना के ऊपर बम फेंकने के एक षड्यंत्र की सूचना मिली है। इसलिए विचार यह चल रहा है कि जुलूस ही रद्द कर दिया जाय या सिर्फ रास्ता बदला जाय। जिन्ना ने यह विचार व्यक्त किया है कि यदि माउंटबेटन जुलूस में रहने को तैयार हैं, तो मैं भी तैयार हूं। माउंटबेटन तुरन्त सहमत हो गए कि कार्यक्रम में कोई परिवर्तन न किया जाय।

जिन्ना और मिस जिन्ना बड़े कमरे के प्रवेश-द्वार पर माउंटबेटन-दम्पति की प्रतीक्षा कर रहे थे। कमरा हालीवुड में फिल्म लेने के सेट की भांति सजा हुआ था। चारों को बड़े-बड़े लैंपों के चौंधिया देनेवाले प्रकाश और झुलसा देनेवाली गर्मी के नीचे खड़े रह कर बारबार फोटो खिंचवाने की अग्नि-परीक्षा देनी पड़ी।

मैंने पैलेस होटल में सरकारी सूचना अधिकारी कर्नल मलिक से सम्पर्क स्थापित किया और कुछ विदेशी संवाददाताओं से भेंट की, जो कराची

के अबतक के आयोजनों के कड़े आलोचक थे। कुछ का कहन या कि जिन्ना ने माउंटबेटन के स्वागत के लिए हवाई अड्डे पर उपस्थित न रह कर उनका अपमान किया है। परन्तु मैंने तुरन्त कहा कि माउंटबेटन यह नहीं मानते कि शिष्टाचार का कोई अभाव रहा है या उसका कोई उल्लंघन हुआ है।

उन्होंने बतलाया कि कल संविधान-सभा की बैठक में जिन्ना के प्रति पूर्ण दासता की भावना का वातावरण था। प्रत्येक व्यक्ति कायदे-आज़म के सामने ज़बानी आत्म-समर्पण करने में एक-दूसरे से होड़ लगाये हुआ था।

मेरी उत्सुक पूछताछ के उत्तर में मलिक ने बताया कि आज रात के भोज में जिन्ना प्रकाशन के लिए कोई निश्चित भाषण करने का विचार नहीं कर रहे हैं। इसकी सूचना मैंने माउंटबेटन को दे दी। परन्तु मेरे आश्चर्य की सीमा न रही जब भोज के अंत में मैंने देखा कि जिन्ना बड़े आदमियों के उस समुदाय में, जिसमें न केवल पाकिस्तान के प्रमुख लोग वरन् कूटनीतिक मंडलों के सदस्य भी उपस्थित थे, खड़े हुए और अपना चश्मा संवार कर कृत्रिम-स्वर में एक लिखित-भाषण पढ़ने लगे। वह भाषण भारी राजनैतिक महत्व का निकला, क्योंकि उसमें ब्रिटेन के साथ पाकिस्तान के भावी-संबंधों के बारे में आत्मीयतापूर्ण विचार प्रकट किये गए थे और पाकिस्तान के निर्माण में माउंटबेटन के योग की चर्चा की गई थी।

यदि माउंटबेटन को इस प्रकार अचानक भाषण के व्यूह में फंसने के कारण कोई घबराहट हुई हो तो उन्होंने उसे व्यक्त नहीं होने दिया। उन्होंने ऐसा सुन्दर भाषण दिया कि जिन्ना के लिखित-भाषण को भी मात कर दिया। दो मिनट तक उपयुक्त शब्दों और वाक्यों की अटूट धारा उनके मुख से प्रवाहित होती रही। कथाएं कहने की उनमें विलक्षण योग्यता है। और उनके अनौपचारिक निशाने पर चोट करने वाले उनके भाषण, भोज के बाद दिये जाने वाले भाषणों का आदर्श उपस्थित करते हैं।

भोज के बाद हम एक भारी सत्कार-सभा में शामिल हुए। उस-में हलके पेय तथा संगीत का कार्यक्रम था। सब परिस्थितियों का खयाल रखते हुए यह सत्कार सफल रहा। आज के मेजबान और मुख्य व्यक्ति के

रूप में जिन्ना अकेले-अकेले और कुछ अलग-अलग लगे। संभवतः इसीसे वातावरण कुछ दबा-दबा-सा था। अपने रुपहले बालों और बेदाग सफेद अचकन में वह सबके ऊपर छाये नजर आते थे और बहुत ही कम बातें करते दीख पड़ते थे। लोग भी उनसे आत्मीयता जताने का साहस नहीं करते। 'बेतार' से नेतृत्व करने की क्षमता की वह साक्षात प्रतिमा थे। । मैंने कभी कल्पना नहीं की थी कि किसी देश का निर्माता अपनी सफलता के सर्वोच्च क्षण में अपने अनुयायियों से इतनी दूर भाग सकेगा। उन्हें अकेला पाकर मैंने कुछ क्षणों तक उनसे बात की। मैंने उन्हें बधाई देने के लिए उपयुक्त शब्द खोजने का प्रयत्न किया, परन्तु उनकी ध्यानावस्थित अवस्था से सहम कर मेरे शब्द मुरझा गए।

सरकारी भवन, कराची और सरकारी भवन, नई दिल्ली,
बृहस्पतिवार-शुक्रवार, १४-१५ अगस्त १९४७

विधान-सभा में होनेवाले समारोह में भाग लेने के लिए हम काफी तड़के उठ गए। जुलूस के लिए निश्चित रास्ते से होता हुआ मैं जिन्ना और माउंटबेटन के आध घंटे पहले वहां पहुंच गया। जनता का उत्साह और भीड़ मेरी आशा से बहुत कम थी। यहां का उत्साह उससे अधिक नहीं था जो संसद के वार्षिक उद्घाटनों के अवसर पर हुआ करता है। लेकिन अर्द्ध-चन्द्राकार और गोल गुम्बद की शक्ल वाले विधान-सभा-भवन के सामने के मैदान की इंच-इंच जगह ठसाठस भरी हुई थी। माउंटबेटन-दम्पति को भी वही स्वागत-सत्कार मिला, जो उनसे कुछ पहले आनेवाले जिन्ना को मिला था। माउंटबेटन और जिन्ना के भाषणों का मुख्य स्वर सौहार्द का था और उपस्थित सदस्यों की प्रतिक्रिया भी सौहार्द-पूर्ण थी। प्राथमिकता का प्रश्न अपने-आप हल हो गया। जैसे ही जिन्ना भाषण देकर बैठने लगे लेडी माउंटबेटन ने स्नेह से कुमारी जिन्ना का हाथ दबाया।

अगर जिन्ना का व्यक्तित्व भावनाहीन और एकाकी था तो उसमें

एक चुम्बकीय गुण भी था। उनमें नेतृत्व की ऐसी शक्ति थी जिसके आगे लोगों के घुटने टिक जाते थे। वैधानिक गवर्नर-जनरल होने का वह बहुत उथला और ऊपरी दिखावा करते थे, और इस पद के लिए स्वयं अपना नाम सुझाने के बाद उन्होंने जो पहला काम किया वह था १९३५ के विधान के भाग दो की बजाय नवीं अनुसूची के अनुसार विशेषधिकार ग्रहण करने की घोषणा करना। इससे ऐसे तानाशाही अधिकार उनके हाथ में आ गए जो बादशाह का प्रतिनिधित्व करने वाले वैधानिक गवर्नर-जनरल को शायद ही पहले कभी मिले हों। पाकिस्तान के बादशाह, धर्मगुरु, स्पीकर और प्रधान-मंत्री—इन सबके अधिकार शक्तिशाली कायदे-आजम में निहित हैं।

यह कार्यवाही घंटे भर में खत्म हो गई और जिन्ना तथा माउंटबेटन साथ-साथ जुलूस के साथ लौट पड़े। इस बार भी पाकिस्तानी नौसेना के चन्द खुशमिजाज जवानों और बच्चों के आम उत्साह को छोड़कर जन-समूह का उत्साह हार्दिक कम था, दिखावटी ज्यादा। जैसे ही सवारी सर-कारी भवन के दरवाजे में प्रवेश करने लगी, जिन्ना ने बड़ी भावुकता के साथ माउंटबेटन के घुटने पर हाथ रखते हुए कहा, "खुदा का शुक्र है कि मैं आप-को हिफाजत से वापस ले आया हूं।" दोपहर तक माउंटबेटन-दम्पति ने बिदाई की रस्में पूरी कर लीं। मिस जिन्ना ने लेडी माउंटबेटन को गले लगाया और जिन्ना ने, जिनकी भावुकता अभी चुकी नहीं थी, अपनी शाश्वत दोस्ती और एहसानमंदी के इजहार किये। अब वह दिल्ली के विशाल समा-रोहों में भाग लेने के लिए हवाई जहाज से रवाना हुए। जब हम पंजाब के सीमा-प्रदेश के ऊपर से गुजरे तो हमने मनहूसियत की प्रतीक कई विशाल आगों को आसपास के मैदान पर भी मीलों तक फैले देखा।

दिल्ली पहुंचते ही मैं प्रचार-व्यवस्था के तूफान में फंस गया। मुझे समय की चुस्त पाबंदी और उलझे कार्यक्रम की समस्याओं से निबटना था, फोटोग्राफरों और फिल्में लेने वालों के साथ रिहर्सल करने थे, सूचना मंत्रालय के साथ विचार-विमर्ष करना था, प्रचार-सामग्री बांटनी थी, दिल्ली

के एक सौ बीस भारतीय और विदेशी पत्रकारों को निमंत्रण देने थे और उनकी पूछताछ के उत्तर देने थे। रात की आखिरी घड़ी तक माउंटबेटन और उनके कर्मचारी अपने काम में जुटे रहे। अपना डेरा-डन्डा उठाने के काम में वाइसराय का अमला आखिरी क्षण तक पूरे वेग से व्यस्त था।

जैसे ही आधी रात का समय होने को हुआ और वाइसराय की ओर से सेक्रेटरी आव् स्टेट के नाम अन्तिम तार का मसविदा तैयार कर भेजा गया, मैंने अपने-आप को माउंटबेटन के साथ उनके अध्ययन-कक्ष में अकेला पाया। नये कानून के लागू होते ही तुरन्त सर्वशक्ति-सम्पन्नता का अधिकार ग्रहण किया जा सके इसलिए विधान-सभा का अधिवेशन चौदह तारीख की आधी रात को आयोजित किया गया था। स्वाधीनता की घोषणा, और माउंटबेटन से पहले वैधानिक गवर्नर-जनरल के रूप में पद संभालने का प्रस्ताव पास होते ही डा. राजेन्द्रप्रसाद और नेहरू माउंटबेटन से मिलने आयंगे और औपचारिक रूप से उन्हें न्योता देंगे। उम्मीद है कि पौन बजे के लगभग उनका आना होगा।

जब आधी रात में घड़ी ने टन किया उस समय माउंटबेटन बहुत चुपचाप बैठे हुए थे। मैं उन्हें करीब-करीब हर प्रकार की मनःस्थिति में देख चुका हूं। कह सकता हूं कि आज रात वह निहायत शान्त और निर्लिप्त थे। उनकी व्यक्तिगत सफलता इतनी महान थी कि उसे खुशी दिखाकर व्यक्त नहीं किया जा सकता था, बल्कि इस नाटकीय घड़ी में, जब नये और पुराने का मिलन उनमें साकार होने को था, उनके इतिहास-विषयक ज्ञान और विवेक ने उनमें भारी धीरज भर दिया था।

धीरे-धीरे उन्होंने अपना चश्मा उतारा, कागज-पत्र रखने के सन्दूकों को बन्द किया और वाइसराय की सक्रियता के चिह्नों को हटाकर सफाई करने में मेरी मदद चाही। हालांकि बाहर नौकरों की पल्टन-की-पल्टन मौजूद थी, उनकी मदद लेने का खयाल हम दोनों में से किसी के भी दिमाग में नहीं आया। जब सारे कागज करीने से लगा दिये गए और उनकी मेज साफ हो गई तब उन्हें बुलाकर कुछ भारी फर्नीचर इधर-

उधर सरकाया गया, जिससे पत्रकारों के लिए जगह हो जाय।

विधान-सभा के समारोह में उपस्थित पत्रकारों का आना शुरू हो गया। उन्होंने बतलाया कि अपार भीड़ मार्ग पर खड़ी हुई है और इसीसे नेहरू और राजेंद्रप्रसाद बाबू को जरा देर हो गई है। विधान-सभा की कार्यवाही बहुत ही शानदार रही थी। बड़े भावुकता पूर्ण ढंग से नेहरू ने कहा, "बहुत साल बीते हमने तकदीर के साथ एक बाजी बदी थी। और आज वह दिन आया है जब हम उस प्रण को पूरा करेंगे—पूर्णता के साथ तो नहीं, लेकिन काफी हद तक। आधी रात के समय, जब दुनिया सो रही है, हमारा भारत जीवन और स्वाधीनता के नव-जागरण में प्रवेश कर रहा है।"

विशाल जन-समूह की हर्ष-ध्वनि को पार कर थके लेकिन प्रसन्न राजेन्द्रप्रसाद और नेहरू ने प्रवेश किया। आगे जो हुआ उसमें दोस्ती की भावना ने औपचारिकता के सारे बंधनों को तोड़ दिया। पत्र-सम्वाददाता घेरा बनाये खड़े थे और फोटोग्राफर मेज के पास मौजूद थे। हालांकि नेहरू ने सम्वाददाताओं की उपस्थिति की स्वीकृति दी थी, लेकिन मेरा खयाल है कि वह यह बात भूल गए थे। चाहे इस उपस्थिति के कारण हो, चाहे विधान-सभा की ऐतिहासिक घटनाओं के कारण, वे दोनों कर्तव्य-विमूढ़ खड़े थे।

आखिर, माउंटबेटन और राजेंद्रप्रसाद बाबू आमने-सामने आ खड़े हुए और नेहरू उनके बीच माउंटबेटन की मेज पर आ बैठे। राजेंद्रबाबू औपचारिक निमंत्रण देने लगे। लेकिन वह कहने वाले शब्दों को भूल गए और नेहरू उन्हें ठीक शब्द याद दिलाने लगे। दोनों ने मिलकर बतलाया कि विधान-सभा ने अधिकार संभाल लिये हैं और नेताओं की यह विनय मान ली है कि माउंटबेटन भारत के नये गवर्नर-जनरल बनें। इस सन्देश के उत्तर में माउंटबेटन ने मुसकराते हुए कहा, "इस सम्मान को मैं अपना गौरव मानता हूं। आपकी सलाह पर वैधानिक ढंग से अमल करने की पूरी कोशिश करूंगा।"

यह होते ही नेहरू ने एक बड़ा-सा लिफाफा, जिस पर सुन्दर अक्षर

लिखे हुए थे, माउंटबेटन को देते हुए बड़े शिष्टाचार के साथ कहा, "नये मंत्रिमंडल की सूची सेवा में प्रस्तुत करने की अनुमति दीजिये।" सारा समारोह दस मिनट के अन्दर पूरा हो गया। लेकिन इस उत्सव में विशाल समारोहों और परेडों की अपेक्षा कहीं अधिक इन्सानियत और आशा भरी हुई थी।

मैं फिर माउंटबेटन के साथ अकेला रह गया। अपनी उत्सुकता शान्त करने और अपनी सरकार के नये मन्त्रियों के नाम याद करने के लिए उन्होंने बड़े लिफाफे को खोला। लेकिन अपने प्रधान-मंत्री द्वारा तैयार की हुई सूची आज देखना उनकी तकदीर में नहीं बदा था। दैवयोग से नेहरूजी का दिया लिफाफा बिलकुल खाली था।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
शुक्रवार, १५ अगस्त १९४७

आज से अधिक व्यस्त और स्मरणीय दिन शायद ही मुझे फिर देखने को मिले।

जिन तुरहियों और लाल-सुनहरी सजावटों के बीच बीस गवर्नर-जनरल पद ग्रहण कर चुके थे, उन्हींके बीच आज सवेरे ८-३० बजे दरबार हाल में स्वतन्त्र भारत के पहले गवर्नर-नजरल के रूप में लार्ड माउंटबेटन के प्रवेश की घोषणा हुई। इस समारोह की खासियत यह नहीं थी कि वह माउंटबेटन के वाइसराय-पद पर आसीन होने के समारोह से किसी प्रकार भिन्न था, बल्कि खासियत यह थी कि आज का समारोह हर बात में मार्च के समारोह से मिलता-जुलता था। फरक अगर था तो इतना ही कि गवर्नर-जनरल को शपथ दिलाने का काम एक भारतीय न्यायाधीश, डा० कानिया के जिम्मे था और नये उपनिवेश के मंत्रियों को शपथ दिलाई गृह-विभाग के एक भारतीय सेक्रेटरी ने। एक बार फिर सुनहरे सिंहासन पर लगे कीमती लाल मखमल के चंदोबे छिपी हुई रोशनियों से जगमगा उठे। कालीन

सुनहरे काम से चमचमा रहे थे और लेडी माउंटबेटन अपनी सुनहरी पोशाक में इस समारोह की रौनक बढ़ा रही थीं।

लार्ड और लेडी माउंटबेटन सिंहासनों पर मुश्किल से बैठे ही होंगे कि किसी फोटोग्राफर के 'फ्लैश बल्ब' के धड़ाके से सारा दरबार हाल गूंज उठा। बम की इस हू-ब-हू नकल से चिंता की एक क्षणिक लहर दौड़ गई। माउंटबेटन-दम्पति पर तेज रोशनियां पड़ रही थीं, फिर भी उन्होंने चेहरे से ऐसा नहीं लगने दिया कि बल्ब की चमक या उसके धड़ाके की आवाज उनके कानों तक पहुंची होगी। समारोह समाप्त होने के समय दरबार हाल के विशाल दरवाजे खोल दिये गए। पहले 'गाड सेव दि किंग' और फिर 'जन गण मन' की धुनें बजीं, जो पुराने और नये युग को जोड़ने वाली कड़ी की प्रतीक थीं।

कुछ ही पलों में सारे संभ्रान्त दर्शक वहां से लुप्त हो गए और वे कौंसिल-भवन को घेरे खड़ी अपार भीड़ में खो गए। माउंटबेटन की राजकीय सवारी सरकारी भवन (जिसे कल तक वाइसराय भवन कहते थे) के मुख्य दरवाजों से निकल कर सरकारी सचिवालय भवनों के बीच से ढलवां मार्ग पर बढ़ना शुरू हुई थी, कि भारी भीड़ ने उसे रोक लिया और विशाल तथा प्रसन्न जनसमूह ने उनकी बग्घी को मानो हाथों में उठा लिया।

इससे पहले कि भीड़ का दबाव जोर पकड़े, मैं फुर्ती से सरकारी भवन के एक बगल के रास्ते से चलकर कौंसिल-भवन में जा पहुंचा। किन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता था कौंसिल-भवन के विशाल दरवाजों से सरकारी अतिथियों को अन्दर आने देना कठिन होता जाता था। उनके अन्दर आने के साथ ही जोरों से 'जय हिन्द' चिल्लाने वाले नागरिकों का एक रेला भी अन्दर घुस आता। कुछ देर म ही विशाल गोलाकार कौंसिल भवन ने फौजी घेरे में पड़े एक किले का रूप धारण कर लिया। किसी को सुझाई न देता था कि जब माउंटबेटन दरवाजे पर पहुंचेंगे तो गाड़ी से उतर कर उनके अन्दर आने के लिए रास्ता कैसे किया जायगा। काफी देर तक

स्थिति बड़ी खराब रही। लगभग ढाई लाख जनसमूह बलात अन्दर घुसने की जीतोड़ कोशिश करने लगा। जनता को शांत करने के लिए नेहरू तथा अन्य बड़े नेताओं को बाहर बुलाना पड़ा। नेताओं की उपस्थिति ने पहले तो जनता की उत्तेजना को और भड़काने का काम किया लेकिन बावजूद इसके कि भारी भीड़ उनसे हाथ मिलाने के लिए धक्कामुक्की करती हुई आगे पिली पड़ रही थी, जैसे-तैसे माउंटबेटन-दम्पति को अन्दर पहुंचा दिया गया। उनके पदक और राजचिह्न बिल्कुल ज्यों-के-त्यों थे।

भवन के अन्दर भी उत्साह और आगे होने वाली घटनाओं के प्रति प्रतीक्षा की भावना बाहर-जैसी ही थी, लेकिन इतनी संयत अवश्य थी कि औपचारिक समारोह संपन्न हो सके। डा. राजेंद्रप्रसाद ने कार्रवाई का आरम्भ दुनियाभर से आये हुए बधाई संदेशों को पढ़कर सुनाने से किया। किन्तु किसी चूक के कारण, जिसकी तुलना कल रात के खाली लिफाफे की घटना से की जा सकती है, वह राष्ट्रपति ट्रूमैन का संदेश पढ़ना भूल गए। यह त्रुटि वह तभी सुधार सके जब अमरीकी राजदूत डा. ग्रेडी ने जोर से फुसफसा कर उसकी याद दिलाई। हमेशा की तरह फोटोग्राफरों के बल्बों के धमाकों के बीच माउंटबेटन भाषण देने के लिए खड़े हुए। उन्होंने सबसे पहले राजा जार्ज षष्ठ का संदेश पढ़कर सुनाया, जिसका हृदय से स्वागत किया गया। इसके बाद उन्होंने जो भाषण दिया उसमें उनके लिखित भाषणों की अपेक्षा कहीं अधिक जोश और बल था। हालांकि शब्दों का चुनाव बड़ी सावधानी से किया गया था, किन्तु उनमें जो सच्चाई व हार्दिकता निहित थी वह भरी सभा की सहानुभूति और प्रशंसा प्राप्त करने में सफल हुई। उनके भाषण में रियासतों के संघ-प्रवेश की नीति की सफलता, नेहरू और पटेल के नेतृत्व के उल्लेख, तथा उनके इस अनुरोध पर कि "मुझे आप अपना ही समझें" बड़ी हर्ष ध्वनि की गई। किन्तु गांधीजी के प्रति उनके उद्गारों पर सबसे अधिक तालियां पीटी गईं और काफी देर तक उन्हें रुके रहना पड़ा।

इसके बाद डा. राजेंद्रप्रसाद ने एक लम्बा भाषण दिया—पहले हिंदी और फिर अंग्रेजी में। दोनों ही भाषण सुनाई नहीं पड़ते थे। कांग्रेस के बुजुर्ग नेताओं में डा. प्रसाद नम्र विचारों और स्वभाव वाले व्यक्ति माने जाते हैं। वह न कभी उत्तेजित होते हैं, न अतिशयोक्ति करते हैं। आज उन्होंने अपना दिल खोलकर रख दिया। उन्होंने कहा, "आइये, हम कृतज्ञता के साथ स्वीकार करें कि, हालांकि हमारी सफलता का काफी श्रेय हमारे बलिदानों और त्यागों को हैं, लेकिन वह विश्व की घटनाओं और स्थिति का भी परिणाम है। ब्रिटिश जाति की ऐतिहासिक परम्पराओं और जनतांत्रिक आदर्शों का भी उसमें कम हाथ नहीं है।" उस जाति के प्रतिनिधि के रूप में माउंटबेटन को श्रद्धांजलि देने के बाद उन्होंने कहा, "भारत के ऊपर ब्रिटिश सत्ता का आज अन्त हो रहा है और भविष्य में ब्रिटेन के साथ हमारे संबंध समानता, आपसी सद्भाव और पारस्परिक लाभ के आधार पर आधारित होंगे।"

भाषणों के बाद विधान-सभा-भवन के ऊपर राष्ट्रीय झंडा फहराया गया और ३१ तोपों की सलामी दागी गई। आज दिन में जो अनेकों तूफानी सवारियां निकलने वाली थीं, उनमें माउंटबेटन के वापिस लौटने की सवारी का नम्बर केवल दूसरा था। सरकारी भवन तक का सारा रास्ता 'जय हिन्द' और "माउंटबेटन की जय" के नारों से गूंज रहा था। कहीं-कहीं "पंडित माउंटबेटन की जय" का घोष भी कानों में पड़ जाता था!

दोपहर के खाने के बाद हमारी मोटरों का काफिला रोशनआरा-बाग की ओर चला, जहां पहुंच कर भीषण गर्मी में माउंटबेटन-दम्पति पांच हजार स्कूली छात्रों की भीड़ में घुलमिल गए। यहां अनेकों प्रकार के खेल-तमाशों का आयोजन था। इनमें से कुछ ने मनोरंजन किया, कुछ ने चकित और कुछ ने डरा दिया। एक फकीर को सांप का फन खाते हुए देखकर और गर्मी तथा कोलाहल के मारे बेचारी पमेला की तो जान ही निकल गई। फिर भी पमेला और उसके माता-पिता बड़े

स्थिति बड़ी खराब रही। लगभग ढाई लाख जनसमूह बलात अन्दर घुसने की जीतोड़ कोशिश करने लगा। जनता को शांत करने के लिए नेहरू तथा अन्य बड़े नेताओं को बाहर बुलाना पड़ा। नेताओं की उपस्थिति ने पहले तो जनता की उत्तेजना को और भड़काने का काम किया लेकिन बावजूद इसके कि भारी भीड़ उनसे हाथ मिलाने के लिए धक्कामुक्की करती हुई आगे पिली पड़ रही थी, जैसे-तैसे माउंटबेटन-दम्पति को अन्दर पहुंचा दिया गया। उनके पदक और राजचिह्न बिल्कुल ज्यों-के-त्यों थे।

भवन के अन्दर भी उत्साह और आगे होने वाली घटनाओं के प्रति प्रतीक्षा की भावना बाहर-जैसी ही थी, लेकिन इतनी संयत अवश्य थी कि औपचारिक समारोह संपन्न हो सके। डा. राजेंद्रप्रसाद ने कार्रवाई का आरम्भ दुनियाभर से आये हुए बधाई संदेशों को पढ़कर सुनाने से किया। किन्तु किसी चूक के कारण, जिसकी तुलना कल रात के खाली लिफाफे की घटना से की जा सकती है, वह राष्ट्रपति ट्रूमैन का संदेश पढ़ना भूल गए। यह त्रुटि वह तभी सुधार सके जब अमरीकी राजदूत डा. ग्रेडी ने जोर से फुसफसा कर उसकी याद दिलाई। हमेशा की तरह फोटोग्राफरों के बल्बों के धमाकों के बीच माउंटबेटन भाषण देने के लिए खड़े हुए। उन्होंने सबसे पहले राजा जार्ज षष्ठ का संदेश पढ़कर सुनाया, जिसका हृदय से स्वागत किया गया। इसके बाद उन्होंने जो भाषण दिया उसमें उनके लिखित भाषणों की अपेक्षा कहीं अधिक जोश और बल था। हालांकि शब्दों का चुनाव बड़ी सावधानी से किया गया था, किन्तु उनमें जो सच्चाई व हार्दिकता निहित थी वह भरी सभा की सहानुभूति और प्रशंसा प्राप्त करने में सफल हुई। उनके भाषण में रियासतों के संघ-प्रवेश की नीति की सफलता, नेहरू और पटेल के नेतृत्व के उल्लेख, तथा उनके इस अनुरोध पर कि "मुझे आप अपना ही समझें" बड़ी हर्ष ध्वनि की गई। किन्तु गांधीजी के प्रति उनके उद्गारों पर सबसे अधिक तालियां पीटी गईं और काफी देर तक उन्हें रुके रहना पड़ा।

इसके बाद डा. राजेंद्रप्रसाद ने एक लम्बा भाषण दिया—पहले हिंदी और फिर अंग्रेजी में। दोनों ही भाषण सुनाई नहीं पड़ते थे। कांग्रेस के बुजुर्ग नेताओं में डा. प्रसाद नम्र विचारों और स्वभाव वाले व्यक्ति माने जाते हैं। वह न कभी उत्तेजित होते हैं, न अतिशयोक्ति करते हैं। आज उन्होंने अपना दिल खोलकर रख दिया। उन्होंने कहा, "आइये, हम कृतज्ञता के साथ स्वीकार करें कि, हालांकि हमारी सफलता का काफी श्रेय हमारे बलिदानों और त्यागों को हैं, लेकिन वह विश्व की घटनाओं और स्थिति का भी परिणाम है। ब्रिटिश जाति की ऐतिहासिक परम्पराओं और जनतांत्रिक आदर्शों का भी उसमें कम हाथ नहीं है।" उस जाति के प्रतिनिधि के रूप में माउंटबेटन को श्रद्धांजलि देने के बाद उन्होंने कहा, "भारत के ऊपर ब्रिटिश सत्ता का आज अन्त हो रहा है और भविष्य में ब्रिटेन के साथ हमारे संबंध समानता, आपसी सद्भाव और पारस्परिक लाभ के आधार पर आधारित होंगे।"

भाषणों के बाद विधान-सभा-भवन के ऊपर राष्ट्रीय झंडा फ़हराया गया और ३१ तोपों की सलामी दागी गई। आज दिन में जो अनेकों तूफानी सवारियां निकलने वाली थीं, उनमें माउंटबेटन के वापिस लौटने की सवारी का नम्बर केवल दूसरा था। सरकारी भवन तक का सारा रास्ता 'जय हिन्द' और "माउंटबेटन की जय" के नारों से गूंज रहा था। कहीं-कहीं "पंडित माउंटबेटन की जय" का घोष भी कानों में पड़ जाता था!

दोपहर के खाने के बाद हमारी मोटरों का काफिला रोशनआरा-बाग की ओर चला, जहां पहुंच कर भीषण गर्मी में माउंटबेटन-दम्पति पांच हजार स्कूली छात्रों की भीड़ में घुलमिल गए। यहां अनेकों प्रकार के खेल-तमाशों का आयोजन था। इनमें से कुछ ने मनोरंजन किया, कुछ ने चकित और कुछ ने डरा दिया। एक फकीर को सांप का फन खाते हुए देखकर और गर्मी तथा कोलाहल के मारे बेचारी पमेला की तो जान ही निकल गई। फिर भी पमेला और उसके माता-पिता बड़े

साहस और सद्भाव के साथ समारोह में भाग लेते रहे ।

पुरानी भारतीय परम्परा के अनुसार जाने के पहले माउंटबेटन ने जो आखिरी काम किया वह था बच्चों में मिठाई बांटना ।

सरकारी भवन लौटकर माउंटबेटन-दम्पति को मुश्किल से इतना समय मिल पाया कि आज के सब-से-बड़े सार्वजनिक समारोह में भाग लेने के लिए वे कपड़े बदल सकें। यह समारोह था प्रिंसेज पार्क के निकट युद्ध-स्मारक पर राष्ट्रीय झंडा फहराना। वहां जाकर देखा तो तीन लाख के लगभग जनता एकत्र थी जब कि समारोह के आयोजकों ने कुल ३० हजार के करीब जन-समुदाय के लिए प्रबंध किया था । नतीजा यह हुआ कि कोई व्यवस्था न रही और भीड़ बेकाबू हो गई। जन-समुदाय ने सब कुर्सियों पर अधिकार कर लिया था और एक-एक कुर्सी पर कुछ लोग आ खड़े हुए।

जन-समुदाय के इस विशाल भंवर में बड़े छोटे, काले-गोरे, स्त्री-पुरुष तथा नाना जातियों के व्यक्ति मिल कर एकाकार हो गए थे। हजारों लोगों की एक मात्र इच्छा यही थी कि जहां झंडा फहराया जाने वाला था उस केन्द्रीय मंचतक पहुंच जायं। दरअसल भीड़ ने एक विशाल महासागर का रूप धारण कर लिया था जो चारों ओर से एक छोटे से द्वीप को घेरने के लिए आगे बढ़ा चला जा रहा था, और यह खतरा था कि किसी भी क्षण वह उस द्वीप को निगल जायगा । स्वयं नेहरू बड़ी मुश्किल से केन्द्रीय मंच पर पहुंच पाए और जब उन्होंने देखा कि पमेला भीड़ में फंस गई है तो लपके और धक्का-मुक्की करते इसके सिर की टोपी उतार कर उसके सिर पर रखते हुए, पमेला को निकाल लाये। एक व्याकुल ए. डी. सी. घबराया कि कहीं दंगा न हो जाय । किन्तु उसने इस विशाल जन-समुदाय की मस्त और प्रसन्न-मुद्रा को नहीं पहचाना था ।

जहां मैं खड़ा था, वहीं एक सूरमा साईकिल चलाने का असंभव प्रयत्न कर रहा था। ऐसा लगता था कि अपनी मंजिल तक पहुंचने के पहले

ही वह भीड़ में आ फंसा था। नतीजा यह हुआ कि वह न आगे बढ़ सकता था और न साइकिल से उतर सकता। फे, मार्जोरी, ब्रॉकमेन तथा पमेला निकोल्स भी बीच में फंस गए थे, लेकिन खुश भीड़ चिल्ला रही थी, "मेम-साहबों के लिए रास्ता छोड़ दो!" फे आखिर बी. बी. सी.[1] की गाड़ी पर पहुंच गए, जहां से विन्फोर्ड वागां टॉमस विदेशों के लिए एक अत्यन्त विस्तृत और शानदार ब्राडकास्ट कर रहे थे। उन्होंने बाद में मुझे बताया कि इससे बड़ी भीड़ उन्होंने जीवन में नहीं देखी।

सहसा हर्ष-ध्वनि ने गरज का रूप ले लिया। जहां मैं खड़ा था वहां से सफेदपोश ए. डी. सी. की एक झलक दिखलाई दी। उसके पीछे गवर्नर-जनरल के अंगरक्षकों के भालों के ऊपर फहरते झंडों की झलक, फिर गवर्नर-जनरल की गाड़ी और फिर अंगरक्षक। गाड़ी और अंगरक्षक रुकते-चलते किसी प्रकार केन्द्रीय मंच के पच्चीस गज पास तक पहुंच गए। मैंने माउंटबेटन को खड़े होकर जन-समूह का अभिनंदन करते देखा जो हर्ष-ध्वनि करती हुई उनकी ओर हाथ हिला रही थी। लोगों को शांत करने और थोड़ी जगह साफ करने के लिए नेहरू ने आखिरी बार कोशिश कर देखी लेकिन जब उनकी आरजू-मिन्नत का कोई फल नहीं हुआ तो इसके सिवा कोई चारा ही न रहा कि माउंटबेटन गाड़ी में ही खड़े रहें और झंडा फहराये जाने पर वहीं से सलामी लें।

झंडे के फहराये जाते ही बूंदा-बांदी होने लगी और इन्द्रधनुष आकाश के आरपार तन गया। लगता था मानो झंडे के केसरिया, सफेद और हरे रंगों से होड़ कर रहा हो। अगर हालीवुड ने यह दृश्य अपनी किसी फिल्म में दिखाया होता तो हम सब यही शिकायत करते कि यह अति-रंजना है, लेकिन यह दृश्य निहायत स्वाभाविक था। मानना पड़ेगा कि जिस व्यक्ति का दिल लोहे का बना हुआ हो वही ऐसे शुभ-अवसर पर प्रकट हुए इस शुभ-शकुन से प्रभावित हुए बिना रह सकता था।

---

१. ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कार्पोरेशन—ब्रिटेन का रेडियो संगठन।

माउंटबेटन की सवारी की सरकारी भवन को वापिसी दोस्ती-भरी अनौपचारिकता की अन्तिम विजय थी। नेहरू अपनी मोटर तक पहुंचने में असफल रहे थे, इसलिए माउंटबेटन ने उन्हें भी अपनी बग्घी में खींच लिया, और वह गाड़ी के 'हुड' पर बैठ गए। रास्ते में चार औरतों, एक बच्चे और गड़ी के पहियों के नीचे दबते एक फोटोग्राफर को भी माउंटबेटन ने अपने साथ ले लिया, जिससे गाड़ी में बैठे लोगों की संख्या बारह तक पहुंच गई। कर्ज़न और उनके दरबार की यह पुनरावृत्ति थी !

फिर, आज के इस ऐतिहासिक दिन के उपसंहार स्वरूप हम सरकारी भोज में भाग लेने सरकारी भवन पहुंचे। मंत्रिमंडल के सदस्य, कूटनीतिज्ञ लोग और बड़े-बड़े सैनिक तथा असैनिक नेता भोज में उपस्थित थे। गैरहाजिरों में खास थे वे एक-दो राजे-महाराज़े, जो नई सरकार के सदस्यों के सामने उचित प्राथमिकता न मिलने के भय से हाजिर नहीं हुए थे। जब नेहरू ने खड़े होकर ब्रिटिश राजा के स्वास्थ्य की कामना की और उसके उत्तर में माउंटबेटन ने औपनिवेशिक सरकार की शुभकामना की तो समारोह अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया। इन दोनों के भाषण बिलकुल अलिखित थे और केवल उपस्थित लोगों के कानों के लिए थे। इसलिए उनमें वह संजीदगी नहीं थी जो विश्वव्यापक प्रचार के विचार से भाषणों में आ जाया करती है।

नेहरू ने कहा, "आप लोगों ने देखा होगा कि कितने उत्साह से दिल्ली की जनता ने आज का दिन मनाया है। कोई शक नहीं कि सारे भारत में ऐसे ही दृश्य दिखलाई पड़े होंगे। दो देशों के बीच पैदा होने वाले संबंधों में राजनीति और अर्थ का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान होता है। लेकिन भारत की जनता के साथ व्यवहार करने में मैं मनोवैज्ञानिक और भावना-संबंधी पक्षों के महत्व की ओर ध्यान खींचना चाहता हूं। जो लोग दिल्ली में अपने दफ्तरों में बैठे हुए राजनैतिक समस्याओं और आर्थिक योजना पर विचार किया करते हैं, उनका देश के साथ वास्तविक संपर्क नहीं होता है। इस बारे में अनेक मत हो सकते हैं कि ब्रिटेन के साथ

अपने अतीत संबंधों से भारत को फायदा हुआ या नहीं। लेकिन यह सोचना सरासर गलत होगा कि आजादी की जद्दो-जहद करने वाली जनता पर किसी बड़े राष्ट्र को अपना आधिपत्य जमाये रखना चाहिए। चूंकि अब हिन्दुस्तान आजाद है, इसलिए जनता खुश ही नहीं, बल्कि अंग्रेजों के प्रति उसके रुख में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गया है।"

माउंटबेटन को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उन्होंने कहा कि माउंटबेटन को आते ही यह समझने में देर नहीं लगी थी कि ब्रिटिश सरकार की नीति का पालन करने के लिए फुर्ती से काम करने और भारत की ओर ठीक मनोवैज्ञानिक रुख अपनाना कितना अहम है। भारत और ब्रिटेन के संबंध भविष्य में चाहे जैसा रूप धारण करलें, लेकिन एक नई शुरूआत तो हो गई है। उन्होंने आशा प्रकट की कि उनके बीच मैत्री कायम रहेगी।

अपने उत्तर में माउंटबेटन ने कहा कि उनके पूर्वगामियों का दुर्भाग्य था कि उन्हें खड़ी साइकिल पर बैठने को तो मजबूर होना पड़ा था, और उस पर संतुलन बनाए रहना बड़ा कठिन काम होता है। लेकिन उन्हें तो पैडल मार कर तत्काल 'आगे बढ़ने' का आदेश दिया गया था। उनका काम था अधिकाधिक तेजी से पैडल मारना और आज वह इस स्थिति में पहुंच गए हैं कि यह साईकिल अपनी सरकार के हाथों में सौंप रहे हैं, जिसने हैन्डिल को कसकर पकड़ लिया है।

सवा नौ बजे तीन हजार मेहमान कतार से ऊपर पहुंचे और एक-एक कर माउंटबेटन के सामने पेश किये गए। सरकारी भवन के सारे कमरे और बैठकें मेहमानों के लिए खोल दिये गए। तेज रोशनी से जगमग मुगल-उद्यान बड़ा मनोरम प्रतीत हो रहा था। अब जरा ठंडक भी हो गई थी और हवा मजेदार और सुगंधित थी। बड़े सद्भाव और हंसी-खुशी के साथ यह दावत देर तक चलती रही। वह तनाव और अकड़ भी अब नहीं रही थी, जो मार्च की गार्डन-पार्टी में भारतीय मेहमानों में दिखलाई पड़ती थी। ऐसी सरलता और स्वच्छन्दता का वातावरण था जो समानता की व्याप्त भावना ही पैदा कर सकती है।

स्वाधीनता के अवसर पर निकाले गए विशेषांकों में बहुत-सी मौजूं बातें लिखी गई थीं । लेकिन सबमें अच्छे मुझे के. एम. मुंशी के शब्द लगे, जो उन्होंने माउंटबेटन की गवर्नर-जनरल पद पर नियुक्ति के बारे में लिखे थे :

वह लिखते हैं : "ब्रिटेन के अलावा इतिहास का कोई राष्ट्र इतनी शान से आजादी का दान नहीं दे सकता था, और भारत के अलावा कोई दूसरा देश इतनी शान के साथ इस ऋण का आभार नहीं मान सकता था ।"

: १४ :

उत्तराधिकार का युद्ध

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
शनिवार, १६ अगस्त १९४७

आज सवेरे तड़के दिल्ली के लाल किले पर राष्ट्रीय झंडा फहराया गया। इस अवसर पर नेहरू ने लगभग पांच लाख जनता के सामने भाषण दिया। भीड़ मुगलों के गौरव के एक और प्रतीक, विशाल जामा मसजिद तक फैली हुई थी। लेकिन आज तीसरे पहर जब माउंटबेटन ने रेडक्लिफ का फैसला नेताओं के हाथ में सौंपा तो सवेरे की खुशहाली पर उदासी की चादर पड़ गई। सरकारी भवन के कौंसिल-कक्ष में मंत्रिमंडल की बैठक बुलाने के पूर्व उन्होंने फैसले का अध्ययन करने के लिए दो घंटे का समय दिया। लियाकत भी यहां मौजूद थे—और दरअसल माउंट-बेटन की यह बड़ी सफलता थी कि वह जिन्ना को इस बात के लिए राजी कर पाये कि पाकिस्तान के प्रधान-मंत्री का पद संभालने के चौबीस घंटे बाद ही लियाकतअली दिल्ली की यात्रा करें। मंत्रिमंडल की इस उदास और नाराजीभरी बैठक में मैं उपस्थित था। अगर इसमें किसी बात पर सहमति थी तो वह इस या उस साम्प्रदायिक 'अन्याय' की निंदा के विषय में थी। इससे माउंटबेटन को काफी सामयिकता के साथ यह कहने का अवसर मिला कि चूंकि सब दल रेडक्लिफ के फैसले से समान रूप से संतुष्ट नहीं हैं, इसलिए फैसले के उचित होने की सबसे असंदिग्ध कसौटी यही है कि सब उससे नाखुश हैं।

आनेवाली लम्बी और आवेशपूर्ण बहस का पहला संकेत हमें मिला। गुरदासपुर जिला पूर्वी पंजाब में शामिल किये जाने पर लियाकत को उतनी ही निराशा हुई जितनी चटगांव का पहाड़ी इलाका पूर्वी पाकिस्तान में

मिलाये जाने पर पटेल को क्रोध। बलदेवसिंह की वेदना के आगे तो दोनों का रोष फीका पड़ गया। लेकिन किसी नेता ने पहले से बिना शर्त दिये गए इस वचन को भंग नहीं किया कि फैसला चाहे जो हो, उसे अस्वीकार नहीं किया जायगा।

इधर हमारी बैठक हो रही थी उधर दोनों विभाजित प्रांतों से ऐसे समाचार आ रहे थे जो एक चेतावनी के साथ ही साहसपूर्ण नेतृत्व को चुनौती भी देते थे। पंजाब में लोगों ने कानून को ताक पर रखकर स्थिति अपने हाथ में ले ली थी। जिसे जेनकिन्स ने उत्तराधिकार का युद्ध कहा है, वह पांच नदियों के इस देश में पूरी बीभत्सता के साथ शुरू हो गया था। आज तीसरे पहर आचिन्लेक ने नेताओं को स्थिति के बारे में इतनी कटु और डरावनी रिपोर्ट दी कि नेताओं को अविलम्ब सीमा-फौज को मजबूत करने का फैसला करना पड़ा।

उधर कलकत्ता में, जहां इसी प्रकार की हिंसा का डर किसी प्रकार भी कम नहीं था, अपेक्षाकृत शांति है। हिंसा की घटनाएं इक्की-दुक्की हैं। गांधीजी की उपस्थिति ने बंगाल के जख्म पर मरहम का काम किया है। वस्तु-स्थिति के औचित्य के बारे में अपने विवेक के अनुसार स्वाधीनता समारोह शुरू होने के पहले ही गांधीजी दिल्ली से चले गए थे। उनका विचार शायद यही था कि इन सरकारी उत्सवों में वह कोई मौजूं भूमिका नहीं खेल सकेंगे और उनकी जरूरत पूरब को ज्यादा है। १३ तारीख को उन्होंने संयुक्त बंगाल के अन्तिम प्रधान मंत्री शहीद सुहरावर्दी को, जो काफी रईसी तबियत के व्यक्ति हैं, न्योता दिया कि मुसलमान बस्ती के एक मामूली मकान में उनके साथ रहने आयें और उनके सेवा-कार्य में हाथ बंटायें। उसी रात हिन्दू नौजवानों ने उनके मकान पर पत्थर फेंके। इसके उत्तर में गांधीजी ने कल के स्वाधीनता-दिवस को उपवास-दिवस के रूप में मनाया।

पंजाब की गंभीर स्थिति को देखते हुए नेहरू और लियाकत ने साथ-साथ तुरन्त अम्बाला जाने का निश्चय किया। अम्बाला से वे

अमृतसर जायंगे, जहां स्थिति का ठीक-ठीक मूल्यांकन कर तत्काल महत्वपूर्ण निर्णय करेंगे।

आज रात अचानक मेरी मुलाकात उस फोटोग्राफर से हुई जिसे कल माउंटबेटन ने कुचलने से बचाकर अपनी बग्घी में बैठा लिया था। वह एक चरम वामपंथी पत्र का प्रतिनिधि है। लेकिन अपने विचारों के बावजूद उसने मेरा हाथ झकझोरते हुए कहा, "दो सौ साल के बाद आखिर ब्रिटेन ने हिन्दुस्तान को जीत ही लिया।"

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
बुधवार, २० अगस्त १९४७

भारी वर्षा के कारण कल हमारी बंबई से दिल्ली की यात्रा कई घंटे पिछड़ गई और हम तीसरे पहर के बाद यहां पहुंचे। यहां हमने स्थिति को काफी गंभीर पाया है। नेहरू और लियाकत अम्बाला से अमृतसर गये, जहां पहुंचकर उन्होंने शांति के लिए एक महत्वपूर्ण अपील निकाली। नेहरू ने एक रेडियो भाषण भी दिया, जिसमें उन्होंने कहा कि पंजाब की सरकारें भारत और पाकिस्तान की सरकारों के पूरे सहयोग से इस बीभत्स कांड का अन्त करने पर कटिबद्ध हैं। उन्होंने कहा, "भारत कोई साम्प्रदायिक नहीं, धर्म-निरपेक्ष राज्य है, जिसमें हर नागरिक को समान अधिकार हैं। सरकार इन अधिकारों की रक्षा करने पर अटल है।"

विस्थापितों की समस्या भी तूल पकड़ती जा रही है। अनुमान लगाया गया है कि लगभग दो लाख व्यक्ति अस्थायी विस्थापित कैम्पों में भरे हुए हैं और ऐसी परिस्थितियों में रह रहे हैं कि किसी भी समय बड़े पैमाने पर हैजे का प्रकोप हो सकता है।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
सोमवार, २५ अगस्त १९४७

संयुक्त सुरक्षा-परिषद की बैठक में पंजाब सीमा-सेना के भविष्य पर माउंटबेटन को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। दोनों सरकारें चाहती हैं कि सीमा-फौज को राष्ट्रीय आधार पर विभाजित कर दिया जाय और उसके दोनों भाग अपने-अपने देश के प्रधान सेनापति के अधीन रहें। माउंटबेटन इस जानकारी के साथ बैठक में गये थे कि यह कल्पना आचिन्लेक तथा रीस को बिलकुल स्वीकार न होगी। वह खुद भी उसके बिलकुल खिलाफ थे। उन्होंने पूरी बहस का संचालन ऐसी चतुरता से किया कि यह प्रश्न औपचारिक रूप से उठाया ही नहीं गया। किन्तु वह पास्कितानी वित्त-मंत्री और प्रतिनिधि चुन्द्रीगर को सीमा-फौज की गति-विधि के बारे में कुछ आपत्तिजनक बातें कहने से रोकने में असमर्थ रहे।

माउंटबेटन के लिए यह बिलकुल असह्य था, क्योंकि वह जानते थे कि सीमाफौज के मनोबल को बनाये रखने के लिए उसे नेताओं की शाबाशी और प्रोत्साहन की आवश्यकता है। अगर सीमा-सेना को उचित सहारा नहीं मिला तो उसे हटाने के सिवा कोई चारा नहीं रह जायगा। इसके हटने से जो रक्तपात होगा उसकी जिम्मेदारी उन लोगों के कंधों परहोगी जो उसके भंग किये जाने के दोषी हैं। एक बार उन्होंने चुन्द्रीगर को पितृतुल्य डांट बताते हुए कहा, "यदि आपके गवर्नर-जनरल आपको इस प्रकार बातें करते हुए सुनें तो वह जो कुछ कहेंगे उसकी कल्पना करना भी मुझे अप्रिय मालूम होता है।"

बैठक में सीमा-फौज के बारे में एक विज्ञप्ति प्रकाशित करने का निश्चय किया गया। मैंने और वर्नोन ने विज्ञप्ति का मसविदा तैयार किया। किंतु चुन्द्रीगर अड़ गए कि उसमें इस आशय का वाक्य होना चाहिए कि यदि सीमा-फौज ने अपना कर्त्तव्य पूरा न किया तो उसके विरुद्ध कड़ी कार्रवाई की जायगी। दूसरी ओर, हम वर्तमान मसविदे के ही इस वाक्य को

मुलायम करने का प्रयत्न कर रहे थे कि "कुछ अपवादों को छोड़ कर" सीमा-फौज बहुत अच्छा काम कर रही है।

काफी बहस के बाद इन कठोर शब्दों को निकालना तय पाया। इस पूरी घटना से यह साफ जाहिर है कि यदि दोनों सरकारें विद्रोह की स्थिति पैदा नहीं करना चाहती हैं तो उन्हें नाजुक काम में संलग्न अपनी सेनाओं के बारे में अपने रुख में भारी परिवर्तन करना पड़ेगा।

सरकारी भवन लौटने पर माउंटबेटन ने हमें मॉकटन का एक तार दिखलाया। इसमें उन्होंने कहा था कि मैं निजाम के वैधानिक परामर्शदाता के पद से त्यागपत्र देने के लिए बाध्य हो गया हूं, हालांकि निज़ाम का विश्वास अबतक मुझ पर कायम है। उन्होंने यह भी कहा है कि मैं महसूस करता हूं कि मुझे अब सरकारी भवन में नहीं ठहरना चाहिए, क्योंकि इसका अर्थ गलत लगाया जा सकता है। इस समाचार से माउंटबेटन को भारी चोट पहुंची। वह कह उठे, "हम डूब गए!"

सत्ता-हस्तांतरण के बाद भारत सरकार और हैदराबाद के बीच क्या संबंध रहना चाहिए—इस संबंध में जो कठिन बातचीत चल रही है, उसका बहुत कुछ दारोमदार जुलाई से ही मॉकटन के प्रभाव और निजाम के प्रतिनिधि-मंडल के सदस्य के रूप में उनके उपलब्ध होने पर निर्भर रहा है।

अभी १२ अगस्त को ही माउंटबेटन ने, समझौते का कोई लक्षण न देखकर निजाम को सूचित किया था कि उन्होंने निज़ाम के लिए स्वाधीनता-दिवस के बाद दो महीने की विशेष मोहलत मंजूर करवा ली है। सरकार इस अवधि में हैदराबाद का संघ-प्रवेश-पत्र स्वीकार करने को तैयार है। अतएव, वह इस सुअवसर का फायदा उठाएं। उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि हालांकि अब वह ताज के प्रतिनिधि नहीं हैं, पर उन्हें भारत की ओर से बातचीत जारी रखने का अधिकार दे दिया गया है। इस बीच, उन्होंने बरार के संबंध में, जो वैध रूप से निजाम-राज्य का अंश है, किन्तु अबतक मध्यप्रदेश के राज्यपाल द्वारा

प्रशासित होता रहा है, भारत से यथापूर्व स्थिति की स्वीकृति प्राप्त कर ली है। अन्त में उन्होंने वी. पी. मेनन से परामर्श करने के पश्चात् निजाम को यह महत्वपूर्ण आश्वासन भी दिया था कि यदि निजाम वर्तमान परिस्थितियों में संघ-प्रवेश न करने का निश्चय करें तो नई सरकार इसे शत्रुतापूर्ण कार्य नहीं मानेगी। उन्होंने यह भी कहा कि नेताओं का कोई ऐसा इरादा नहीं है कि आर्थिक नाकेबन्दी करके कूटनीतिक दबाव डाला जाय ।

हैदराबाद के प्रतिनिधिमंडल के साथ आज बातचीत फिर शुरू होनी थी । माँकटन का तार मिलने पर माउंटबेटन ने वी. पी. मेनन को बुलाकर उनके साथ नई स्थिति पर विचार-विमर्श किया । वर्नोन और मैं सीमा-फौज संबंधी विज्ञप्ति को ठिकाने लगाने के काम में लग गए। हमारे लौटने पर स्थिति में सुधार दिखलाई पड़ा। निजाम के पास से एक तार आया था । उसमें माउंटबेटन से अनुरोध किया गया था कि वह निजाम की ओर से माँकटन से मिलें और उन्हें अपने पद पर बने रहने के लिए समझाएं । निजाम ने स्वीकार किया था कि यदि माँकटन इस संकट के समय चले गए तो उनके स्थान पर किसी दूसरे को नियुक्त करने में बहुत कठिनाई होगी।

माँकटन तुरन्त आये और उन्होंने बताया कि उनके त्यागपत्र देने का कारण उनके विरुद्ध राज्य के पत्रों का अतिशय उग्र आक्रमण है। इस आक्रमण का संगठन उग्र मुस्लिम संस्था इत्तिहादुल-मुसलमीन ने किया है। उन्होंने कहा कि इसी कारण प्रधान मंत्री (नवाब छतारी) और वैधानिक मामलों के मंत्री ने भी त्यागपत्र दे दिया है। ये दोनों भी प्रतिनिधिमंडल में शामिल थे। निजाम ने छतारी का त्यागपत्र स्वीकार करने से इन्कार कर दिया है। माँकटन ने कहा कि यदि इत्तिहाद सार्वजनिक रूप से अपना वक्तव्य वापस ले ले तो मैं भी अपना त्याग-पत्र वापस लेने को तैयार हूं ।

माँकटन ने माउंटबेटन को बताया कि उन्होंने निजाम को ऐसी संधि

के लिए लगभग राजी कर लिया है जिसमें तीनों केंद्रीय विषयों, सुरक्षा वैदेशिक मामलों और संचार, का समावेश हो जायगा। उन्होंने अपना यह विश्वास भी व्यक्त किया कि वह निजाम को 'संघ-प्रवेश' के बराबर ही कोई दूसरी बात स्वीकार करने के लिए राजी कर लेंगे, बशर्तेकि 'संघ-प्रवेश-पत्र' नाम को बदलकर 'मैत्री-संधि' जैसा कोई ऊपर से मीठा लगने वाला नाम रख दिया जाय। माउंटबेटन ने उन्हें बताया कि यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर पटेल लगभग अटल हैं। उनको भय है कि ऐसा करने से संघ-प्रवेश-पत्र पर हस्ताक्षर करनेवाले अन्य राजा-महाराजा उन पर विश्वासघात का आरोप करेंगे। परन्तु माउंटबेटन ने वचन दिया कि यदि माँकटन संघ-प्रवेश-पत्र के मूल तत्वों पर निजाम की स्वीकृति प्राप्त करसकें, तो वह उस पर भारत सरकार का समर्थन प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न करेंगे।

आज यह समाचार भी मिला कि आखिर भोपाल नरेश भी भारत-संघ में शामिल हो गए हैं, भोपाल के नवाब को संघ-प्रवेश-पत्र की शर्तें प्रकाशित होने के दिन से १० दिन की मोहलत दी गई थी। माउंटबेटन ने कहा, "आजकल के दिन १५ अगस्त के पहले दिनों से कम तूफानी नहीं हैं।"

"दि रिट्रीट", मशोबरा, शिमला,
शनिवार, ३० अगस्त १९४७

संयुक्त सुरक्षा-परिषद की अध्यक्षता करने माउंटबेटन कल लाहौर गये थे। जिन्ना को उसमें सदस्य के रूप में उपस्थित देखकर सबके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। काफी लम्बी-चौड़ी बहस के बाद सीमा-फौज को भंग करने का फैसला किया गया। इतना बेजोड़ और कठिन काम करने के लिए पीट रीस का उचित आभार नहीं माना गया। दोनों देशों की सरकारों और समाचारपत्रों के समर्थन के अभाव में सीमा-

फौज और उसके कमांडर की स्थिति विचित्र हो गई । विश्वस्त और अनुभवी सेनाएं भी साम्प्रदायिक खिंचावों को अपने सैनिक अनुशासन की अपेक्षा कहीं उग्रता से महसूस करने लगीं ।

पंजाब-सीमा-सेना के भंग होने के साथ ही माउंटबेटन के आखिरी शासकीय काम का अन्त हो गया है । उनका विचार है कि अब उन्हें अपने वैधानिक पद के अनुसार रोजाना के कामों से अलग हो जाना चाहिए । इसीलिए वह अब आराम के लिए शिमला आये हुए हैं ।

गवर्नर-जनरल निवास, शिमला,
बृहस्पतिवार, ४ सितम्बर १९४७,

आज तीसरे पहर माउंटबेटन ने हमें बतलाया कि वी. पी. मेनन ने दिल्ली से फोन पर पटेल का यह आवश्यक संदेश दिया है कि माउंटबेटन तुरन्त दिल्लीं लौट आयें । वी. पी. मेनन ने कहा कि नेहरू, पटेल और अन्य जिम्मेदार मंत्रियों का मत है कि स्थिति इतनी गंभीर हो गई है कि माउंटबेटन की उपस्थिति ही उसे संभाल सकती है ।

कल सवेरे हम दिल्ली के लिए प्रस्थान करेंगे ।

: १५ :

विषम परिस्थिति

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
शनिवार, ६ सितम्बर, १९४७

कल सवेरे तड़के शिमले से चलकर आज तीसरे पहर हम सरकारी भवन पहुंच गए। यहां पहुंचने पर हमने वी. पी. मेनन को पटेल का यह संदेशा लिये प्रतीक्षा करते पाया, जिसमें आशा की गई थी कि माउंटबेटन शीघ्र ही दृढ़ता के साथ स्थिति पर काबू पाने में सफल होंगे। थोड़ी ही देर बाद नेहरू माउंटबेटन को संकटापन्न परिस्थितियों से निबटने के लिए अपना सहयोग और समर्थन देने आये और उनके बाद पटेल भी आये।

संकट की पूरी गहराई का दो-तीन घंटे तक अध्ययन कर लेने के बाद माउंटबेटन ने एक संकटकालीन कमेटी निर्माण करने का सुझाव दिया। नेहरू और पटेल तुरन्त राजी हो गए, और उनके अनुरोध पर माउंटबेटन ने कमेटी की अध्यक्षता स्वीकार कर ली। इससे कम से काम चलेगा भी नहीं, क्योंकि दरअसल हमारा सामना है युद्धकालीन समस्याओं से और उनसे निबटने के लिए युद्धकालीन व्यवस्था और प्राथमिकता हमारे पास हैं नहीं। साम्प्रदायिक खतरों और पागलपन के फैलने के साथ ही, जैसाकि पंजाब में हो रहा है, हत्याओं का आकार और विस्थापितों का आवागमन उससे कहीं अधिक है, जो साधारणतः दो विरोधी सेनाओं के बीच संघर्ष से पैदा हुआ करता है। किन्हीं भी दो देशों की जनसंख्या की अदला-बदली का इतिहास देखने से पता चलता है कि वहां जनता ही सर्वेसर्वा होती है और खुद अपनी विशेष परिस्थितियों का निर्माण करती है, जिनका बहुत-से लोग दुरुपयोग तो कर सकते हैं लेकिन उन्हें काबू में कोई नहीं कर सकता।

चूंकि दिल्ली खुद इस हंगामे का केंद्र है, इसलिए इस प्रांतीय समस्या ने राष्ट्रीय-समस्या का रूप ले लिया है। इस नजर से देखें तो पंजाब का

संकट भारत के लिए जितना खतरनाक है उतना पाकिस्तान के लिए नहीं, क्योंकि पाकिस्तान की राजधानी कराची संकटग्रस्त इलाके से काफी दूर है। फिर भी, जिन्ना ने एक महत्वपूर्ण रेडियो-भाषण द्वारा पाकिस्तान की जनता से शांति कायम करने और नये राष्ट्र का निर्माण करने के लिए सहयोग की अपील की है। उन्होंने कहा था "हालांकि सीमा-आयोग का फैसला अन्यायपूर्ण, तर्कशून्य और दुर्भावनापूर्ण था फिर भी मुसलमानों ने उसे स्वीकार कर लिया है। हमारे नये राष्ट्र को सचेत रहना होगा कि जो चीज हमने कलम के जोर से जीती है, उसे हम तलवार के जोर से खो न दें।"

संकटकालीन कमेटी की पहली बैठक आज शाम को पांच बजे सरकारी भवन के कौंसिल कक्ष में हुई और दो घंटे तक चली। कमेटी की कार्यवाही शुरू करते हुए नेहरू ने माउंटबेटन से कहा, "आपकी सलाह मैं इसी शर्त पर मान सकता हूं कि आप अध्यक्षपद संभालें।" यह सुझाव माउंटबेटन ने एक दूसरी शर्त पर स्वीकार कर लिया— वह यह कि इस बात को गुप्त रखा जायगा।

तय हुआ कि कमेटी में केवल कुछ मंत्री तथा अन्य महत्वपूर्ण लोग ही शामिल हों। जैसे—प्रधान सेनापति, सर्वोच्च-सेनापति के प्रतिनिधि, दिल्ली के चीफ कमिश्नर, पुलिस विभाग के अध्यक्ष, नागरिक उड्यन विभाग के डाइरेक्टर जनरल और चिकित्सा तथा रेलवे विभाग के प्रतिनिधि। अन्य लोगों को जरूरत के अनुसार विशेष निमंत्रण पर बुलाया जा सकता था। नेहरू और पटेल कमेटी के स्थायी सदस्य होंगे। इनके अलावा यह मंत्री भी कमेटी में लिए जायंगे : बलदेवसिंह (सुरक्षा), मथाई (रेलवे) और नियोगी (नव-निर्मित विस्थापित विभाग)। कुल मिलाकर पन्द्रह लोगों ने प्रारम्भिक बैठक में भाग लिया।

कमेटी का विधान तय होते ही हमने तुरन्त "अत्यन्त आवश्यक" प्रश्नों पर विचार शुरू कर दिया। विस्थापित मंत्रालय की स्थापना अभी नहीं हो पाई थी। कमेटी कल सवेरे तक यह जानना चाहेगी कि इस मंत्रालय के सेक्रेटरी पद पर किसे नियुक्त किया जारहा है। इसके

बाद कमेटी ने इस विभाग के लिए जगह दिये जाने के कठिन और आवश्यक प्रश्न पर विचार किया। संकटकालीन कमेटी और पाकिस्तान सरकार के बीच संपर्क साधने का काम इस्मे को सौंपा गया।

'मार्शल ला' लगाये जाने के प्रश्न पर विस्तार से चर्चा हुई। माउंटबेटन का विचार था कि पंजाब की स्थिति 'मार्शल ला' लगाये जाने के अनुकूल है। लेकिन यह तभी हो सकता है जब चारों संबंधित सरकारें इससे सहमत हों। लेकिन यह संभावना बिलकुल असंभव होने के कारण कमेटी ने आदेश दिया कि पूर्वी पंजाब में लागू कानूनों को कड़ा करने की संभावनाओं और तरीकों पर अविलम्ब विचार किया जाय। कुल मिलाकर बारह प्रश्नों का निबटारा किया गया—लेडी माउंटबेटन के अधीन रिलीफ कमेटी की स्थापना के प्रश्न से लेकर शाही हवाई बेड़े के यातायात के नियंत्रण और इश्तिहार गिराये जाने के प्रश्न तक। जब बैठक खत्म हुई तो सब लोग पस्त थे।

कल की बैठक में पूर्वी पंजाब के गवर्नर त्रिवेदी, उनके प्रधानमंत्री गोपीचन्द भार्गव और गृह-मंत्री स्वर्णसिंह भी भाग लेंगे।

कलकत्ता से गांधीजी के 'चमत्कार' का समाचार आया है। सुहरावर्दी के साथ उनकी साझेदारी का अपेक्षित फल नहीं हुआ। इक्की-दुक्की हत्याएं और हिंसा जारी रही। इसलिए उन्होंने सोमवार से उपवास शुरू किया, जो नगर में शान्ति स्थापित होने पर ही खत्म होगा। बृहस्पतिवार को जब विभिन्न सम्प्रदायों के नेताओं ने उन्हें विश्वास दिलाया कि महात्माजी की हृदय-परिवर्तन की अपील का जनता पर उचित असर हुआ है, तो गांधीजी ने अपना उपवास खत्म कर दिया।

गांधीजी की प्रार्थना सभा के बाद हिन्दू और मुसलमान बड़ी संख्या में एक-दूसरे के गले मिले। मंजे हुए पत्र-सम्वाददाताओं का कहना था कि सामूहिक प्रभाव का ऐसा बेजोड़ दृश्य उन्होंने पहले कभी नहीं देखा। माउंटबेटन का अनुमान था कि जो चीज गांधीजी ने केवल आत्मिक-बल से प्राप्त करली है, उसे चार फौजी डिवीजन भी बल-प्रयोग से हासिल नहीं कर सकते थे।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
रविवार, ७ सितम्बर १९४७

हमारी बैठक ग्यारह बजे प्रारम्भ हुई, लेकिन त्रिवेदी और पूर्वी पंजाब के मंत्रीगण ठीक समय पर उपस्थित नहीं हुए। बैठक शुरू करते हुए माउंटबेटन ने कहा कि गत चौबीस घंटे में दिल्ली की स्थिति काफी बिगड़ गई है। काफी हिंसा की घटनाएं घटी हैं। यहां तक कि सरकारी भवन के इलाके तक में छुरे-बाजी हुई है। विस्थापित लोग भारी संख्या में आ रहे हैं और उनका प्रबंध करने के लिए कोई व्यवस्था नहीं है।

इसके बाद उन्होंने हर प्रकार के हथियार रखने के ऊपर पाबंदी लगाने के प्रश्न की बात छेड़ी। इससे सिखों द्वारा बांधे जानेवाले कृपाण का सवाल अपने-आप उठ खड़ा हुआ। पटेल महसूस करते थे कि कृपाण पर किसी प्रकार की पाबंदी लगाने से बड़ी कठिनाइयां उठ खड़ी होंगी, क्योंकि काफी वर्षों से सरकार कृपाण को धार्मिक हथियार मानती आई है। माउंटबेटन ने कहा कि सिखों को कृपाण बांधने का आम अधिकार दिया जाना न्याय और व्यवस्था के लिए कार्रवाई करने में बाधक बन रहा है। लेकिन उन्होंने मंजूर किया कि बुनियादी सवाल यह है कि किस निर्णय से कम लोगों की हत्या होगी—कृपाण पर बन्दिश लगाने से या सिखों की धार्मिक भावना की रक्षा करने से?

माउंटबेटन ने चेताया, "अगर दिल्ली हमारे काबू के बाहर हुई तो हम गये।" इस्मे ने सुझाव दिया कि विशेष सिपाही देकर पुलिस को दृढ़ किया जाय। इस बारे में पटेल को शंका है, पर नेहरू पक्ष में हैं। करीब एक बजे त्रिवेदी आये और छूटते ही भावनामय भाषण देने लगे। शायद वह गलती से यह समझ बैठे थे कि संकटकालीन कमेटी कोई विशेष अदालत है जो उनकी और उनकी सरकार की जांच करने के लिए बैठाई गई है। माउंटबेटन के यह पूछने पर कि न्याय और व्यवस्था कायम रखने की पूर्वी-पंजाब-सरकार में कितनी क्षमता है। त्रिवेदी ने उत्तर दिया कि उनके सामने सबसे बड़ा सवाल विस्थापितों को बचाने का है।

दिल्ली की निरंतर खतरनाक होती स्थिति के बारे में प्राप्त होनेवाली रिपोर्टों को देखते हुए दृढ़ता और ठंडे दिमाग के साथ काम किये जाने की आवश्यकता प्रतीत हो रही थी। विलिंगडन हवाई अड्डे पर कत्लेआम होने का समाचार आया। सिखों ने आस्ट्रेलिया के हाई कमिश्नर और अमरीकी राजदूत को धमकी भरे पत्र भेजे थे। माउंटबेटन ने बैठक में चेतावनी दी कि कूटनीतिक प्रतिनिधियों की जान-माल की हिफाजत करने के प्रश्न पर भारत की इज्जत की बाजी लगी हुई है।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
सोमवार, ८ सितम्बर १९४७

शाम को निजाम के प्रधान-मंत्री नवाब छतारी से मेरी लम्बी बात-चीत हुई। वह निजाम के प्रति वफादार तो रहना चाहते हैं, परन्तु उन्हें जो विविध हुक्म मिलते रहते हैं, उनका मतलब समझने में उन्हें कठिनाई होती है। स्पष्ट है कि उनका कार्य-काल और प्रभाव बहुत दिन न रहेगा। उन्होंने और मांकटन ने—जो सरकारी भवन में ठहरे हुए थे—आज माउंटबेटन से भी भेंट की।

दिल्ली की मौजूदा संकट स्थिति के कारण हैदराबाद की समस्या कम आवश्यक मालूम पड़ती है। इससे माउंटबेटन सोचते हैं कि 'संघ-प्रवेश' के नाम में परिवर्तन करने के लिए यह समय मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अनुकूल है। उधर, हैदराबाद में, मांकटन की नौकरी कायम रखने की इच्छा के प्रमाणस्वरूप निजाम ने एक सप्ताह पूर्व जोरदार फर्मान निकाल दिया था। उसमें उन्होंने प्रतिनिधि-मंडल के सदस्यों के विरुद्ध किये गए आक्रमण को राज्य के हितों के विरुद्ध बताकर उसकी कड़ी निन्दा की थी। माउंटबेटन को लिखे पत्रों में भी उन्होंने इसकी चर्चा की और मांकटन पर अपना विश्वास जाहिर किया। उन्होंने इत्तिहाद,और विशेषत: उसके धर्मांध

अध्यक्ष कासिम रिजवी, की प्रवृत्तियों की स्पष्ट भाषा में निन्दा की।

निजाम काफी झिझकते हुए समझौते की ओर बढ़ रहे हैं। परन्तु इस समय कांग्रेसी गुप्तचर विभाग ने, जो कि रियासती मामलों की बहुत अच्छी जानकारी रखता है, निजाम सरकार के चेकोस्लोवाकिया से शस्त्रास्त्र मंगाने और पृथक् प्रभुसत्ता स्थापित करने के प्रयत्नों के चिंतनीय समाचार प्राप्त किये हैं। तथापि छतारी भली-भांति जानते हैं कि इस प्रकार की कोई भी कार्रवाई हैदराबाद तथा भारत दोनों' के लिए घातक होगी। आज की बैठक में दोनों पक्षों में गतिरोध को दूर करने की सच्ची इच्छा दिखलाई पड़ी। यह स्वीकार कर लिया गया कि शायद बातचीत में हिस्सा लेने वाले दोनों पक्षों के प्रमुख नेता पहले प्रयत्न में किसी सूत्र पर सहमत न हो सकेंगे। इस खयाल से यह निचश्य किया गया कि मांकटन और छतारी हैदराबाद जाकर मतभेद को कम करने की फिर कोशिश करें।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
मंगलवार, ९ सितम्बर १९४७

आज माउंटबेटन गांधीजी से मिले। गांधीजी अपने कलकत्ता के चमत्कारों के बाद अभी-अभी दिल्ली पहुंचेहैं। अपनी कलकत्ता की सफलताओं के बारे में गांधीजी बहुत विनम्र हैं, और उसे विशेष महत्व नहीं देते। उन्होंने माउंटबेटन से कहा कि अब सरकारी भवन के बारे में उनका मत बदल गया है। विदेशी और झूठी सत्ता का प्रतीक कह कर अबतक वह इसकी निंदा करते आये थे। उन्होंने कहा कि मुझे खुशी है कि "आपदाओं के सागर में वह निरापद द्वीप" का काम कर रहा है।

संकटकालीन कमेटी की सवेरे की बैठक में पेशावर तथा उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश (जो अब पाकिस्तान का अंग है) की गंभीर स्थिति के बारे में रिपोर्टों पर विचार किया गया। इन रिपोर्टों की तात्कालिक प्रतिक्रिया यह है कि रिपोर्टें सही हैं।

: १६ :

जूनागढ़ का संकट

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
रविवार, १४ सितम्बर १९४७

माउंटबेटन ने आज कर्मचारी-मंडल की जो बैठक की, उसमें मुख्यतः पुराने किले की स्थिति पर विचार हुआ। पटेल करीब-करीब तय कर चुके हैं कि मुसलमानों से हथियार छीनने के लिए एक बटालियन भेजी जाय। माउंटबेटन का कहना है कि इस प्रकार की कोई भी कार्रवाई विनाशकारी होगी और कत्लेआम भड़का देगी।

संकटकालीन कमेटी में पटेल ने दिल्ली के कुछ मकानों से लगातार गोलियां चलने की सूचना दी और हमले के इन अड्डों को साफ करने की आवश्यकता पर जोर दिया। जनरल लॉकहार्ट ने, जो १५ अगस्त के बाद से प्रधान सेनापति हैं, कहा कि यदि मुझे इस कार्य में सेनाएं लगाने की अनुमति दी जाय तो मैं तीन दिन में दिल्ली को दंगइयों से साफ कर सकता हूं।

मेरी माउंटबेटन से खुलकर बातें हुईं और मैंने उन्हें हमेशा की तरह प्रसन्न पाया। उन्होंने बतलाया कि वह भारत से जाने को तैयार बैठी ब्रिटिश फौजों से मिलने गये थे। उनका कहना है कि हमें शर्म लगती है कि इतने उपद्रव हो रहे हैं और हम हाथ-पर-हाथ धरे बैठे हैं। अतएव माउंटबेटन ने अनुमति दे दी है कि नान-कमीशण्ड अफसर और सैनिक विस्थापितों के शिविरों का संगठन करने में मदद करें। उनकी यह सहायता उपयोगी सिद्ध हुई और उससे ब्रिटिश-प्रतिष्ठा भी बढ़ी। उन्हें आशा है कि तीन-चार सप्ताह में वह संकटकालीन कमेटी की अध्यक्षता नेहरू को सौंप कर उसके कार्य से मुक्त हो जायंगे। अब वह मानते हैं कि १५ अगस्त को भारत न

छोड़ कर उन्होंने अच्छा ही किया ।

इस्मे कराची से लौट आये हैं। उनका खयाल है कि इस समय उनका कराची जाना बहुत ठीक हुआ। उन्होंने पाया कि जिन्ना भारत-सरकार पर से अपना विश्वास उठने के बारे में कसमें खा रहे हैं और भारत से कूटनीतिक संबंध तोड़ देने पर उतारू हैं। इस्मे अड़तालीस घंटे कराची में रहे, जिनमें से ग्यारह घंटे उन्होंने जिन्ना के साथ बातें करने में बिताये। उन्हें लगता है कि उन्होंने जिन्ना का विश्वास पा लिया है। जिन्ना ने उनके मुंह पर ही उन्हें "सज्जन व्यक्ति" कहते हुए उनकी प्रशंसा की।

साफ जाहिर है कि जिन्ना कांग्रेस के विरुद्ध क्रोध से उबल रहे थे। उन्होंने कहा कि मैं इन आदमियों के द्वेष को कभी समझ नहीं सकता। युद्ध ठान कर निबटने के अलावा और कोई चारा नजर नहीं आता।

इस्मे ने बतलाया कि वह जिन्ना के साथ भिड़ गए और उन्होंने कहा कि मैं अतिशयोक्ति करने का अभ्यस्त नहीं हूं, फिर भी मैं अपने प्राणों की शर्त लगाकर कह सकता हूं कि भारत-सरकार पूरी शक्ति के साथ दंगों को दबाने के लिए कमर कसे है। वे सब सच्चे आदमी हैं और पूरी शक्ति लगाकर प्रयत्न कर रहे हैं। इस्मे का खयाल है कि उन्होंने जिन्ना को फिर सोचने पर मजबूर कर दिया।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
सोमवार, १५ सितंबर १९४७

कर्मचारी-मंडल की आज की बैठक में इस्मे की कराची-यात्रा से पैदा हुई आम स्थिति पर विचार किया गया। माउंटबेटन का विश्लेषण यह था कि हिन्दू और मुसलमान तो समान अनुपात में अपनी-अपनी सरकारों के वश में हैं किन्तु सिख काबू के बाहर हैं और अब उनके नेता भी उनसे डरने लगे हैं। वी. पी. मेनन का खयाल है कि निकट भविष्य में भारत तथा पाकिस्तान के बीच कोई शांति नहीं हो सकती। ऐसी दशा में माउंटबेटन

को दोनों उपनिवेशों के बीच युद्धकी आशंका दृष्टिगोचर होती है। वह कहते हैं कि हमें युद्ध से जितनी दूर हो सके, रहना चाहिए। परन्तु वी. पी. मेनन मानते हैं कि जिन्ना के वर्तमान रुख से यह आशा भी पूर्ण नहीं हो सकती।

माउंटबेटन ने सिखों के उद्देश्य के बारे में पूछा। क्या उनका उद्देश्य सिख-राज्य कायम करना है? वी. पी. मेनन ने उत्तर दिया कि नहीं, राजनीतिक दृष्टि से वे मात खा चुके हैं और जालंधर डिवीजन तक भी प्राप्त नहीं कर सके। उनका एक मात्र उद्देश्य बदला लेना है।

वी. पी. मेनन के पुत्र तीन सिखों के साथ काम कर रहे हैं। उन सिखों के परिवार मौत के घाट उतार दिये गए थे। उनका उद्देश्य परिवार के एक-एक सदस्य के बदले दो-दो मुसलमानों के प्राण लेना है। वी. पी. मेनन के खयाल से तारासिंह मूलतः डरे हुए व्यक्ति हैं।

संकटकालीन कमेटी की आज की बैठक कल की बैठक से कुछ अच्छी रही। फिर भी उसमें छोटी-छोटी बातों पर बहुत समय लग गया। मौसम खराब होने के कारण चन्दूलाल त्रिवेदी समय पर नहीं आ सके। नेहरू ने अपनी कल की लाहौर-यात्रा का विवरण सुनाया। अपने तथा लियाकत के बीच हुए इस महत्वपूर्ण निर्णय की चर्चा की कि विस्थापितों के आवागमन के मार्ग में पड़नेवाली रुकावट को दूर करने के लिए सीमाओं पर शस्त्रों के लिए होने वाली उनकी तलाशियाँ बन्द कर दी जायं। परन्तु बैठक के समाप्त होते ही लियाकत ने एक भाषण दिया, जिसमें उन्होंने कहा कि भारत सरकार उन समझौतों का पालन नहीं कर रही। लियाकत ने कहा, "हम पाकिस्तानवासी चारों ओर से ऐसी शक्तियों से घिरे हुए हैं, जो हमारा विनाश करने पर कटिबद्ध हैं।"

पिछले दस दिनों से हमारा सारा ध्यान पंजाब के दंगों और दिल्ली की रक्षा में लगा हुआ था। अब एक बिलकुल अप्रत्याशित क्षेत्र से एक नया खतरा उभरता हुआ दिखलाई पड़ रहा था। हमारा ध्यान इस बात की ओर खींचा गया कि जूनागढ़ (जो कठियावाड़ की दो सौ अट्ठासी रियासतों में से एक है) १५ अगस्त को न भारत में शामिल हुआ और न पाकिस्तान

में, और अब वह पाकिस्तान में शामिल होने का विचार कर रहा था। जिन्ना इस काम में उसके समर्थक हैं। यह कहना सही होगा कि सत्ता परिवर्तन के पहले और बाद की घटनाओं के तूफान में हम ऐसे उलझे रहे कि जूनागढ़ की ओर ध्यान ही नहीं गया। नतीजा यह हुआ कि जूनागढ़ भी हैदराबाद और काश्मीर राज्यों की भांति पटेल की झोली के बाहर है।

जूनागढ़ अच्छी खासी पैबंद लगी कथरी है। उसका क्षेत्रफल करीब तीन हजार तीन सौ वर्ग मील है और सात लाख आबादी में ब्यासी प्रतिशत हिन्दू हैं। इसके राजा और सरकार मुसलमान हैं और चारों तरफ भारत में मिली रियासतों से घिरा हुआ है। इन रियासतों के कुछ इलाके जूनागढ़ के अन्दर दबे हुए हैं और जूनागढ़ के इलाके इन रियासतों में। उसकी रेलें, बन्दरगाह और तार भारतीय व्यवस्था का अंग हैं। जूनागढ़ के नवाब साहब बेजोड़ सनकी हैं, जिनका एकमात्र काम कुत्ते पालना है। उनके कुत्तों की संख्या आठ सौ है और हर कुत्ते की देख-रेख के लिए एक-एक नौकर है। एक बार उन्होंने अपने दो कुत्तों की शादी का जश्न मनाया था, जिसमें तीन लाख रुपये खर्च हुए थे और उत्सव की खुशी में पूरी रियासत में आम छुट्टी मनाई गई थी।

जूनागढ़ के बारे में यह सब गड़बड़ी फैली कैसे? २५ जुलाई को माउंटबेटन के साथ राजाओं की जो मुलाकात हुई थी, उसमें जूनागढ़ के तत्कालीन दीवान ने बहुत से प्रश्न पूछे थे। उनमें किसी से जूनागढ़ के पाकिस्तान प्रवेश के इरादे का संकेत नहीं मिला था। दीवान ने तो यहां तक कहा था कि वह नवाब को भारत के साथ रहने की सलाह देगा। जूनागढ़ की सरकार ने घोषणा की थी कि जूनागढ़ काठियावाड़ की अन्य रियासतों के साथ रहेगा। ये सभी रियासतें भारत-संघ में शामिल हो गई हैं। परन्तु, सत्ता-हस्तान्तरण के केवल ५ दिन पहले—१० अगस्त को—वहां तख्ता पलट गया। सिंधी मुसलमानों के एक गुट ने शासन पर अधिकार कर लिया। शाह नवाज भुट्टो दीवान बन गए और नवाब अपने ही महल में बन्दी बना दिया गया।

यह मुक्त रूप से माना जाता है कि संघ-प्रवेश राजाओं के विशेष अधिकार की बात है। लेकिन भारत सरकार ने यह भी कह दिया था कि संघ-प्रवेश की अन्तिम तारीख १५अगस्त होगी। माउंटबेटन ने २५ जुलाई को राजाओं से जो अपील की थी उसका आधार भी यही था। माउंटबेटन के उस भाषण से दो तत्व और भी निकले थे। संघ-प्रवेश का निर्णय करने में जिनका ध्यान रखना आवश्यक माना गया था, उनमें से एक तो, माउंटबेटन के ही शब्दों में था "भौगोलिक विवशताएं, जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।" दूसरा प्रजा में किस धर्म वाले लोगों का बहुमत है।

यद्यपि जूनागढ़ के पास समुद्र-तट भी है, एक छोटा-सा बन्दरगाह, वेरावल भी, और वह कराची के साथ सीधी पहुंच का दावा भी कर सकता है, फिर भी स्पष्ट है कि उसका पाकिस्तान-संघ में शामिल होना पूरी संघ-प्रवेश-नीति की बुनियादी वैधानिकता को एक सीधी चुनौती होगी। काठियावाड़ के राज्यों और हैदराबाद की वार्ताओं पर इसका विनाशकारी प्रभाव पड़ेगा। हैदराबाद के उग्र-पंथी मुसलमानों को इससे बहुत प्रोत्साहन मिलेगा। जिन्ना ने अच्छी तरह से समझ लिया है कि जूनागढ़ के अलग रह जाने की भूल का भारी फायदा उठाया जा सकता है। भारत-सरकार ने जूनागढ़ पर भारत में शामिल होने के लिए कोई दबाव नहीं डाला। परन्तु जब जूनागढ़ के पाकिस्तान में प्रवेश करने के लक्षण दिखलाई पड़े तो भारत-सरकार ने पाकिस्तान सरकार से दो बार अनुरोध किया कि वह अपने इरादों का साफ़-साफ़ ऐलान करे लेकिन इनका, अब तक कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ।

माउंटबेटन ने मुझे उन बैठकों में बुलाया, जो वह जूनागढ़ के प्रश्न पर विचार-विमर्श करने के लिए इस्मे और वी. पी. मेनन के साथ कर रहे हैं। वी. पी. बहुत चिन्तित हैं। उन्होंने माउंटबेटन को समझाने का प्रयत्न किया कि फौजी और नौसैनिक ताकत का प्रदर्शन करना आवश्यक था। उन्होंने यह मानकर एक वक्तव्य तैयार किया कि पाकिस्तान जूनागढ़ को धन-जन से सहायता करने को तैयार था।

शाम को मैं इस्मे से मिलने उनके निवास-स्थान पर गया। मैंने पाया कि जूनागढ़ के प्रश्न से जो बेचैनी का वातावरण उत्पन्न हो गया था उससे उन्हें बहुत चिंता हो रही थी। उनका खयाल था कि पाकिस्तान के वर्तमान साधनों और दायित्वों को देखते हुए यह समाचार मूर्खतापूर्ण मालूम होता था कि वह जूनागढ़ में हस्तक्षेप करेगा और उसने जूनागढ़ के बन्दरगाह के विकास के लिए आठ करोड़ रुपयों का ऋण देने तथा उसकी सहायता के लिए २५,००० सेना भेजने का वचन दिया है।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
मंगलवार, १६ सितम्बर १९४७

हमें सूचना मिली कि जूनागढ़ के संघ-प्रवेश-पत्र पर हस्ताक्षर हो गए हैं और सील-सिक्का लगाकर उसे कराची भेज दिया गया है। परन्तु यह बात अभी तक सरकारी तौर पर पक्की नहीं हुई है। वी. पी. और माउंटबेटन की दुबारा बातचीत के समय मैं उपस्थित था। इस्मे ने जूनागढ़ के सम्बन्ध में जिन्ना की संभावित चालों पर बड़े तर्कपूर्ण ढंग से प्रकाश डाला। प्रत्यक्ष रूप में जूनागढ़ जिन्ना के लिए बेकार है। सैनिक दृष्टि से वह एक असह्य भार होगा। जहांतक बुद्धि काम करती है जिन्ना की नीति इधर-उधर बिखरे हुए मुस्लिम बहुमत वाले क्षेत्रों को मिलाने की नहीं है, क्योंकि अभी भारत के अन्दर चार करोड़ मुसलमान मौजूद हैं।

इस्मे का खयाल था कि जिन्ना की इस कार्रवाई का मूल उद्देश्य भारत को चक्कर में डाल कर परेशान करना था। उन्हें आशा थी कि भारत को युद्ध में फंसा कर वह कानूनी मुद्दों पर अपने पक्ष में फैसले करवा लेंगे। इसका उपयोग वे काश्मीर और हैदराबाद की बड़ी रियासतों पर अपने दांत लगाने में कर सकेंगे। कुछ हद तक जूनागढ़ हैदराबाद का एक छोटा रूप ही है। उसका नवाब मुसलमान है, किन्तु प्रजा अधिकांशतः हिन्दू। राज्य भी भारतीय प्रदेश के अन्दर है।

मैंने विज्ञप्ति का मसविदा तैयार कर लिया। कागजी तौर पर भारतीय पक्ष काफी मजबूत दिखलाई पड़ता था। परन्तु जहां तक पत्रों की प्रतिक्रिया का संबध था मुझे यह चेतावनी देनी पड़ी : "हालांकि उपरोक्त तर्क खुद में काफी सबल हैं, फिर भी इस समय सैनिक कार्रवाई करने से विदेशी पत्रों की प्रतिक्रिया बहुत हानिकारक होगी। किसी भी सैनिक कार्रवाई को आक्रमण-मूलक माना जायगा। विदेशी पत्र दोनों देशों की सैनिक कार्रवाइयों के बारे में बहुत सजग हैं।" मैंने सुझाव दिया कि अभी केवल यह घोषणा कर दी जाय कि जूनागढ़ का पाकिस्तान-प्रवेश हमें मान्य नहीं है और भविष्य में कोई भी कार्रवाई करने का हमारा अधिकार सुरक्षित है। बातचीत के लिए भी गुंजाइश छोड़ दी जाय।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
बुधवार, १७ सितम्बर १९४७

आज तीसरे पहर जूनागढ़ के बारे में मंत्रिमंडल की महत्वपूर्ण बैठक के पहले माउंटबेटन ने नेहरू और पटेल दोनों के साथ लम्बी बातचीत की। उन्होंने दोनों को समझाने की भरपूर कोशिश की कि हमें कोई ऐसी कार्रवाई नहीं करनी चाहिए जिससे संसार हमारी ओर अंगुली उठा सके। हमें उस प्रदेश के विरुद्ध, जो अब पाकिस्तान का हो चुका है, युद्ध का निश्चय भी नहीं करना चाहिए।

उन्होंने इस्मे के इस मत को दोहराया कि जिन्ना की यह सारी कार्रवाई एक जाल है। यह सब उनकी बृहत्तर योजना का अंग है जिसका उद्देश्य पाकिस्तान को संसार की दृष्टि में निर्दोष तथा असहाय राष्ट्र के रूप में पेश करना है, जिसपर भारतीय-आक्रमण का खतरा झूल रहा है। उन्होंने जोर दिया कि भारत जनमत-संग्रह के सिद्धान्त पर दृढ़ रहे जिसमें जनता की इच्छा भी मालूम की जा सके और हमला करके इलाके पर दखल करने के प्रश्न का भी अंत हो जाय।

माउंटबेटन को नेहरू को सहमत करने में कोई कठिनाई नहीं हुई, किंतु पटेल को समझाने में समय लगा। जूनागढ़ ने पटेल की सारी संघ-प्रवेश नीति और व्यक्तिगत भावनाओं पर भारी असर किया है। परन्तु माउंट-बेटन के तर्क और जिन्ना की मनोभावनाओं और इरादों के बारे में इस्मे के मत वह भी मान गए। मंत्रि-मंडल की बैठक में जाकर उन्होंने अपना नया दृष्टिकोण सामने रखा। इससे उनके साथियों को अचंभा तो जरूर हुआ होगा लेकिन अपने साथियों को समझाने में उन्हें मुश्किल नहींहुई। बैठक में यह दो निर्णय किये गए : एक—भारत की फौजें और संघ में शामिल होने वाली रियासतों की स्थानीय फौजें जूनागढ़ की सीमा पर तैनात कर दी जायं। लेकिन वे जूनागढ़ पर दखल न करें। दो—वी. पी. मेनन जूनागढ़ जाकर नवाब और दीवान को बतलायें कि उनके पाकिस्तान में शामिल होने के क्या नतीजे होंगे।

: १७ :

विस्थापितों के काफिले और जूनागढ़

सरकारी भवन, नई दिल्ली
रविवार, २१ सितम्बर १९४७

पूर्वी और पश्चिमी पंजाब के बीच विस्थापितों के काफिलों के लगभग चार सौ मील लम्बे रास्ते का दौरा करने के लिए आज सवेरे सवा सात बजे सोलह व्यक्तियों का एक दल गवर्नर-जनरल के डकोटा में पालम हवाई अड्डे से रवाना हुआ। सरकारी भवन के दल में थे माउन्टबेटन-दम्पति, इस्मे, वर्नोन और मैं। सरकार के प्रेक्षकों के दल में थे नेहरू, पटेल, नियोगी, राजकुमारी अमृतकौर, जनरल लॉकहार्ट, एच. एम. पटेल और शंकर। सरकार की विस्थापितों सम्बन्धी नीति के कड़े आलोचक पंडित कुंजरू को भी साथ चलने के लिए आमंत्रित किया गया किन्तु वह समय पर नहीं पहुंचे और हमें उनके बिना ही रवाना होना पड़ा। अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थानों पर हमारा जहाज जमीन से दो सौ फुट तक अक्सर उतर आता था।

पहले हम उत्तर-पश्चिमी दिशा में उड़ते हुए फिरोजपुर और कसूर की ओर चले। पूर्व में जालन्धर और लुधियाना से चले मुसलमान विस्थापितों की कतारें इसी मार्ग पर आगे बढ़ रही थीं। दूसरी ओर से गैर मुसलमानों के काफिले भी ब्यास नदी के संकरे बुलाकी-हेड पुल को पार कर इस मार्ग पर ही बढ़े चले आ रहे थे। पहले हम कलानौर के ऊपर से गुजरे जिसे, गैर-मुसलमानों से घिरा हुआ समझा जाता था। लेकिन हमने यहां ऐसी कोई बात नहीं देखी। कुछ लोगों को हमने शहर के बाहरी भाग में खड़े हुए और हाथ हिलाते जरूर देखा। फिर हम हिसार की ओर बढ़े, जो सड़कों और रेलों का बड़ा जंकशन है। यहां भी हमने शान्ति-भंग करने

वाली कोई बात नहीं देखी।

भयंकर उथल-पुथल का पहला आभास मिला भटिंडा पहुंचने पर, जो रेलों का बड़ा स्टेशन है। आदमियों से ठसाठस दो रेलगाड़ियां स्टेशन पर खड़ी थीं। कुछ विस्थापित डिब्बों की छत पर चढ़ने का उपक्रम कर रहे थे, कुछ खिड़कियों और पायदानों पर लटके हुए थे और कुछ लोग तो इंजिन तक पर जा चढ़े थे। फिरोजपुर पहुंचने पर फिर विस्थापितों से लदी ऐसी ही रेलें दिखलाई पड़ीं। रावी पहुंचते-पहुंचते जन-समुदाय के इस उन्माद भरे निष्क्रमण के आकार-प्रकार का पहला विहंगम दृश्य हमारे सामने आया। हम जिस दृश्य को देख रहे थे वह मानव-इतिहास का सबसे बड़ा निष्क्रमण था।

इसके पहले भी ऐसे मौके आये थे, हिन्दू, सिखों और मुसलमानों को किसी संकट के कारण, अपना माल-मत्ता बटोरकर और घरबार छोड़कर भागना पड़ा था। लेकिन पहले की ये घटनाएं बहुधा किसी एक ही सम्प्रदाय तक सीमित होती थीं और साथ ही यह आशा भी बनी रहती थी कि किसी-न-किसी दिन ये निष्क्रमणार्थी फिर अपने घरों को वापिस लौटेंगे। लेकिन आज बात दूसरी थी। इन निष्क्रमणार्थियों की संख्या पहले से कहीं विशाल थी और इस बार उनका लौटना कदापि न होगा।

निष्क्रमणार्थियों के काफिले की पहली झलक हमने फिरोजपुर और बुलाकी हेड के बीच देखी थी। इसका पीछा करते हुए हम रावी पार बहुत दूर तक उड़े। विस्थापितों के इस प्रवाह के साथ लगभग पचास मील आगे तक गये किन्तु इसका छोर न मिला। बीच-बीच में बैलगाड़ियों और पैदल चलनेवाले परिवारों की संख्या बिल्कुल इनी-गिनी रह जाती थी, लेकिन जरा आगे बढ़ते ही फिर घनी और अटूट कतारें नजर आने लगतीं।

बुलाकी हेड में, जो वास्तविक सीमा है, पुल पार करने की प्रतीक्षा करनेवाले विस्थापितों की अपार भीड़ थी और ऐसा लगता था मानो जबरदस्ती जमीन पर दखल करने वालों की बस्ती हो। यहां उनका चलना बिल्कुल रुक गया था, लेकिन वैसे भी उनकी गति बहुत धीमी थी। कुछ

घुड़सवार हमें दिखई पड़ रहे थे जो इधर-उधर घूमते हुए अपार जन-समूह को किसी प्रकार के आदेश दे रहे थे। सड़क के किनारे कुछ परिवार अपने जानवरों को लिये खड़े थे। कुछ लोगों की एकमात्र दौलत यह जानवर ही थे। लेकिन इनमें शायद ही कोई जानवर पुलपार कर सके। क्योंकि पुल पर इतनी भीड़ थी कि जो उसकी शक्ति से बाहर की थी।

भारत में दाखल होने पर लायलपुर-लाहौर सड़क पर धीमी गति से आगे बढ़ने वाले मुसलमान विस्थापितों का काफिला देखा। अमृतसर शहर को बचाकर निकलने के लिए उन्हें बहुत लम्बा चक्कर खाना पड़ा था। हमने यह अनुमान लगाया कि इस काफिले के एक सिरे से दूसरे सिरे तक उड़ने में हमें पन्द्रह मिनट से भी अधिक लगे जबकि हमारे विमान की गति लगभग एक सौ अस्सी मील प्रति घंटा थी। इस प्रकार यह काफिला कम-से-कम पैंतालीस मील लम्बा रहा होगा।

गत रविवार को हुए सम्मेलन में नेहरू और लियाकत ने कहा था कि शुरू-शुरू में वे आबादियों के सामूहिक परिवर्तन के कितने खिलाफ थे। लेकिन बाद में स्थिति उनके बूते के बाहर हो गई।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
सोमवार, २९ सितम्बर १९४७

माउंटबेटन का सारा दिन जूनागढ़ तथा पंजाब संबंधी नीति पर विचार करने वाली बैठकों में बीता। जूनागढ़ का संकट उत्तरोत्तर शतरंज की बड़ी जटिल बाजी का रूप धारण करता जा रहा है। इस शतरंज की बिसात है जूनागढ़, उसके पड़ोसी और अधीनस्थ राज्य, और मोहरे चलने वाले खिलाड़ी हैं कराची और दिल्ली।

पिछली बार जब लियाकतअली दिल्ली आये थे तब इस्मे ने उनसे बातचीत की थी। उसके आधार पर इस्मे को पूरा विश्वास हो गया था कि पाकिस्तान जूनागढ़ के मामले को काश्मीर के लिए सौदेबाजी का आधार

बनाना चाहता था। पाकिस्तान की यही चाल थी। इस विश्वास का सबूत लियाकतअली के इन शब्दों से मिला, जो उन्होंने उसी दिल्ली-प्रवास में माउंटबेटन से कहे थे, "अच्छी बात है, भारत को आगे बढ़कर युद्ध छेड़ने दीजिये। फिर देखियेगा क्या होता है।"

दस दिन पूर्व वी. पी. मेनन जूनागढ़ गये थे। उनकी यात्रा का परिणाम सीमित रहा था। वह दीवान से मिले। दीवान ने कहा कि नवाब अस्वस्थ हैं और उनसे मिलना नहीं हो सकेगा। लेकिन इतना जरूर हुआ कि मंगरोल की छोटी-सी रियासत के शेख वी. पी. की उपस्थिति का फायदा उठाकर अपनी रियासत से आये और स्वेच्छापूर्वक भारत-संघ में शामिल हो गए। इसके पहले मंगरोल जूनागढ़ को खिराज देने वाली रियासत थी। इसके पूर्व बाबरियावाड़ का शासक भी ऐसा ही कर चुका था। लेकिन मंगरोल वापिस लौटने पर शेख को संघ-प्रवेश का निर्णय रद्द करना पड़ा। २२ तारीख को भारत-सरकार ने निश्चय किया कि जिन परिस्थितियों में संघ-प्रवेश को रद्द करने का पत्र लिखा गया था, वे ऐसी थीं कि पत्र पर विचार नहीं किया जा सकता। जूनागढ़ ने मंगरोल पर इस रक्तहीन विजय से प्रोत्साहित होकर बाबरियावाड़ पर अपनी सेनाएं दौड़ा दीं।

ये घटनाएं पटेल के क्रोध को भड़काने के लिए काफी थीं। उनका खयाल था कि जूनागढ़ ने बाबरियावाड़ पर सैनिक चढ़ाई करके युद्ध छेड़ दिया है और भारत को उन सेनाओं को बाहर खदेड़ने के लिए सब आवश्यक कार्यवाही करनी चाहिए। वास्तविकता यह थी कि यदि शक्ति का प्रदर्शन और अन्तिम उपाय के रूप में उसका प्रयोग नहीं किया जायगा तो वह त्याग-पत्र दे देंगे।

माउंटबेटन ने कल नेहरू को एक पत्र लिखकर सैनिक कार्यवाहियों की योजनाएं बनाने और उन्हें कार्यान्वित करने के अन्तर पर प्रकाश डाला। उन्होंने जोर दिया कि दोनों उपनिवेशों के बीच प्रत्यक्ष युद्ध से न केवल दोनों की नैतिक प्रतिष्ठा कम हो जायगी, बल्कि दोनों का अस्तित्व भी भयानक खतरे में पड़ जायगा। माउंटबेटन की यह सलाह मान ली

गई। किन्तु दुर्भाग्यवश भारतीय सेना की तीनों शाखाओं के प्रमुखों ने अपनी स्वतंत्र समझ से भी इसी खतरे की ओर ध्यान दिलाया और इस काम में वे सैनिक सलाह की सीमा का उलंघन कर राजनैतिक क्षेत्र में पहुंच गए। इसने पटेल के क्रोध की आग में घी का काम किया।

माउंटबेटन ने एक बीच का रास्ता सुझाया। उनके अनुसार जूनागढ़ के आसपास के विवादरहित प्रदेश में भारतीय सेना की कुमुक भेजना जारी रखा जा सकता था। उन्होंने यह भी सलाह दी कि लियाकत को काठियावाड़ में आयोजित सैनिक गति-विधि की सूचना दे दी जाय और भारत-सरकार स्पष्ट घोषणा कर दे कि जिस राज्य के संघ-प्रवेश का प्रश्न विवादग्रस्त होगा, उसके सम्बन्ध में भारत सरकार वहां के जनमत का निर्णय स्वीकार करेगी।

सरकारी भवन, नई दिल्ली
बुधवार, १ अक्तूबर १९४७

लियाकत संयुक्त सुरक्षा-कौंसिल की बैठक में भाग लेने के लिए दिल्ली आये। मेरा खयाल है कि आज सवेरे की बैठक बड़ी संकटपूर्ण रही। बैठक के बाद दोपहर के खाने के समय मेहमान थे नेहरू और लियाकत और कर्मचारी मंडल में वर्नोन तथा मैं। यहां भी वातावरण कुछ-कुछ तनावपूर्ण था। अम्बाला से मुसलमानों के निष्क्रमण के प्रश्न पर लियाकत नेहरू से उलझ पड़े। ऐसे मौके पर हम सबकी यही इच्छा थी कि किसी भी तरह विषय को बदल दिया जाय, लेकिन ऐसा करना शक्ति से बाहर था।

इस तनावपूर्ण बातचीत का असली कारण यह था कि पाकिस्तान सरकार ने पश्चिमी पंजाब की सीमा में स्थित रावी पार 'बुलाकी हेड' पुल पर आवागमन बन्द कर दिया था। कौंसिल की बैठक में पटेल ने लियाकत को इस पुल को खुलवाने के लिए हरचन्द मनाने की कोशिश की, लेकिन कोई

फल नहीं हुआ। बाद में, निजी चर्चा के समय माउंटबेटन ने लियाकत से अन्तिम अपील की और पाकिस्तान रवाना होने से पूर्व वह लियाकत से इस फैसले को रद्द करवाने में सफल हुए।

जूनागढ़ के बारे में भी कुछ साफ-साफ बातें हुईं। माउंटबेटन को पहले तो किसी प्रधान मंत्री द्वारा इस प्रश्न को उठवाने में ही भारी कठिनाई का सामना करना पड़ा। लियाकत का रुख था—"मैं क्यों उठाऊं ? हमने कोई गलती नहीं की। यदि भारत को परेशानी है तो वह उठाये।" उधर नेहरू महसूस करते थे कि यदि मैंने प्रश्न उठाया तो इसे कमजोरी का चिह्न समझा जायगा। आखिर माउंटबेटन ने लियाकत को चर्चा छेड़ने के लिए राजी कर लिया। मंगरोल और बाबरियावाड़ पर बाचचीत होने लगी। नेहरू और माउंबेटन ने स्पष्ट किया कि इन दोनों राज्यों को भारत में शामिल होने का पूरा अधिकार है। नेहरू ने लियाकत से अनुरोध किया कि वह बाबरियावाड़ से जूनागढ़ की फौजें हटाने का आदेश दें। जब ये बातें हो रहीं थीं उसी समय एक तार मिला कि जूनागढ़ की सेनाएं मंगरोल में घुस गईं हैं। नेहरू ने वचन दिया कि यदि जूनागढ़ की सेनाएं तुरन्त हटा ली गईं तो वह भारतीय सेनाओं को तबतक उन रियासतों में दाखल न होने देंगे, जबतक उन दोनों की कानूनी स्थिति किसी उच्चतर अधिकारी द्वारा तय न करा ली जायगी।

इस विषय में लियाकत का रुख समझौते का था, किन्तु जूनागढ़ के पाकिस्तान-प्रवेश के प्रश्न पर उनका हठ था कि उन्होंने जो किया वह ठीक था। उनके तर्क का आधार यह था कि राज्य के शासक को नैतिक या साम्प्रदायिक पहलुओं का विचार किये बिना किसी भी संघ में शामिल होने का पूरा अधिकार है।

: १८ :

काश्मीर का झमेला

सरकारी भवन, नई दिल्ली
मंगलवार, २८ अक्तूबर १९४७

सोमवार के सवेरे से भारतीय सेनाएं हवाई जहाज द्वारा काश्मीर जा रही थीं, यह सूचना पालम हवाई अड्डे पर उतरते ही वर्नोन ने मुझे दी। लगभग पौने तीन बजे रात को मैं सोने की तैयारी कर रहा था कि इतने में पीट रीस ने मुझे बुलाया और कहा कि माउन्टबेटन काश्मीर की नवीनतम स्थिति के बारे में मुझे तत्काल जानकारी देने को बुला रहे हैं।

माउन्टबेटन ने कहा कि घटनाओं ने गम्भीर रूप धारण कर लिया है। काश्मीर की ग्रीष्म राजधानी श्रीनगर पर तेजी से आने वाले उत्तर-पश्चिमी सीमान्त-प्रदेश के कबाइलियों का विशाल हमला रोकने के लिए पहली सिख बटालियन के तीन सौ तीस सिपाही काश्मीर भेजे जा चुके हैं। वह चाहते थे कि समाचार पत्रों से सम्पर्क बना रहने का काम मैं कल सवेरे से ही शुरू कर दूं। लेकिन वह महसूस कर रहे थे कि इसके लिए पहले यह जरूरी होगा कि हम इस घटना के उन मूल-तत्वों को जान लें जो हमारे लन्दन-प्रवास के दौरान में घटी थीं। मुझे इतनी जानकारी तो थी कि सितम्बर के प्रारम्भ में काश्मीर और पाकिस्तान के बीच कायम हुए नये-नये सम्बन्धों में गड़बड़ी उठ खड़ी हुई थी। काश्मीर सरकार ने पाकिस्तान पर यह आरोप लगाया था कि वह कई अत्यावश्यक वस्तुएं भेजने में आना-कानी कर रहा है और साथ ही सीमावर्त्ती हमलों के बारे में भी शिकायत की थी। उधर पाकिस्तान ने भी प्रत्युत्तर में कई आरोप लगाए थे। सत्ता हस्तां-तरण और संघ-प्रवेश की आखिरी तारीख के तीन दिन पहले काश्मीर सरकार ने भारत और पाकिस्तान दोनों के साथ "यथास्थिति समझौते" पर

हस्ताक्षर करने के अपने निश्चय की घोषणा की। इसके फलस्वरूप भारत सरकार की नीति यह थी कि काश्मीर को संघ-प्रवेश के लिए कुछ भी कहा-सुना न जाय। इतना ही नहीं, पटेल के आदेशानुसार रियासती सचिवालय ने ऐसे सब कामों से अपना हाथ खींच लिया, जिनका अर्थ काश्मीर पर दबाव डालना हो सकता था और उन्होंने यह आश्वासन दिया कि काश्मीर का पाकिस्तान में शामिल होना भारत में ग़लत नहीं समझा जायगा। प्रस्तुत संकट का सब में बड़ा कारण काश्मीर-नरेश की निर्णय न करने की पुरानी बीमारी समझना चाहिए। अगर कोई भी मार्ग अविलम्ब अपना लिया गया होता तो काश्मीर इस आफत से बच जाता। टालमटोल ही घातक सिद्ध हुआ। लेकिन लगता यह था कि बड़े संकट का सामना करने के लिए निजाम की भांति काश्मीर नरेश भी अपने कूटनीतिक तरकस के इसी तीर का आसरा लेते हैं।

आज जो कदम उठाया गया था उसकी सैनिक और राजनैतिक प्रतिक्रिया काफी गम्भीर होगी, इसके बारे में माउन्टबेटन को किसी प्रकार क़ा शक नहीं। हालांकि अब वह सलाह देने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कर सकते, लेकिन मेरी यह दृढ़ धारणा थी कि उनकी उपस्थिति ने पंजाब और जूनागढ़ की समस्याओं में उलझी उनकी सरकार को नाजुक खतरों से बचाने में भारी सहायता पहुंचाई थी।

उनसे मुझे पता चला कि गत शुक्रवार की रात को (२४ अक्तूबर) स्याम के विदेश-मंत्री के स्वागत में दिये गए भोज के समय नेहरू ने इस अशुभ समाचार का पहली बार जिक्र किया था और बतलाया था कि सैनिक लारियों द्वारा कबाइलियों को रावलपिंडी रोड से काश्मीर भेजा जा रहा है। रियासती सेनाओं का कहीं पता नहीं था और स्थिति बहुत ही खतरनाक होती जा रही थी। माउन्टबेटन शनिवार २५ अक्तूबर को सुरक्षा-कमेटी की बैठक में उपस्थित थे। उसमें जनरल लॉकहार्ट ने पाकिस्तान सेना के प्रधान कार्यालय से प्राप्त एक तार पढ़ कर सुनाया, जिसमें कहा गया था कि लगभग पांच हजार कबाइलियों ने मुजफ्फराबाद और

दोमेल पर कब्ज़ा कर लिया था और बड़ी भारी संख्या में कबाइली कुमुक इन स्थानों में पहुंचने की संभावना है। सूचनाओं से पता चलता था कि वे श्रीनगर से पैंतीस मील से ज्यादा दूर पर नहीं थे।

सुरक्षा समिति का विचार था कि तात्कालिक आवश्यकता शस्त्र और गोला-बारूद भेजने की है, जिसकी काश्मीर सरकार ने मांग की थी। इसकी मदद से श्रीनगर की स्थानीय जनता हमलावरों के खिलाफ थोड़ी-बहुत मोर्चेबंदी कर सकेगी। सेनाएं भेजने के प्रश्न पर भी विचार किया गया। इस पर माउन्टबेटन ने समझाया कि जबतक काश्मीर भारत-संघ में शामिल नहीं हो जाता तबतक वहां सेनाएं भेजना खतरनाक होगा। उन्होंने यह भी कहा कि संघ-प्रवेश अस्थायी होना चाहिए और उसकी पुष्टि बाद में जनमत-संग्रह द्वारा की जाय।२५ तारीख की बैठक में इन महत्वपूर्ण प्रश्नों पर कोई आखिरी फैसला नहीं किया गया, लेकिन यह जरूर तय हुआ कि वी. पी. मेनन तुरन्त हवाई जहाज से श्रीनगर जायं और वहां की ठीक-ठीक स्थिति का पता लगावें।

दूसरे दिन सुरक्षा-समिति को जो जानकारी मेनन ने श्रीनगर से लौट कर दी वह निश्चय ही काफी चिंताजनक थी। उन्होंने बतलाया कि घटनाओं के इस तेज दौर से महाराज के हाथ-पैर फूल गए हैं और वह अपने एकाकीपन और बेबसी के भार से दबे हुए हैं। आखिर स्थिति की गंभीरता का बोध उन्हें हुआ और उन्होंने महसूस किया कि अगर भारत ने सहायता नहीं दी तो सब चौपट हो जायगा। मेनन की जोरदार सलाह को मान कर उसी दिन महाराज ने अपनी पत्नी और पुत्र के साथ श्रीनगर छोड़ दिया। मेनन ने उन्हें समझाया कि हमलावरों ने बारामूला पर अधिकार कर लिया है। इसलिये उनका राजधानी में ठहरना भारी भूल होगी। महाराज ने संघ-प्रवेश-पत्र पर भी हस्ताक्षर कर दिए। इस पत्र को मेनन ने संघ-सुरक्षा-कमेटी के सामने पेश किया।

जहां तक सैनिक स्थिति का प्रश्न था, मेनन ने राय दी कि श्रीनगर में बाकी बची फौजें हमलावरों को रोकने में कामयाब नहीं होंगी, क्योंकि

वह घुड़सवार सेना का एक स्क्वेडरन मात्र है। इस निराशापूर्ण परिस्थिति को ध्यान में रखकर मंत्रि-मंडल ने निश्चय किया कि महाराज द्वारा भेजे संघ-प्रवेश-पत्र को स्वीकार किया जाय और दूसरे दिन सवेरे पैदल सेना की एक बटालियन हवाई जहाज द्वारा रवाना की जाय।

इसके बाद माउन्टबेटन ने मुझे विस्तार के साथ बतलाया कि उन्होंने संघ-प्रवेश के प्रश्न पर सुरक्षा-समिति में यह रुख क्यों अपनाया था और क्यों वह इस विषय पर अपने पहले के मत को बदलने के लिए बाध्य हुए थे। उन्होंने कहा कि महाराज को उन्होंने यह सलाह दी थी कि वह सत्ता-हस्तांतरण के पहले यह निश्चय कर लें कि वह किस देश में शामिल होंगे। लेकिन साथ ही, उन्होंने जून में, अपनी काश्मीर-यात्रा के समय से लेकर अपना सारा जोर इस बात पर लगाया था कि जनता का मत लिये बिना वह दोनों में से किसी भी देश में शामिल न हों। जनता की राय वह मत-गणना या चुनाव या सार्वजनिक प्रतिनिधि सभाओं द्वारा प्राप्त कर सकते थे। जब पिछले अड़तालीस घण्टों में उन्हें निश्चय हो गया कि अपने सेनापतियों और खुद उनकी सैनिक सलाह के बावजूद सरकार काश्मीर की प्रार्थना पर हवाई जहाज द्वारा सहायता के लिए फौज भेजने पर तुली हुई है तो वह फिर संघ-प्रवेश के प्रश्न पर अड़ गए।

उन्होंने कहा कि एक तटस्थ देश में फौजें भेजना भयंकर भूल होगी, क्योंकि ऐसा करने का हमें कोई अधिकार नहीं और पाकिस्तान भी चाहे तो ऐसा कर सकता है। और ऐसा होने का नतीजा सिवा युद्ध के और कुछ नहीं होगा। इसलिये उन्होंने अनुरोध किया कि यदि वे फौजें भेजने पर तुले हुए हैं तो इसकी अनिवार्य शर्त यह होगी कि इसके पूर्व ही संघ-प्रवेश की कार्यवाही पूरी हो जाय और यदि यह स्पष्ट नहीं कर दिया जाता कि संघ-प्रवेश काश्मीर हथियाने की चाल मात्र नहीं तो यह खुद युद्ध भड़काने का कारण बन सकता था। इसलिए उन्होंने इजाजत चाही कि अपनी सरकार की तरफ से महाराज के संघ-प्रवेश के विलय-पत्र के उत्तर में भेजे जाने वाले पत्र में उन्हें यह भी जोड़ने दिया जाय: यह संघ-

प्रवेश जनता की इच्छा पर निर्भर करेगा, जिसका निश्चय न्याय और व्यवस्था कायम होते ही किया जायगा। यह सिद्धान्त तुरन्त स्वीकार कर लिया गया और नेहरू ने निर्विरोध इसे प्रस्ताव के रूप में पेश कर दिया।

संघ-प्रवेश के बाद लोकप्रिय सरकार की स्थापना करने के उद्देश्य से महाराज ने नेशनल कांफ्रेंस के नेता शेख अब्दुल्ला को जेल से रिहा कर दिया था। अब उन्हें अन्तरिम सरकार का प्रधान बनाया जा रहा था। संघ-प्रवेश की नियमितता असंदिग्ध थी। इस प्रश्न पर जिन्ना को अपनी ही चाल का शिकार होना पड़ा, क्योंकि उन्होंने ही जूनागढ़ के प्रश्न पर शासक के व्यक्तिगत निर्णय के अधिकार की अकाट्यता का सिद्धान्त पेश किया था।

चार बजे सवेरे के जरा पहले ही माउन्टबेटन ने हमारे ऊपर तरस खा कर हमें छुट्टी दे दी, अन्यथा मैं शायद उनके सामने ही झपकी लेने लगता।

आज के आफत भरे दिन ही सारी-की-सारी चीजें एक साथ टूट पड़ी थीं। पत्रकारों को मुलाकातें देने के लम्बे तांते के बाद माउन्टबेटन और नेहरू से चर्चा करने के लिए बुलावा आ गया। उनके साथ आजतक की शासकीय सफलताओं के बारे में एक वक्तव्य तैयार करने के प्रश्न पर चर्चा हुई। इस वक्त तो यह चीज मुझे एक अच्छी-खासी दिमागी कसरत लग रही थी। नेहरू को इतना परेशान और अस्वस्थ देख कर मुझे बड़ा सदमा पहुंचा।

माउन्टबेटन 'स्टेट्समैन' के सम्पादकीय रुख से चिंतित थे। इस पत्र ने बिगड़ते हुए भारत-पाक-सम्बन्धों से व्यग्र होकर भारतीय सेनाओं के काश्मीर-प्रवेश की भर्त्सना कर डाली थी। माउन्टबेटन ने मुझसे कहा कि पत्र के सम्पादक आइन स्टीफेंस को मिलने के लिए बुलाने की व्यवस्था करो। लगभग एक घंटे बाद आइन स्टीफेंस हमारे बीच आ पहुंचे। माउन्ट-बेटन ने बातचीत शुरू करते हुए कहा, "किसी राष्ट्र का निर्माण तिकड़म-बाजी के आधार पर नहीं किया जा सकता।" उन्होंने कहा कि एबटाबाद में बैठे जिन्ना विजेता के रूप में काश्मीर पहुंचने की आस लगाये हैं। उनकी

आशाओं पर तुषारपात हो गया। पहले जूनागढ़ की घटना घटी और फिर कल हैदराबाद के प्रतिनिधि मंडल के जबरन रोके जाने की प्रमादपूर्ण घटना। काश्मीर के बारे में भारत ने जो कदम उठाया वह बिलकुल अलग किस्म की बात थी। जनमत को स्वीकार करने का अपना निश्चय उसने पहले ही घोषित कर दिया था। अगर कोई फौजी कदम नहीं उठाया जाता तो कबाइलियों द्वारा कत्लेआम किया जाना अनिवार्य हो जाता—श्रीनगर के कुछ सौ ब्रिटिश नागरिक भी उससे नहीं बचते। महाराज द्वारा संघ-प्रवेश कर लेने के बाद जो भी कदम उठाये गए वे कानूनी तौर से बिलकुल जायज हैं।

अपनी चर्चा समाप्त करते हुए उन्होंने स्टीफेंस से कहा कि आचिन्लेक के हस्तक्षेप के फलस्वरूप जिन्ना को इस बात के लिए राजी किया जा सकता है कि काश्मीर-संकट के विषय में चर्चा करने के लिए माउन्टबेटन और नेहरू को कल लाहौर आमंत्रित किया जाय।

आज की सुरक्षा समिति की बैठक के बाद आचिन्लेक ने लाहौर से माउन्टबेटन को फोन पर कहा कि उन्होंने जिन्ना को कल रात का उनका यह हुक्म रद्द करने पर राजी कर लिया है कि पाकिस्तानी सेनाएं काश्मीर में भेज दी जायं। जनरल मेसर्वी की अस्थायी अनुपस्थिति में जिन्ना का हुक्म पाकिस्तान के कार्यवाहक प्रधान सेनापति जनरल ग्रेसी के पास पश्चिमी पंजाब के गवर्नर के सेक्रेटरी द्वारा पहुंचा था, जहां जिन्ना ठहरे हुए थे। ग्रेसी ने उत्तर दिया कि सर्वोच्च सेनापति की स्वीकृति के बिना वह ऐसे कोई आदेश जारी करने को तैयार नहीं। ग्रेसी के जरूरी बुलावे पर आचिन्लेक आज सवेरे हवाई जहाज से लाहौर पहुंचे। उन्होंने जिन्ना को समझाया कि चूंकि काश्मीर भारत-संघ में शामिल हो गया है, इसलिए भारत सरकार को महाराज की प्रार्थना पर अपनी सेनाएं काश्मीर में भेजने का पूरा-पूरा अधिकार है।

आचिन्लेक के वहां से चलने के पूर्व न सिर्फ यह हुक्म ही रद्द कर दिया गया बल्कि माउन्टबेटन और नेहरू को लाहौर आने का निमंत्रण भी दे दिया गया।

टेलीफोन पर लंबी माथापच्ची करने के बाद जब बर्नोन काफी देर के बाद रात का खाना खाने पहुंचे तो उन्होंने कहा, "सब चौपट हो गया।" उन्होंने कहा कि "सारी योजना ठंडी हो गई, क्योंकि अस्वस्थता के कारण नेहरू लाहौर जाने में असमर्थ हैं।"

आज रात फिल्म-प्रदर्शन के बाद माउन्टबेटन ने रोनी, वर्नोन तथा मुझे आज की घटनाओं पर चर्चा करने के लिए बुलाया। माउन्टबेटन ने कहा कि उन्होंने आज सवेरे हुई सुरक्षा समिति की बैठक में लाहौर जाने के लिए बहुत जोर डाला। उनका रौब इतना अधिक था कि वहां तो किसी ने उनका विरोध नहीं किया, किन्तु उन्हें पता चला कि आज तीसरे पहर मंत्रिमंडल की बैठक में नेहरू पर लाहौर न जाने के लिए भारी दबाव डाला गया। घर पहुंचने पर नेहरू कमजोरी के मारे गिरते-गिरते बचे और उन्हें लिटा दिया गया। माउन्टबेटन का विश्वास था कि नेहरू की अस्वस्थता वास्तविक है। नेहरू इस बात के लिए सहमत हो गए कि माउन्टबेटन जिन्ना को सन्देश भेज कर उनकी बीमारी की बात बतलाते हुए बैठक की तारीख बढ़ाने के लिए कहें। माउन्टबेटन ने कल सवेरे जिन्ना को फोन करने का निश्चय किया, जिससे नेहरू के स्वास्थ्य के बारे में व्यक्तिगत जानकारी दे सकें और उन्हें खुद दिल्ली बुलाने की कोशिश कर सकें।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
बुधवार, २९ अक्तूबर १९४७

माउन्टबेटन आज सवेरे नेहरू को देखने उनके घर गये। पटेल भी वहां पहुंचे। लाहौर-यात्रा की उपादेयता के विषय में साफ-साफ बातें हुईं। माउन्टबेटन ने कहा कि वह अकेले जाने को तैयार हैं—जब दोनों देशों को विनाश से बचाने का सवाल सामने है तो वह अपने स्वाभिमान की भावनाओं को ताक पर रखने के लिए तैयार हैं। पटेल ने कहा कि वह और मंत्रिमंडल के अन्य सदस्य दोनों में से किसी के भी जाने के सख्त खिलाफ हैं। इसपर

माउन्टबेटन ने याद दिलाई कि लियाकत भी बीमार हैं और संयुक्त सुरक्षा-कौंसिल की बैठक वैसे भी इस सप्ताह होने को है। इस बैठक में भाग लेने के लिए नेहरू और उनका लाहौर जाना दोस्ती की भावना को बल देगा। नेहरू राजी हो गए। माउन्टबेटन ने सरकारी भवन लौटते ही जिन्ना को फोन किया। जिन्ना को इस प्रस्ताव से खुशी हुई। पांच मिनट बाद डून केम्पबेल ने मुझ से फोन पर पूछा कि क्या इस अफवाह में कोई सचाई है कि माउन्टबेटन ने अभी-अभी जिन्ना से बात की है।

माउन्टबेटन की आज गांधीजी के साथ नव्वे मिनट तक बातचीत हुई। कल की प्रार्थना सभा के समय महात्माजी ने काश्मीर के बारे में एक बिल्कुल 'चर्चिल-पंथी' बात कह डाली थी। उसका भाव कुछ इस प्रकार था—फल भगवान के हाथ में है। मनुष्य तो केवल कर या मर ही सकता है। यदि काश्मीर की रक्षा करने वाली नन्ही-सी भारतीय सेना का थर्मोपली की वीरता से रक्षा करने वाली स्पार्टा-फौजों के समान सफाया हो गया, तो भी वह आंसू नहीं बहाएंगे। शेख अब्दुल्ला और उनके मुसलमान, हिन्दू तथा सिख साथी यदि काश्मीर की रक्षा करते हुए काम आयंगे तो उन्हें जरा भी दुख नहीं होगा। पूरे भारत के लिए यह एक ज्वलंत उदाहरण होगा। इस वीरता भरे मुकाबले का पूरे देश पर असर पड़ेगा और सब लोग यह भूल जायंगे कि हिन्दू, मुसलमान और सिख कभी एक-दूसरे के दुश्मन भी रहे थे।

तात्कालिक सैनिक स्थिति गंभीर थी। सोमवार को जो बटालियन हवाई जहाज द्वारा भेजी गई थी उसके कमांडिंग अफसर मारे गए थे। फौजों को पीछे हटना पड़ा था और श्रीनगर के पश्चिम में लगभग साढ़े चार मील की दूरी पर भयंकर युद्ध हो रहा था।

यह ध्यान देने की बात है कि काश्मीर के संकट की हैदराबाद पर बड़ी तेज प्रतिक्रिया हुई। काश्मीर के संघ-प्रवेश और वहां फौजों के पहुंचने के चौबीस घंटे बाद ही यह समाचार आया कि दिल्ली में यथास्थिति समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए रवाना होने वाले हैदराबादी प्रतिनिधि मंडल

को इत्तिहादी भीड़ द्वारा बड़े नाटकीय ढंग से प्रस्थान करने से रोक लिया गया था। इस अभूतपूर्व घटना के विस्तृत समाचारों की प्रतीक्षा की जा रही थी, लेकिन यह बात स्पष्ट है कि अपने विशेषाधिकारों से चिपटे रहने की कोशिश में निजाम पर इत्तिहाद के धर्मान्ध लोगों की पकड़ बढ़ती जा रही थी।

अभाग्यवश मुझे जोर की सर्दी हो गई और आज का दिन मुझे बिस्तर पर ही बिताना पड़ा।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
गुरुवार, ३० अक्तूबर १९४७

एक दिन और बिस्तर पर बिताया।

भोजन के बाद पीट रीस मुझे समाचारों से अवगत रखने के लिए आये। उन्होंने कहा कि काश्मीर की स्थिति बड़ी अस्पष्ट है और समाचार प्राप्त करने की उचित व्यवस्था नहीं। उन्हें विश्वास था कि यदि कबाइली अपनी ही लूट-वृत्ति से प्रेरित होकर चलते तो अबतक श्रीनगर पहुंच गए होते; किन्तु आजाद हिंद फौज के भूतपूर्व अधिकारियों के अधीन, वे अधिक सतर्क दिखलाई पड़ते थे।

सुरक्षा-समिति की एक बैठक के बाद नेहरू के संयुक्त सुरक्षा कौन्सिल की बैठक के लिए लाहौर जाने की बात औपचारिक रूप से पुष्ट कर दी गई और उसकी घोषणा भी हो गई। परन्तु उन्हें माउन्टबेटन के पास संदेश भेजना पड़ा कि डाक्टर अब भी उन्हें पूरी तौर से ठीक नहीं बताते। आखिर माउन्टबेटन को अकेले ही जाना होगा। नेहरू पाकिस्तान सरकार के एक वक्तव्य से बहुत संतप्त थे। यह वक्तव्य समय देखकर निकाला गया था। जान पड़ता था कि जिन्ना ने इसी कला को कूटनीतिक प्रभाव डालने का आधार बनाया। यह तरीका असल में ऐसा था जिससे कूटनीति 'असंभव' हो जाती है। वक्तव्य में काश्मीर के भारत-प्रवेश को "धोखे और हिंसा

पर आधारित" बताया गया था और कहा गया था कि "इस कारण उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।" उसमें कहा गया था, "इस बात का निश्चित प्रमाण है कि काश्मीरी फौजों का उपयोग पहले राज्य के मुसलमानों और पाकिस्तान के सीमावर्ती मुस्लिम गांवों पर आक्रमण करने के लिए किया गया। इस सबसे पाकिस्तान के पठान-आक्रमणकारी उत्तेजित हो गए।" . . . . वक्तव्य के शब्द ऐसे थे जिनके कारण भी माउन्टबेटन का नेहरू को अपने साथ ले जाना असंभव था।

जूनागढ़ के समाचार इन नये समाचारों के आगे फीके पड़ गए। फिर भी उसका प्रश्न प्रत्येक व्यक्ति की चिन्ता का विषय बना हुआ था। सरकार कल मंगरोल और बाबरियावाड़ का शासन अपने हाथ में लेने का विचार कर रही थी। हमारी लंदन-यात्रा के दौरान में माउन्टबेटन ने कूटनीतिक साधनों द्वारा प्रश्न को हल करने की कोई कोशिश उठा नहीं रक्खी। अब जूनागढ़ का सम्बन्ध काश्मीर की घटनाओं के साथ जुड़ गया था। जूनागढ़ के उदाहरण के बाद काश्मीर के भारत-प्रवेश पर पाकिस्तान की आपत्ति बेढंगी मालूम होने लगी। जब काश्मीर भारत में शामिल होता है तब तो "धोखा और हिंसा" लेकिन जब जूनागढ़ पाकिस्तान में शामिल होता है तो कानूनी रूप से वैध। भारत के लिए जूनागढ़ संबंधी प्रचार का तात्कालिक महत्व बहुत अधिक था, परन्तु पटेल अपने को रियासती-मंत्री पहले और प्रचार-मंत्री बाद को मानते थे।

यह मानना होगा कि भारत सरकार को उत्तेजित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी गई थी। १ अक्तूबर को लियाकत के साथ भेंट होने के बाद नेहरू को कम-से-कम तीन बार पाकिस्तान सरकार को लिखना पड़ा कि मंगरोल तथा बाबरियावाड़ से जूनागढ़ की सेनाएं तुरन्त हटाई जावें। तीन सप्ताह बाद लियाकत का उत्तर आया, जिसमें पहले के एक लापता उत्तर का उल्लेख था और कहा गया था कि सेनाएं हटाने का आदेश दिया जा रहा है। इसके बाद भी हुआ कुछ नहीं।

अक्तूबर १६ को लाहौर में संयुक्त सुरक्षा-कौन्सिल की बैठक

में लियाकत ने कहा कि मैं जूनागढ़ में जनमत-संग्रह के सिद्धान्त को मानने के लिए तैयार हूं। नेहरू ने प्रस्ताव किया कि वी. पी. मेनन को सामान्य विचार-विमर्श के लिए लाहौर भेजा जाय। लियाकत ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और वी. पी. को कराची भेजने को कहा। २१ तारीख को सुरक्षा-समिति ने स्वीकार कर लिया कि मंगरोल और बाबरियावाड़ पर अधिकार करना ही होगा। दो दिन बाद एक योजना बनाई गई और उसके दो दिन बाद—किन्तु काश्मीर के विस्फोट से केवल ३६ घंटे पूर्व—उसे अंतिम रूप से स्वीकार कर लिया गया।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
रविवार, २ नवम्बर १९४७

अपने परिवार से मिलने मैं हवाई जहाज से शिमला गया था। जब दिल्ली लौटा तब मुझे माउन्टबेटन-परिवार के साथ भोजन करने का निमंत्रण मिला। अतिथियों में बीकानेर के महाराजा भी थे। भोजन के बाद एक फिल्म दिखाई गई, जिसमें विस्थापितों की निकासी और कल्याण-कार्य में बीकानेर राज्य के सहयोग का प्रदर्शन था। बीकानेर महाराज इस फिल्म की टीका करते जाते थे। इस सुन्दर रंगीन फिल्म में यह दिखाया गया था कि किस प्रकार पांच लाख से अधिक विस्थापित राज्य से बाहर भेजे गए। ये लोग हजारों के झुंड बना कर ऊसर जमीन पर होते हुए आगे बढ़ने लगे। इसके कारण बीकानेर की साधन-सामग्री तथा यातायात के साधनों पर, अचानक अत्यधिक भार आ पड़ा। इस पर भी सारी निकासी में केवल १५० मुसलमानों की रास्ते में मृत्यु हुई।

माउन्टबेटन खुश थे। उन्होंने मुझे बताया कि लाहौर में उनकी जिन्ना से ३॥ घंटे तक बातचीत हुई, जिससे उन्हें संतोष था। दोनों ने काफी खुल कर बातचीत की। यदि वह अपने-अपने प्रधान मंत्रियों के साथ होते तो ऐसा सम्भव न हो पाता। जिन्ना ने बातचीत की शुरुआत इस शिकायत से

की कि भारत सरकार ने अपने इरादों की चेतावनी पाकिस्तान सरकार को समय पर नहीं दी। माउन्टबेटन ने उत्तर दिया कि जिस बैठक में काश्मीर को हवाई जहाज से फौज भेजने का निर्णय किया गया, उसकी समाप्ति पर नेहरू ने जो काम सबसे पहले किया, वह था लियाकतअली को तार देना। तब जिन्ना ने अपने इस सार्वजनिक वक्तव्य को दोहराया कि काश्मीर का भारत में मिल जाना वास्तविक नहीं, क्योंकि वह हिंसा और धोखेधड़ी पर आधारित था, और इसलिए उसको पाकिस्तान स्वीकार नहीं कर सकता।

इसके बाद तर्क-वितर्क का एक बड़ा ही विषम-चक्र चल पड़ा। माउन्टबेटन ने इस बात को स्वीकार किया कि बल-प्रयोग के ही कारण काश्मीर भारत में सम्मिलित हुआ है। किन्तु बल-प्रयोग कबाइलियों की ओर से हुआ था, जिसके लिए भारत नहीं, पाकिस्तान उत्तरदायी था। इसके उत्तर में जिन्ना ने कहा कि मेरी राय में तो सेना भेजकर भारत ने ही बल-प्रयोग किया है। किन्तु माउन्टबेटन अपने इसी तर्क पर अड़े रहे कि बल-प्रयोग तो वास्तव में कबाइलियों ने किया। बहस इसी तरह चलती रही। आखिर जिन्ना इसे माउंटबेटन की धांधली कह कर अपने क्रोध को छिपा नहीं सके।

माउन्टबेटन ने जिन्ना को बतलाया कि श्रीनगर में भारतीय सेनाओं की शक्ति कितनी थी और अगले कुछ दिनों में वह कितनी बढ़ जायगी। उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि अब कबाइलियों के श्रीनगर में घुसने की संभावना नहीं रही। इस पर जिन्ना ने फिर अपना वही पुराना प्रस्ताव रखा कि दोनों दल अपनी-अपनी सेनाएं फौरन और एक साथ हटा लें। जब माउन्टबेटन ने उनसे पूछा कि कबाइलियों को वापस जाने के लिए किस तरह तैयार किया जायगा तो जिन्ना ने जवाब दिया "अगर आप इतना कर देंगे तो मैं आक्रमण का अन्त करवा दूंगा।" इससे कम-से-कम यह ध्वनि तो निकलती ही थी कि पाकिस्तान के इस सार्वजनिक प्रचार का, कि कबाइलियों का आक्रमण पाकिस्तान के अधिकार से बाहर की बात थी, आपसी बातचीत में ज्यादा सहारा नहीं लिया जायगा।

जांच-पड़ताल करने पर माउन्टबेटन को यह पता चला कि जनमत-

संग्रह के बारे में जिन्ना की जो मनोवृत्ति थी, उसके पीछे यह विश्वास काम कर रहा था कि काश्मीर में भारतीय सेना की उपस्थिति और वहां की सत्ता का शेख अब्दुल्ला के हाथों रहने का अर्थ यह होगा कि वहां की साधारण मुस्लिम जनता इतनी भयभीत हो जायगी कि पाकिस्तान के पक्ष में मत नहीं देगी। माउन्टबेटन ने प्रस्ताव रखा कि संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में जनमत संग्रह किया जाय। इस पर जिन्ना ने कहा कि यह काम तो केवल दोनों गवर्नर-जनरल ही कर सकते हैं। इस सुझाव को माउन्टबेटन ने तुरन्त ठुकरा दिया और इस बात पर जोर दिया कि जिन्ना के हाथों में कितने ही अधिकार क्यों न हों, जहां तक (माउन्टबेटन का) अपना सवाल है, उनकी वैधानिक स्थिति ऐसी है कि वह केवल अपनी सरकार के परामर्श के अनुसार ही कार्य कर सकते हैं।

जिन्ना को इससे बड़ी निराशा हुई और उन्होंने सोचा कि जो भाग्य में बदा होगा, वही होगा। वह यही राग अलापते रहे कि भारत उनके बनाये हुए राष्ट्र को मिटा देना चाहता है। काश्मीर के सम्बन्ध में जिस किसी व्यक्ति का नाम लिया जाता या जिस किसी नीति की चर्चा की जाती, सभी को जिन्ना अपने इसी रंगीन चश्मे से देखते। माउन्टबेटन और इस्मे ने, जो अधिकांश वार्तालाप में मौजूद थे, जिन्ना को हर तरह से आश्वासन देने की भरपूर चेष्टा की। यह तो कहना कठिन है कि इसका उनपर प्रभाव पड़ा या नहीं। किन्तु कम-से-कम बाहरी तौर पर वे सौहार्द की भावना के साथ ही एक-दूसरे से बिदा हुए।

माउन्टबेटन का कहना था कि २७ अक्तूबर को भारत ने हवाई जहाजों द्वारा सेना भेजने का जो काम किया था, उसकी गति के सामने तो दक्षिण-पूर्वी एशिया कमान की सरगर्मी भी फीकी पड़ गई। निस्सन्देह इससे जिन्ना भी स्तब्ध रह गए थे, क्योंकि भारतीय सेना का वह चमत्कार उनके अनुमान के बिलकुल परे था।

माउन्टबेटन के आशावाद और स्पष्टवादिता के बावजूद पिछले कुछ दिनों में जो घटनाएं घटीं, उनसे माउन्टबेटन और जिन्ना के बीच की

खाई अनिवार्य रूप से चौड़ी ही होती गई। उसे यह पिछली मुलाकात भी किसी प्रकार कम न कर सकी। जिन्ना ने माउन्टबेटन को अपने ही दृष्टिकोण से आंका होगा और यह मान लिया होगा कि उन्हें अब भी वाइसराय के सभी अधिकार प्राप्त हैं। सम्भवतः उसी के फलस्वरूप उन्होंने यह भी सोचा होगा कि शायद माउन्टबेटन ने ही काश्मीर के विलय को स्वीकार करनेवाले पत्र को लिखवाया होगा, उन्होंने ही २७ अक्तूबर वाले वीरतापूर्ण चमत्कार का निर्देशन किया होगा। पाकिस्तान के हितों तथा महत्वाकांक्षाओं में अचानक यह जो गम्भीर बाधा पड़ी थी, साधन रूप में उसके भी वही प्रेरक रहे होंगे।

यदि बात ऐसी थी तो निस्सन्देह यह सत्य का एक विकृत और दुखपूर्ण दिग्दर्शन था। ३ जून की योजना की स्वीकृति के बाद से ही माउन्टबेटन ने दोनों उत्तराधिकारी राज्यों के बीच सद्भावना को बढ़ाना अपने मिशन का मुख्य लक्ष्य बना लिया था। जिन्ना वैयक्तिक मान-मर्यादा की ओर से उदासीन नहीं थे। किन्तु आश्चर्य की बात थी कि वह यह नहीं समझ पा रहे थे कि इस कार्य में असफल होने को माउन्टबेटन भी एक वैयक्तिक असफलता मान सकते हैं। जिन्ना को काश्मीर के सम्बन्ध में बौखलाहट तो थी ही; इसके अतिरिक्त यह भी सम्भव था कि जिन्ना इस बात को नहीं समझते कि व्यापक-दृष्टि से अब माउन्टबेटन को भारत सरकार के निश्चयों में नरमी लाने या मध्यस्थता कराने के अधिकार ही रह गए थे। जैसा कि हम देख चुके हैं, गवर्नर-जनरल के उचित कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में जिन्ना के विचार उसी समय स्पष्ट हो गए थे जब उन्होंने स्वतन्त्रता विधेयक के अन्तर्गत मिले हुए अपने विशेष अधिकारों को फौरन ही अपने हाथों में ले लिया था।

यह बात भी कम महत्व की नहीं थी कि यद्यपि जिन्ना और माउन्टबेटन में एक-दूसरे के लिए काफी आदर की भावना थी, फिर भी जिन्ना ने अब अपना सारा ध्यान कूटनीति में ही लगा दिया था। गहरे भय और कठोर दांवपेंच की जिन अतुल गहराइयों तक माउन्टबेटन नहीं पहुंच

सकते, वे ही आज जिन्ना पर हावी थीं।[1]

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
सोमवार, ३ नवम्बर १९४७

सारा ध्यान काश्मीर के प्रश्न पर केन्द्रित होने के कारण हैदराबाद नजरों से ओझल हो गया था। लेकिन कल ही माउन्टबेटन के सामने हैदराबाद का एक नया प्रतिनिधि-मंडल आया। तीन व्यक्तियों वाले इस प्रतिनिधि-मंडल के नेता मोइन नवाज जंग थे, जो इत्तिहाद के मजबूत लोगों में गिने जाते थे। लगता था कि १५ अगस्त की अपेक्षा आज हम समझौते से कहीं दूर थे। काश्मीर के संघ-प्रवेश और वहां सेनाएं उतरने के दूसरे दिन जो घटनाएं घटीं उनको देखते हुए यही कम अचरज की बात नहीं कि चर्चाएं अब भी जारी थीं। अगर माउन्टबेटन और मांकटन ने दृढ़ता न दिखाई होती तो चर्चाएं कब की खत्म हो गई होतीं। आज हालत यह थी कि निजाम ने वह बचाखुचा विश्वास भी खो दिया था, जो भारत सरकार, खास कर सरदार पटेल, को उनमें था। मुझे शक था कि उनमें कभी फिर पहले जैसे सम्बन्ध स्थापित हो सकेंगे।

इस्मे और मेरी लंदन-यात्रा के काल में माउन्टबेटन ने ऐसा हल खोजने में

---

१. माउन्टबेटन के लिए जिन्ना का यह आदर-भाव कितना गहरा था इसका रहस्योद्घाटन जिन्ना के एक निजी मित्र ने मुझसे पिछले दिनों किया। उन्होंने मुझे बताया कि अपनी मृत्यु से कुछ दिन पहले जिन्ना ने यहां तक कहा था कि अपनी तमाम जिन्दगी में जिस एक आदमी ने मुझ पर असर डाला है, वह हैं लार्ड माउन्टबेटन। जब मैं उनसे पहली बार मिला तब मुझे ऐसा लगा जैसे उनमें 'नूर' है। उन्होंने यह भी कहा था कि माउन्टबेटन जितने समय भी भारत में रहे मैंने कभी उनकी ईमानदारी पर शंका नहीं की।

समझौता कराने की अपनी सारी कला खर्च कर दी थी, जिसमें संघ-प्रवेश और संघ-सरकार के बीच के अन्तर को पाटा जा सके। उन्होंने यहां तक किया कि एक भारी भरकम मसविदा तैयार कराया जो समझौते के रूप में दोनों पक्षों द्वारा स्वीकार किया जा सके, और सरदार के लिए उसका अर्थ संघ-प्रवेश हो और निजाम के लिए सहकार !

इस विश्वास से कि जबतक मांकटन मौजूद रहते हैं तभी तक निजाम पर आधुनिकता का प्रभाव रह सकता था, माउन्टबेटन ने यह बात मंजूर कराने की जीतोड़ कोशिश की कि वी. पी. मेनन को वहां जाने दिया जाय, जिसमें चर्चाएं हैदराबाद में ही हो सकें। जब वी. पी. को दोनों ओर से परवानगी मिल गई और वह जाने के लिए बिलकुल तैयार बैठे थे कि निजाम ने इस बिना पर मेनन की यात्रा खारिज करा दी कि उनके आगमन से व्यर्थ प्रदर्शन होगा। जिन शब्दों में निजाम ने यह यात्रा खारिज की और जिन शब्दों में पटेल ने इसका उत्तर दिया वह दोनों पक्षों की भावनाओं को इस कदर चोट पहुंचानेवाले थे कि चर्चाओं का हमेशा के लिए अन्त हो जाता।

इसी समय माउन्टबेटन ने मांकटन को अपने व्यक्तिगत अतिथि के नाते दिल्ली आने का बुलावा दिया। १० अक्तूबर को मांकटन ने एक वर्ष के लिए 'यथास्थिति समझौते' पर हस्ताक्षर किये जाने का सुझाव दिया, जिससे भारत को संघ-प्रवेश के अधिकांश लाभ मिल जाते और निजाम का प्रतीकात्मक पद भी कायम रहता। इस आधार पर चर्चा चलाने के लिए माउन्टबेटन ने दो महीने की अवधि में भी वृद्धि करवा ली। इसके बाद ऐसी भयंकर और कटु सौदेबाजी चली कि चर्चाओं का अन्त निकट जान पड़ने लगा। लेकिन २२ अक्तूबर को 'यथास्थिति समझौते' का एक ऐसा मसविदा तैयार हो गया जो मेनन और निजाम के प्रतिनिधि-मंडल, दोनों को स्वीकार था।

इस विषय को ठोस रूप देने के लिए प्रतिनिधि-मंडल हैदराबाद लौट गया। उसी शाम मसविदा निजाम को दिखाया गया, जिन्हें उसका

रूप-रंग अच्छा नहीं लगा और उन्होंने पूरे मसविदे को अपनी कार्यकारिणी समिति को सौंपने का निश्चय किया। कार्यकारिणी समिति ने अगले तीन दिन मसविदे पर विचार करने में लगाये। प्रतिनिधि-मंडल भी इस विचार के समय उपस्थित रहा, जिससे आवश्यक स्पष्टीकरण कर सके। शनिवार २५ अक्तूबर को तीन मतों के खिलाफ छः मतों से यह औपचारिक फैसला किया गया कि निजाम को सलाह दी जाय कि मसविदे को बिना किसी परिवर्तन या विलम्ब के स्वीकार कर लें। मतदान का नतीजा प्रतिनिधि-मंडल ने निजाम को उसी शाम सूचित कर दिया और निजाम ने फैसले पर अपनी स्वीकृति दे दी। ऐसा मालूम हुआ कि अगला पूरा दिन निजाम ने दो नत्थी-पत्र तैयार करने में लगाया। इन पत्रों में से एक में यह वचन दिया गया था कि वह पाकिस्तान में शामिल नहीं होंगे, और दूसरे पत्र में उन्होंने भारत के राष्ट्र-मंडल छोड़ने या भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध छिड़ने की हालत में अपनी स्थिति के परिवर्तन का उल्लेख किया था। चूंकि प्रतिनिधि-मंडल दूसरे दिन सवेरे दिल्ली के लिए रवाना होनेवाला था इसलिए उन्होंने निजाम से मसविदा मंगवाया। लेकिन बिना किसी खुलासे के निजाम ने उस रात उस पर अपने हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया।

दूसरे दिन सवेरे तीन बजे के लगभग बीस हजार लोगों की एक भीड़ ने छतारी, मांकटन और सर सुलतान अहमद के मकानों को घेर लिया। भीड़ के बीच लाउड स्पीकर लगे हुए थे, जिनके द्वारा लोगों से व्यवस्थित रहने की अपीलें की जा रही थीं और समझाया जा रहा था कि प्रतिनिधि-मंडल को जाने से रोकने के अलावा और कोई दंगा न करें। पूरी घटना के समय हैदराबाद पुलिस कहीं दिखलाई नहीं पड़ी और इस लड़ाकू चुनौती का इत्तिहाद ने खुले रूप से श्रेय अपने ऊपर लिया। करीब पांच बजे सवेरे छतारी सेना के अधिकारियों से सम्पर्क करने में सफल हुए और प्रतिनिधि-मंडल के सदस्यों और लेडी मॉंकटन को निरापद एक सैनिक अधिकारी के घर में पहुंचाया जा सका।

आठ बजे सवेरे निजाम ने प्रतिनिधियों को सन्देश भेजा कि अभी कुछ दिनों वे दिल्ली न जायं। उन्होंने तार द्वारा माउन्टबेटन को भी सूचित कर दिया कि अप्रत्याशित परिस्थितियों के कारण प्रतिनिधि-मंडल तुरन्त दिल्ली लौटने में असमर्थ है। और आशा प्रकट की कि यदि प्रतिनिधि-मंडल बृहस्पतिवार या शुक्रवार तक पहुंचेगा तो गवर्नर-जनरल बुरा नहीं मानेंगे। माउन्टबेटन तुरन्त राजी हो गए। निजाम ने २७ अक्तूबर को प्रतिनिधि-मंडल को मुलाकात देने पर कहा कि वह पूरी स्थिति पर फिर से विचार कर रहे हैं और इस बीच उनको रोके रखना चाहते हैं। लेकिन अपनी कार्यकारिणी के फैसले से उन्होंने पूरी सहमति बतलाई। साफ शब्दों में उन्होंने इत्तिहाद और रिजवी की निन्दा की, जो व्यक्तिगत रूप से इस विरोध-प्रदर्शन का संगठन करने के उत्तरदायी थे। उन्होंने कहा कि वह रिजवी को यह फैसला मंजूर कराने पर मजबूर करेंगे।

दूसरे दिन निजाम ने प्रतिनिधि-मंडल को दूसरी बार मिलने के लिए बुलाया। रिजवी भी इसमें बुलाये गए। लेकिन बजाय इसके कि वह रिजवी को राजी कर पाते, रिजवी निजाम पर छा गए। रिजवी ने इस मसविदे को हैदराबाद की मौत बतलाते हुए फिर से चर्चा शुरू करने के लिए मौका खोजने की सलाह दी। उनका खयाल था कि भारत सरकार दूसरी जगह दिक्कतों में फंसी हुई है और चर्चा करने के लिए यह ज्यादा सुभीते का मौका था। उन्होंने एक नये प्रतिनिधि-मंडल का सुझाव रखा, जिसमें उन लोगों को रखना उचित होगा, जिन्होंने कार्यकारिणी में इस मसविदे के खिलाफ मत दिये थे। मांकटन, छतारी और अहमद, सबने कहा कि ऐसा कोई कदम उठाना धोखा और विनाशकारी होगा। इस पर उन्होंने अपने इस्तीफे भी दे दिये।

मांकटन के लन्दन और अहमद के दिल्ली जाने के पूर्व निजाम ने बृहस्पति-वार ३० अक्तूबर को दोनों को आखिरी मुलाकात दी। अहमद ने उक्त सारी पागलपन की घटना का हाल माउन्टबेटन को कह सुनाया। चलते समय उन्होंने निजाम से कहा था "यह तुम्हारा और तुम्हारी दौलत दोनों का अन्त है।"

इसी समय माउन्टबेटन के नाम निजाम का तार आया। उसमें कहा गया था, "बदली हुई राजनैतिक परिस्थिति" के कारण पुराना प्रतिनिधि-मंडल भंग कर दिया गया है और नये का निर्माण कार्यकारिणी के विरोधी सदस्यों में से किया गया है। नये प्रतिनिधि-मंडल के अध्यक्ष मोइन नवाज जंग, मीर लायक अली के साले हैं, जो छतारी के स्थान पर प्रधान मंत्री बनाये गए थे। सितम्बर तक वह संयुक्त-राष्ट्र-संघ में पाकिस्तान के प्रतिनिधि थे।

यह संभावना असंभव नहीं है कि निजाम की ये सब चालें हैदराबाद को पाकिस्तान में शामिल करने की भूमिका हैं। लाहौर में जिन्ना के साथ हुई बातचीत में माउन्टबेटन ने खुले शब्दों में यह बात छेड़ी थी। सत्ता-हस्तांतरण के पहले से कराची और हैदराबाद के बीच बराबर सम्पर्क कायम रहा था। लेकिन जिन्ना ने यह विश्वास दिलाने की कोशिश की कि निजाम के फैसले में परिवर्तन होने का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं और उन्होंने निजाम के साथ कभी किसी प्रकार के समझौते पर चर्चा नहीं की थी।

आते ही मोइन ने दून की हांकना शुरू किया। उन्होंने कहा कि निजाम हैदराबाद को सर्व-प्रभुसत्ता-सम्पन्न राज्य बनाना चाहते हैं, जिसका दोनों देशों से गहरा सम्बन्ध रहेगा और जिसकी विदेश-नीति आमतौर से भारत के समान होगी। लेकिन माउन्टबेटन उनके और उनके प्रतिनिधि-मंडल के साथ बड़ी कठोरता से पेश आये। कल उनसे पहली मुलाकात के समय उन्होंने कहा कि अन्तर्राष्ट्रीय चर्चाओं के अपने लम्बे अनुभव में उन्होंने कभी ऐसा नासमझी भरा और अजीबोगरीब रवैया नहीं देखा जो हैदराबाद ने अपनाया था। कितने ही दिनों के धैर्यपूर्ण विचार के बाद जिस मसविदे को दूसरा पक्ष ठुकरा चुका था, उसे फिर सामने लाना क्या अर्थ रखता था। शक की किसी गुंजाइश के बिना उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि उनकी सरकार 'यथास्थिति समझौते' के इसी अन्तिम मसविदे पर दृढ़ हैं, जो पिछले प्रतिनिधि-मंडल के दिल्ली से जाने के पूर्व लिखा गया था, जिसे निजाम की कार्यकारिणी ने स्वीकार किया था और जिसे कुलाँट

लगाने के पहले स्वयं निजाम ने मंजूर कर लिया था। अगर निजाम अपने ही फैसलों को भंग करते रहेंगे तो चर्चाएं टूटने की सारी जिम्मेदारी उन पर ही होगी और भारत सरकार सारी दुनिया को यह बात बतलाएगी।

एक रेडियो-भाषण द्वारा नेहरू ने काश्मीर के प्रश्न पर राष्ट्र-संघ के तत्वावधान में जनमत-संग्रह किये जाने का उदार सुझाव रखा है। यही बात माउन्टबेटन गत शनिवार को जिन्ना से कह चुके थे। उनका वक्तव्य काफी उदार और तर्कपूर्ण था। लेकिन, जैसा कि जिन्ना लाहौर की बैठक में स्पष्ट कर चुके थे, उनका विरोध जनमत-संग्रह के सुझाव से नहीं, बल्कि उसके दौरान में काश्मीर में भारतीय सेनाओं की उपस्थिति से था। उनका कहना था कि ऐसा होने पर जनमत-संग्रह निष्पक्ष नहीं होगा। नेहरू और पटेल का अनुमान था कि जनमत-संग्रह का काम जाड़े के दिनों में नहीं हो सकेगा और उसके इन्तजाम में समय लगेगा।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
शनिवार, ८ नवम्बर १९४७

जूनागढ़ की समस्या नया सिरदर्द पैदा कर रही है। गत सोमवार को सुरक्षा-समिति की बैठक में केवल यह साधारण सूचना दी गई थी कि १ नवम्बर को मंगरोल तथा बाबरियावाड़ पर भारतीय सेनाओं ने शांतिपूर्वक अधिकार कर लिया। यह आशा करना उचित ही था कि पटेल यही पसन्द करेंगे कि अन्य बड़ी समस्याओं के हल होने तक जूनागढ़ पर अधिकार करने का प्रश्न उठा रखा जाय।

परन्तु आज लगभग १ बजे रात को जूनागढ़ के दीवान ने भारत सरकार को राज्य पर अधिकार करने का औपचारिक आमन्त्रण दिया। दीवान ने लियाकत को सूचित किया कि वह लोकमत के बल, राज्य परिषद के विशेषाधिकार और स्वयं नवाब की सम्मति से यह कार्यवाही कर रहे हैं। नवाब थोड़े ही समय पूर्व कराची चला गया था। भारत-सरकार

ने तुरन्त दीवान का अनुरोध स्वीकार कर लिया और अपने राजकोटस्थित प्रादेशिक कमिश्नर को आवश्यक कार्यवाही करने का आदेश दे दिया।

ये सब बातें आज शाम को ही माउंटबेटन को बताई गईं। यह पहला ही अवसर था, जबकि सरकार ने उनके साथ पूर्ण विचार-विनिमय किये बिना नीति-सम्बन्धी बड़ा निर्णय किया। वह महसूस करते हैं कि शायद पटेल और वी.पी. मेनन ने उन्हें विषम उलझन से बचाने के लिए ही ऐसा किया था।

उधर निजाम बड़ी धृष्टता के साथ नई दिल्ली में उनके प्रति बची-खुची सद्भावना को भी खत्म किये दे रहे थे। 'यथास्थिति समझौते' पर हस्ताक्षर करने के लिए उन्होंने और समय की मांग की है। चार दिन के कठोर परिश्रम के बाद उनके प्रतिनिधिमंडल को इस बात के लिए राजी किया जा सका था कि वह निजाम को सलाह देगा कि बिना किसी फेर-बदल के समझौते को स्वीकार कर लिया जाय। इस बिना पर कि माउंटबेटन लन्दन जानेवाले थे, निजाम ने २५ नवम्बर तक की मोहलत मांगी। अपनी सरकार से सलाह करने के बाद माउंटबेटन ने इसकी स्वीकृति दे दी, बशर्ते कि इस महीने के अन्त तक समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये जायं।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
रविवार, ९ नवम्बर १९४७

माउंटबेटन-दम्पति को लन्दन के लिए विदा करने हम सवेरे तड़के पालम पहुंच गए। आखिरी मिनट तक माउंटबेटन जाने में हिचकिचा रहे थे। लेकिन इस बात के अलावा कि राजकुमारी एलिजाबेथ उनकी चचेरी बहन हैं, दूल्हे लेफ्टिनेन्ट फिलिप माउंटबेटन उनके भतीजे होने के अतिरिक्त पिछले अठारह वर्षों से उन्हींके परिवार में रहते रहे हैं, इसलिए उनका जाना अनिवार्य था।

दस बजे सवेरे मैंने राजगोपालाचारी की शपथ-विधि समारोह में भाग लिया। माउंटबेटन की अनुपस्थिति में राजाजी ही गवर्नर-जनरल का कार्य करेंगे। सत्ता-हस्तांतरण के बाद से कांग्रेस के यह बुजुर्ग और प्रसिद्ध नेता बड़ी दक्षता के साथ पश्चिमी बंगाल के गवर्नर का कार्य कर रहे हैं। यह समारोह कौंसिल भवन में मंत्रिमंडल की उपस्थिति में सम्पन्न हुआ। सफेद धोती पहने हुए राजाजी ने अपने मोटे और काले चश्मे के पीछे से हंसते हुए दोनों हाथ जोड़कर सबका अभिवादन किया। जब गृह-विभाग के सेक्रेटरी बनर्जी ने शाही आज्ञा-पत्र पढ़ना शुरू किया तो सब लोग उठकर खड़े हो गए, "हमारे विश्वस्त और सर्वप्रिय चक्रवर्ती राजगोपालाचारी को बधाई।" प्रमुख न्यायाधीश कानिया ने शपथ दिलवाई, जिसमें केवल एक ही परिवर्तन किया गया था, "सौगन्ध" की जगह "प्रतिज्ञा" शब्द रखकर।

समारोह पांच मिनट के अन्दर पूरा हो गया, लेकिन अपने ऐतिहासिक महत्व का बोध कराने के लिए यह समय काफी था। अंग्रेजी राज्य के प्रतीक, जिस राजा की सत्ता का खात्मा करना इस बूढ़े कांग्रेसी के जीवन का मुख्य लक्ष्य था, उसीके द्वारा राज्य के प्रधान पद पर नियुक्त किये जाने के दृश्य में उद्देश्य-पूर्ति भी थी और नाटकीय व्यंग्य भी था।

कार्यवाहक गवर्नर-जनरल ने अपने अमले के लोगों को पहली भोज-पार्टी दी। मैं भी उसमें उपस्थित था। राजाजी की लजीली और गम्भीर प्रकृति वाली विवाहिता पुत्री श्रीमती नामगिरी ने अतिथिसत्कार का भार ग्रहण किया। जब परिचय के समय महिलाओं ने झुककर राजाजी का औपचारिक अभिवादन किया तो उन्होंने विनय से कहा, "मेरे लिए ऐसा मत कीजिए।"

: १९ :

प्रगति और अवगति

वेधशाला भवन,
गवर्नर-जनरल का निवास, शिमला,
शनिवार, २९ नवम्बर १९४७

राजाजी की अनुमति लेकर मैं अपने परिवार के साथ कुछ दिनों के लिए यहां आ गया हूं। मेरी सेक्रेटरी मेगी सदरलैंड सरकारी भवन से आवश्यक कागज-पत्र मुझे भेजती रहती हैं और टेलीफोन से पूरा सम्पर्क भी बनाये रहती हैं।

आखिर निजाम ने 'यथास्थिति समझौते' पर हस्ताक्षर कर दिये थे। सरदार पटेल ने एक सुन्दर वक्तव्य दिया था, जिसमें चर्चाओं के दौरान में माउंटबेटन द्वारा दिये गए निर्णायक सहयोग की पूरी-पूरी प्रशंसा की गई थी। इसमें कोई शक नहीं कि बूढ़े निजाम के साथ चर्चा करना बड़े धीरज का काम था, क्योंकि वह परम्परागत पूर्वी कूटनीति के कट्टर उपासक हैं। बाहरी दुनिया की हलचलों से अनभिज्ञ निजाम अपने-आपको अपने ही षड्यन्त्रों के जाल में फंसाये बिना कोई निर्णय नहीं ले पाते।

अन्त तक ये चर्चाएं बड़े ओछे ढंग से चलीं। जब प्रतिनिधिमंडल की मंगलवार को माउंटबेटन के साथ आखिरी मुलाकात हुई तो उसने निहायत मामूली शाब्दिक परिवर्तनों के लिए हठ करना शुरू किया। यह बात इस सीमा तक जा पहुंची कि सिर्फ अपने अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए और इस दावें को पक्का करने के लिए कि भारत सरकार उस मसविदे में परिवर्तन करने को तैयार हो गई थी, जो उनके पूर्वगामियों ने तैयार किया था, उन्होंने अल्प विराम की जगह अर्द्ध विराम लगाने तक के लिए आग्रह करना शुरू कर दिया। इसलिए माउंटबेटन ने भी यही समझाने की कोशिश की कि वह एक अल्प विराम तक में परिवर्तन नहीं करेंगे।

नत्थी-पत्रों में कुछेक आवश्यक मामूली संशोधन स्वीकार कर लिये गए, लेकिन यहां भी भारत सरकार अपने इस निश्चय पर अटल रही कि हैदराबाद को विदेश में अपने अलग कूटनीतिक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार नहीं होगा।

इत्तिहाद और उसके उग्र नेता कासिम रिजवी, जो संयोगवश चर्चा के अन्तिम दौर के समय दिल्ली में मौजूद थे, इससे अधिक कोई दावा नहीं कर सकते कि 'यथास्थिति समझौता' विशुद्ध हैदराबादी प्रतिनिधि-मंडल के हाथों हुआ था, लेकिन उनकी नाक रखने का यह काम भी काफी कीमत चुकाने पर हो गया। निजाम और उनके इरादों से पटेल का विश्वास उठ गया। इस सब के बावजूद भी यथास्थिति समझौते ने एक साल की मोहलत दी थी, जिसमें दिमाग ठंडे हो सकें और दिल उदार।

नेहरू ने फिर एक सुन्दर भाषण दिया—विस्थापितों की समस्या पर। इसमें उन्होंने प्रतिहिंसा और प्रतिकार की भावनाओं का कड़ा विरोध किया और पूरी समस्या का बड़ा संतुलित चित्र पेश किया। गोपाला-स्वामी आयंगर ने ऐलान किया कि दोनों देशों के बीच महत्वपूर्ण प्रश्नों पर भारत-पाक चर्चा पहले सेक्रेटरियों के बीच होगी और फिर मंत्रियों के बीच। इसका अर्थ यह हुआ कि आपसी सम्बन्ध कामचलाऊ ढंग से सुधारने के लिए हार्दिक प्रयास किया जायगा। पटेल ने लियाकत के साथ हुई अपनी चर्चा को "सौहार्दपूर्ण" बतलाया और जिन्ना से सलाह करने के लिए लियाकत दिल्ली से रवाना हो गए। संयुक्त सुरक्षा-कौंसिल को जिन्दा रखा जायगा और अगली बैठक लाहौर में ६ दिसम्बर को होगी।

वेधशाला भवन,
गवर्नर जनरल का निवास, शिमला,
सोमवार, १ दिसम्बर १९४७

ऐसा लगता था कि काश्मीर की समस्या भारतीय राजनीति को एक नया मोड़ देगी। नेताओं की समझ में यह बात आने लगी थी कि रियासत को भारत संघ में रखने के लिए तीस लाख काश्मीरी मुसलमानों को हजम करना और खुश रखना जरूरी होगा। इसलिए शेख अब्दुल्ला जनमत-संग्रह के पक्ष में होते जा रहे थे, जिसका भारत वादा कर चुका था। इस प्रश्न पर हिन्दू महासभा के खिलाफ गान्धी-नेहरू-अब्दुल्ला का संयुक्त मोर्चा बनने के आसार नजर आ रहे थे। कांग्रेस के अन्दर की साम्प्रदायिक और राष्ट्र-वादी विचारधाराओं के बीच संघर्ष के लक्षण दिखलाई दे रहे थे। वे कांग्रेसी, जो हिन्दू-राष्ट्र के पक्ष में थे, काश्मीर के इच्छुक नहीं थे। लेकिन सरकार द्वारा काश्मीर में उठाये गए कदम ने उनका मुंह बन्द कर दिया था।

यह गहरा और नाजुक संघर्ष काश्मीर की समस्या तक ही सीमित नहीं था। इसका रूप काफी व्यापक था। हिन्दू महासभा ने एक प्रस्ताव पास कर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के विस्थापितों विषयक प्रस्ताव की निन्दा की थी। कांग्रेस के इस प्रस्ताव में कहा गया था कि कांग्रेस उन मुसलमानों को यहां से जाने के लिए प्रोत्साहन देने का इरादा नहीं रखती जो यहां रुकने के इच्छुक थे। प्रस्ताव में स्पष्ट रूप से यह सलाह दी गई थी कि विस्थापितों को अपने-अपने घरों को लौट जाना चाहिए। इसमें महासभा और कांग्रेस के बीच भारी संघर्ष के बीज निहित थे, और दोनों प्रस्तावों की कड़ी शब्दावली निकट भविष्य में विस्फोट का संकेत करती थी।

हैदराबाद के साथ 'यथास्थिति समझौते' का पहला फल यह निकला कि निजाम ने कांग्रेस के स्थानीय राजनीतिक बंदियों को छोड़ने का

निश्चय किया । राज्य-कांग्रेस के अध्यक्ष श्री रामानन्द तीर्थ सहित अधिकांश महत्वपूर्ण नेता चर्चाओं के दौरान में जेल में थे ।

वेधशाला भवन,
गवर्नर-जनरल का निवास, शिमला,
शनिवार, ६ दिसम्बर १९४७

व्यवस्थापिक सभा में नेहरू ने विदेशनीति पर एक महत्वपूर्ण वक्तव्य दिया। यह एक ऐसा क्षेत्र था, जिसमें उनके दिमाग को खुलकर काम करने का अवसर मिलता था। मुझे लगता है कि अपनी सरकार में विदेशमंत्री के पद पर काम करने से उन्हें हार्दिक संतोष प्राप्त होता था। वह भारत को बड़ी शक्तियों के गुत्थम-गुत्थे से अलग रखने की पूरी कोशिश कर रहे थे। बड़ी नाराजी से नेहरू इस बात का विरोध करते थे कि उनका लक्ष्य तटस्थता है। लेकिन इसमें शक नहीं कि उनकी नीति का असर इससे भिन्न नहीं होगा। वह संयुक्त-राष्ट्र अमरीका और रूस दोनों के साथ सह-योग का आह्वान करते थे और ब्रिटेन अथवा राष्ट्रमंडल के बारे में इससे ज्यादा कुछ नहीं कहते कि उन्हें आशा है कि राष्ट्रमंडल के कुछ सदस्यों के साथ भारत के सम्बन्धों में सुधार होगा। यह दक्षिण अफ्रीका पर परोक्ष आक्रमण जैसा प्रतीत होता था।

फिलस्तीन के विभाजन के विषय में संयुक्त राष्ट्र के निर्णय के विषय में बोलते हुए नेहरू ने भारत के इस सुझाव पर आग्रह किया कि एक संघ के अन्तर्गत दो स्वायत्त राष्ट्रों की स्थापना की जाय। उन्होंने कहा कि यह सुझाव राष्ट्र संघ में विभाजन से ज्यादा बुद्धिमानीपूर्ण माना जा रहा है, क्योंकि विभाजन से काफी संकट पैदा हो चुके थे और आगे भी काफी होंगे। उन्होंने यह भी कहा कि विश्व की बड़ी समस्याओं पर स्वतंत्र मत व्यक्त करने से भारत का मान बढ़ेगा। एक बड़े मार्के की बात उन्होंने कही : राजनैतिक रूप से विदेशनीति देश के अन्दर चलने वाली

आर्थिक नीति पर निर्भर करती है। भारत की आर्थिक नीति अभी तक निश्चित नहीं हो पाई। तात्कालिक आंतरिक संकट ने उसे भटकने पर मजबूर कर दिया है।

उधर, संयुक्त-राज्य अमरीका में नेहरू के प्रथम राजदूत, आसफ-अली, वाशिंगटन में अमरीकी आर्थिक सहायता के लिए हाथ-पैर मार रहे थे। उनका कहना था कि भारत की देनदारी की स्थिति दृढ़ है और वह एक अच्छी मंडी है। भारत-पाक सम्बन्धों के विषय में प्रश्न पूछे जाने पर उन्होंने उत्तर दिया कि उनको आशा है कि ये सम्बन्ध सुधरेंगे—कम-से-कम आर्थिक स्तर पर।

सरकारी भवन, नई दिल्ली
गुरुवार, ११ दिसम्बर १९४७

विभिन्न दस्तावेजों के अध्ययन और माउंटबेटन के साथ अपनी लम्बी बातचीत की सहायता से मैं काश्मीर में गत पखवारे के नाटकीय परिवर्तनों का इतिहास समझने की चेष्टा कर रहा था। इस पखवारे में इतनी कूटनीतिक हलचलें हुईं, जितनी प्रायः एक वर्ष में भी नहीं हुआ करतीं। दोनों देशों के बीच खाई को पाटने और पूरे प्रायद्वीप को छिन्न-भिन्न होने से बचाने के लिए माउंटबेटन ने निःसन्देह बड़े साहस का काम किया था।

इस्मे ने भी शान्ति-स्थापना के काम में महत्वपूर्ण योग दिया—लियाकत और नेहरू के बीच नवम्बर के प्रारम्भ और गत सप्ताह दिल्ली में हुई "सौहार्दपूर्ण" बातचीत में महत्वपूर्ण भूमिका खेलकर। दोनों नेताओं को एक-दूसरे से मिलाने में माउंटबेटन को फिर से काफी कठिनाई का सामना करना पड़ा था; क्योंकि लियाकत ने बैठक के जरा पहले ही एक ऐसा तार भेजा, जो नेहरू को उत्तेजित करने के लिए काफी था। उन्होंने फिर शेख अब्दुल्ला को "देशद्रोही" कहा और भारत सरकार पर यह

आरोप लगाया कि वह रियासत की पूरी मुसलमान आबादी का नाश करना चाहती है। अपनी यह मांग भी उन्होंने दोहराई थी कि अविलम्ब एक निष्पक्ष और स्वतंत्र शासन की स्थापना की जाय।

सौभाग्य-वश नेहरू ऐसे व्यक्ति नहीं हैं जो अपने उचित रोष को झूठे अभिमान का रूप लेने दें। इसलिए माउंटबेटन उन्हें और लियाकत को काश्मीर के बारे में पहली बार स्पष्ट तौर से बातचीत करने के लिए राजी कर सके। नेहरू द्वारा मामले को विस्तार से पेश किये जाने के बाद लियाकत ने, जो अपनी हाल की बीमारी के बाद बहुत शिथिल और कमजोर दिखलाई पड़ते थे, कई प्रासंगिक सवाल पूछे और कुछ प्रस्ताव रखे, जिन पर विचार करने का नेहरू ने वादा किया। इस्मे उच्च-स्तर के प्रस्तावों के मसविदे बनाने में बड़े निपुण थे। दोनों सरकारों की ओर से वी. पी. मेनन और मुहम्मदअली के सहयोग से उन्होंने तुरन्त इन प्रस्तावों को औपचारिक स्वरूप दे दिया। यही प्रस्ताव आगामी दोनों दिनों की चर्चा का आधार बने।

संक्षेप में प्रस्ताव ये थे : पाकिस्तान विद्रोही 'आजाद काश्मीर' सेनाओं को युद्ध रोकने तथा कबाइलियों और अन्य हमलावरों को यथाशीघ्र काश्मीर की भूमि से लौटाने तथा उनके द्वारा फिर से हमला न होने देने में अपने सारे बल का प्रयोग करे। भारत अपनी सेना का अधिकांश भाग लौटा ले। केवल गड़बड़ी को दबाने के लिए छोटी टुकड़ियाँ भर रखे। संयुक्त-राष्ट्र-संघ से कहा जाय कि वह काश्मीर में जनमत-संग्रह के लिए एक कमीशन भेजें और उसके पहले वह भारत-पाकिस्तान और काश्मीर से सिफारिश करे कि वे जनमत-संग्रह को सच्चा और निर्विघ्न बनाने के लिए आवश्यक कदम उठाएं। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए जो कार्यवाहियां करने का विचार है, जैसे राजनीतिक कैदियों की रिहाई और विस्थापितों की वापसी, उनकी तुरन्त घोषणा कर दी जाय।

इस्मे की सहायता से बातचीत के अन्त में स्थिति यह रही कि हालांकि कोई निश्चित समझौता नहीं हो सका लेकिन नेहरू की आलोचना वस्तु-

स्थिति के विस्तार तक ही सीमित रही। लियाकत तीन शर्तों का आग्रह करने दिल्ली आये थे—दोनों पक्षों की काश्मीर से वापसी, जनमत-संग्रह के पूर्व एक निष्पक्ष शासन-व्यवस्था और निष्पक्ष जनमत-संग्रह। वह केवल अपनी तीसरी शर्त ही पूरीतौर पर मनवा सके और दूसरी शर्त आंशिक रूप में। इस प्रकार वह सैद्धांतिक रियायत देने में भी पीछे नहीं रहे। इस्मे को पूरा विश्वास था कि राजनीतिक और शासनिक दोनों दृष्टियों से उक्त प्रस्ताव एक ऐसा हल प्रस्तुत करते हैं, जो कार्यान्वित हो सकता है। उनका यह भी विश्वास था कि समस्या के हल के लिए ऐसे प्रस्ताव पहली बार ही पेश किये गए हैं। ऐसा मालूम हो रहा था कि नींव सचमुच अच्छे ढंग से रखी जा चुकी है। किन्तु समझौता कराना हमेशा दिल तोड़ने वाला काम होता है।

दो दिन पहले माउंटबेटन को एक ऐसी बैठक का सभापतित्व करना पड़ा जिसको उन्होंने अपने जीवन की सबमें निराशाजनक बैठक बताया। सुरक्षासमिति के समक्ष पटेल और बलदेवसिंह दुबारा तबाही की खबर लेकर उपस्थित हुए। वे लोग मोर्चे पर से अभी-अभी लौटे थे। जो खबर वे लाये थे और जो सूचनाएं नेहरू के पास स्वतंत्र रूप से पहुंची थीं, उनके कारण मंत्रि-मंडल का रुख सख्त हो गया और वह तात्कालिक जनमत-संग्रह और फिलहाल समझौता-चर्चा चलाने के भी विरुद्ध हो गए। उनकी तीन शिकायतें थीं। एक तो पश्चिमी पंजाब में कबाइलियों और हमलावरों की बड़ी संख्या में जमा होने की खबरें, दूसरे दिल्ली से लौटने के तुरन्त बाद ही लियाकत का हमलावरों को काश्मीर पर धावा बोलने के लिए उकसाने में सारी शक्ति लगा देना; तथा तीसरे, गैर-मुसलमानों की सामूहिक हत्या,काश्मीरी लड़कियों की बिक्री तथा अन्य क्रूरताओं की लगातार लोमहर्षक कहानियां।

दोनों के बीच फिर सम्पर्क-स्थापन का काम माउंटबेटन द्वारा लियाकत को दिये इसी सुझाव से संभव हो सका कि समझौता-वार्ता पुनः चालू करने की तारीख की सूचना लियाकत तार द्वारा नेहरू को दे दें।

लियाकत ने ऐसा ही किया और साथ ही यह भी आग्रह किया कि खून-खराबे को रोकने का एकमात्र उपाय यह है कि दोनों सरकारों के प्रतिनिधि मिलते-जुलते रहें। नेहरू ने तुरन्त इस सन्देश की भावना को स्वीकार कर लिया और वह पिछले सोमवार को संयुक्त सुरक्षा-कौंसिल की बैठक में शरीक होने के लिए माउंटबेटन के साथ लाहौर गये।

बीच में भोजन के समय को निकालकर काश्मीर पर विचार-विनिमय ३ बजे से लेकर आधी रात तक, कुल ७ घंटे, चलता रहा। यह बैठक सामान्यत: मैत्रीपूर्ण वातावरण में हुई और उत्तेजना की बातें केवल यदा-कदा ही कही गईं। फिर भी माउंटबेटन को, जिन्होंने विरोधी विचारों को सुलझाने का भरसक प्रयास किया,यह पक्का भरोसा हो गया कि गति-रोध इतना पूर्ण था, तथा बाहरी और अन्दरूनी राजनैतिक दबाव इतना गहरा था कि अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार रखनेवाला कोई तीसरा दल ही स्वेच्छा से बीच-बचाव करने में समर्थ हो सकता है।

इस मौके पर माउंटबेटन ने सुझाव दिया कि संयुक्त राष्ट्र संघ को तीसरे दल के रूप में बुलाया जाय। लियाकत ने इस प्रस्ताव का स्वागत किया और कहा कि इससे हमलावरों को रोकने में उन्हें बल मिलेगा। उन्होंने जिन्ना के इस कथन का समर्थन नहीं किया कि कराची के हुक्म मात्र से ही ये हमलावर लौटाए जा सकते हैं। नेहरू जानना चाहते थे कि संयुक्त राष्ट्र संघ के विधान की किस धारा के अनुसार अपील की जा सकती है। चूंकि अब आधी रात हो गई थी इसलिए माउन्टबेटन ने सुझाया कि इस विषय को और बारीकी से देखना चाहिए। थकावट के मारे नेहरू ने स्वीकृति-सूचक गर्दन हिलाई और बैठक समाप्त हो गई।

दिल्ली लौटने के बाद माउन्टबेटन गांधीजी और मेनन से मिल चुके थे। दोनों संयुक्त राष्ट्र संघ की मध्यस्थता के पक्ष में थे। आज उन्होंने नेहरू से और बातें कीं। प्रस्ताव के पक्ष में उनका रुख अब उतना नकारात्मक नहीं था।

सरकारी भवन, नई दिल्ली
गुरुवार, १८ दिसम्बर १९४७

क्षितिज पर फिर काली घटाएं घिर आई हैं और जैसा कि अक्सर गर्म देशों की आबहवा में हुआ करता है, सूरज छिपने के पहले ही तूफान हमारे सिरों पर आ फटा। सरकारी भवन में पहुंचने वाली खबरों से पता चलता था कि काश्मीर का संकट और भी गहरा होता जा रहा है। युद्ध की ओर झुकाव बढ़ गया था। ऐसा लगता था कि पटेल ने कड़ा हुक्म दिया था कि जबतक पाकिस्तान हमलावरों को सहायता देना बन्द नहीं करता तबतक पाकिस्तान के साथ हुए किसी भी वित्त-सम्बन्धी समझौते पर अमल नहीं किया जायगा। सवाल पचपन करोड़ रुपयों का था और व्यापक राजनैतिक तथा नैतिक नतीजों के अलावा पाकिस्तान के लिए इसका आर्थिक परिणाम काफी गम्भीर होगा। पाकिस्तान के पास सिल्लक में केवल दो करोड़ रुपये थे, और उसे ऋण बहुत से चुकाने थे। इस बारे में सिर्फ यही तर्क दिया जायगा : "अपने सिपाहियों की हत्या करने को हथियार खरीदने के लिए हम उन्हें रुपया क्यों दें ?" और यह तर्क मंत्रिमंडल के सामने पेश किया जाने पर शायद ही उसका विरोध किया जाय।

अपने स्वतंत्र सूत्रों से भी भारतीय नेताओं को काश्मीर पर हमले में पाकिस्तान के सहयोग के अधिकाधिक सबूत प्राप्त हो रहे थे। उनके रुख में कड़ाई आने का यही प्रधान कारण था। कुछ लोगों का खयाल था कि काश्मीर की घटना एक बड़े और व्यापक षडयंत्र का छोटा अंश मात्र है। उनका कहना था कि भारतीय सेनाओं को काश्मीर में फंसाने के बाद पाकिस्तान हैदराबाद में संकट खड़ा करेगा और फिर पंजाब की सीमाएं पार कर स्वयं दिल्ली पर चढ़ दौड़ेगा।

एक दूसरा मत यह भी था, जो कम उन्मादपूर्ण होने पर भी कहीं अधिक खतरनाक था। वह यह कि अगर पाकिस्तान हमलावरों को प्रवेश करने से रोकने में असमर्थ था, तो यह काम स्वयं भारत को करना पड़ेगा।

लेकिन यह काम भारतीय फौजों को पाकिस्तानी सीमा से उस पार भेजने पर ही किया जा सकेगा। अगर पाकिस्तान ने हमला कर दिया तो छिपे युद्ध से खुला युद्ध कहीं श्रेयस्कर होगा। जहां तक इसके लिए उचित समय का सवाल था वे मेकबेथ[1] के इस सिद्धांत का समर्थन करते थे कि "अगर इसे करना ही है तो, जल्दी-से-जल्दी करना ज्यादा अच्छा होगा।" सरकारी क्षेत्रों में इस बारे में बड़ी चिन्ता फैली हुई थी कि सिखों की समस्या पर काश्मीर का कैसा असर पड़ेगा। उनका अनुमान था कि काश्मीर की तनातनी और युद्ध जितना अधिक चलता रहेगा, सिखों पर नियंत्रण रखना भी भारत सरकार के लिए उतना ही कठिन होता जायगा। ऐसा लगता था कि अगर लियाकत उचित राजनैतिक सुझाव पेश नहीं करेंगे, जिन्हें निगलना शायद उनके देश और उनके साथियों के लिए कठिन होगा, तो स्थिति निरन्तर खतरनाक होती जायगी।

जनता का सारा ध्यान काश्मीर पर केन्द्रित था। इस बीच पटेल उड़ीसा और मध्यप्रदेश से महत्वपूर्ण काम करके दिल्ली लौट आये थे। वी.पी. मेनन के सहयोग से वह उड़ीसा और छत्तीसगढ़ की पूर्वी रियासतों (जिनकी संख्या कुल नौ है, क्षेत्रफल छप्पन हजार वर्ग मील और आबादी सत्तर लाख) को इस बात के लिए राजी कर सके थे कि संघ-प्रवेश से एक कदम आगे बढ़कर अपने को दोनों पड़ोसी राज्यों में विलीन कर दें। नई शर्तों के अनुसार हालांकि सारे अधिकार नये संघ के अधीन चले जायंगे लेकिन राजाओं की व्यक्तिगत सम्पत्ति, खिताब और उत्तराधिकार के अधिकार आदि ज्यों-के त्यों कायम रहेंगे।

इससे सारे छोटे और बड़े राजाओं के लिए एक नई परम्परा का निर्माण हो गया था, जो अब उनको और भी ज्यादा बल से केन्द्रीय सरकार की ओर घसीटेगी। प्रसंगवश, यह याद दिलाना उचित होगा कि उड़ीसा की रियासतों को उड़ीसा प्रान्त के शासकीय सम्पर्क में लाने का

[1] शेक्सपियर के प्रसिद्ध दुखान्त नाटक 'मेकबेथ' के नायक।

पहला सुझाव करीब बीस वर्ष पहले साइमन-कमीशन की एक उपसमिति ने दिया था, जिसके अध्यक्ष थे साइमन के एक छोटे और ख्यातिहीन साथी मि. सी. आर. एटली।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
सोमवार, २२ दिसम्बर १९४८

भारतीय मंत्रिमंडल ने आखिर शनिवार को यह फैसला कर डाला कि हमलावरों को मदद देने के आरोप में पाकिस्तान के खिलाफ संयुक्त राष्ट्र संघ में अपील की . जाय। लियाकत और मुहम्मदअली कल शाम से दिल्ली में थे, लेकिन कल और आज की चर्चाओं का ऐसा कोई नतीजा नहीं निकला जिससे इस गम्भीर निर्णय को रद्द किया या टाला जा सके। अधिकांश समय अत्याचार के आरोपों और प्रत्यारोपों में ही निकल गया। शिकायत का औपचारिक पत्र आज नेहरू ने लियाकत को दे दिया। मामले को राष्ट्र संघ के समक्ष पेश करने की यह आवश्यक भूमिका थी। लियाकत ने जल्दी उत्तर देने का वादा किया। इस प्रकार काश्मीर के ऊपर होने वाले राजनैतिक और कूटनीतिक संघर्ष का पहला दौर समाप्त हुआ।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
बुधवार, ३१ दिसम्बर १९४७

१९४७ का वर्ष सामान्यतः भारत-पाकिस्तान सम्बन्धों और विशेषतः काश्मीर के भविष्य के लिए अपशकुन के साथ समाप्त हो रहा था। अलिप्त होकर भारत में व्यतीत नौ प्रयासपूर्ण महीनों का लेखा-जोखा करना कठिन था। तात्कालिक परिस्थितियां हमेशा हमारे विचारों और मान पर हावी रहती हैं।

कम-से-कम काश्मीर के सम्बन्ध ·में तो हम इस संकट की कुछ स्पष्ट

कल्पना के साथ १९४८ में प्रवेश कर रहे थे। जैसाकि माउंटबेटन का अनुमान था, एटली ने व्यक्तिगत हस्तक्षेप का प्रस्ताव ठुकरा दिया था। उनका विचार था कि सामान्य समझौता कराने वाले की भूमिका खेलने के अतिरिक्त वह कोई निश्चित काम नहीं कर सकेंगे। वह संयुक्त राष्ट्र संघ के "उचित माध्यम" पर निर्भर करना अधिक पसन्द करते थे। फिर भी, सावधानी से काम लेने पर जोर देते हुए उन्होंने नेहरू को एक बड़ा सुन्दर सन्देश भेजा था।

मि. एटली का उत्तर मिल जाने पर लियाकत के उत्तर के लिए अधिक न ठहर कर सरकार ने संयुक्त राष्ट्र संघ से अपील की दिशा में आगे बढ़ने का निश्चय कर लिया था। शिकायत की वाक्यावली नरम थी, और उसका मसविदा तब तैयार किया गया जब माउंटबेटन ग्वालियर में थे। उसमें चिन्ताजनक वाक्य केवल एक था, वह यह कि परिस्थिति का तकादा होने पर सरकार को सैनिक कार्यवाही करने का हक होगा। माउंटबेटन ने स्पष्ट कह दिया था कि धमकी या धमकी के संकेत के प्रति सुरक्षा परिषद की प्रतिक्रिया अनुकूल नहीं हो सकती।

माउन्टबेटन ने नेहरू को समझाने का भरसक प्रयत्न किया कि पाकिस्तानी धरती पर आक्रमण करने का, विशेषतः जब भारत की शिकायत (सं. रा. संघ के) विचाराधीन थी, क्या अर्थ होगा। विश्व के लोकमत पर तो इसका विघातक प्रभाव पड़ेगा ही, साथ ही दोनों उपनिवेशों में काम करनेवाले ब्रिटिश अफसरों को भी वापस चला जाना होगा। मेरे खयाल से, यह भारत की अपेक्षा पाकिस्तान के तात्कालिक हितों के अधिक विपरीत होगा। परन्तु नेहरू भली-भांति जानते थे कि इस प्रकार की किसी भी कार्यवाही से भारत में माउन्टबेटन की सेवाओं का अन्त हो जायगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ के पास भारत की अपील रवाना हो जाने के बाद ही लियाकत का उत्तर प्राप्त हो गया। वह प्रत्यारोपों का एक लम्बा सूचीपत्र ही था। प्रत्यारोपों को जानबूझकर काश्मीर तक सीमित नहीं

रखा गया, वरन् इस सामान्य प्रकरण तक फैला दिया गया था कि भारत ने विभाजन मानने से इन्कार किया और वह पाकिस्तान को नष्ट कर देने के लिए कमर कसे था। लियाकत जूनागढ़ से लेकर अब तक के सब कांडों में संयुक्त राष्ट्र संघ का हस्तक्षेप चाहते थे, "जिससे सारे विचाराधीन मतभेदों को मिटाया जा सके।" इन अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं की पृष्ठ-भूमि में यह समाचार उत्साहजनक है कि उरी पर कोई आक्रमण नहीं किया गया और वहां की भारतीय सेना की विरोधी सेना से कोई मुठभेड़ नहीं हो पाई। माउन्टबेटन का अनुमान है कि उरी पर हमला होना व्यापक संघर्ष का श्रीगणेश होगा।

: २० :

प्रायश्चित्त

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
सोमवार, ५ जनवरी १९४८

समाचार-पत्र काश्मीर पर माउन्टबेटन के रुख के विषय में तरह-तरह की अटकलों से भरे पड़े थे। इसका एक कारण था भारत सरकार द्वारा झगड़े को संयुक्त राष्ट्र संघ के सामने ले जाने का निश्चय। काफी दिनों से माउंटबेटन इसके समर्थक माने जाते रहे थे। लन्दन के 'डेली हेरल्ड' ने एक समाचार छापा था कि माउंटबेटन अब काश्मीर के विभाजन के लिए जोर दे रहे हैं, जिसके कारण उनके और नेहरू के बीच मतभेद पैदा हो गया है और इसके फलस्वरूप माउंटबेटन ने धमकी दी थी कि भारत और पाकिस्तान के बीच संघर्ष होने की स्थिति में वह त्याग-पत्र दे देंगे। इस विषय में मैं नेहरू के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री एच. वी. आर. आइंगर से मिला। नेहरू तुरन्त इस समाचार का खंडन करने को राजी हो गए। उन्होंने जोर देकर कहा कि यह कहानी "शत-प्रति-शत कल्पित है।"

इसके अलावा, एक अमरीकी समाचार-पत्र ने छापा था कि माउन्टबेटन "एक गुप्त योजना तैयार कर रहे थे, जिसका उद्देश्य राष्ट्रमंडल के स्वरूप में परिवर्तन करना था, जिसमें भारत उपनिवेश बने बिना ही ब्रिटिश-राष्ट्रमंडल का सदस्य बन सके।" इस कहानी का स्रोत लन्दन था और वह न्यूयार्क की तारीख देकर छापी गई थी। इसे दिल्ली के 'हिन्दुस्तान टाइम्स ईवनिंग न्यूज' ने उद्धृत किया था और कृष्ण-मेनन की दिल्ली-यात्रा से उसका सम्बन्ध जोड़ा था। ऐसे पेचीदा ढंग से निकाली गई खबर की पुष्टि या खंडन करने का सवाल ही नहीं पैदा होता। लेकिन इस समाचार में काफी सचाई थी। निःसन्देह, माउंटबेटन इस विषय पर काफी विचार कर रहे थे, लेकिन निश्चय ही वह किसी "गुप्त योजना के प्रणेता" नहीं थे।

इस बारे में भी काफी अफवाहें फैल रही थीं कि अपने १५ अगस्त के भाषण में माउंटबेटन ने भारत से जाने की जिस तिथि के बारे में निर्देश किया था, उस तिथि के बाद भीउन से गवर्नर-जनरल पद पर आसीन रहने के लिए कहा जायगा। मेरे लिए ऐसी अटकलों पर नियंत्रण रखना कठिन था, जिनका स्रोत दिल्ली के बाहर था, जो लोग दिल्ली में घटना-स्थल पर मौजूद नहीं थे, उन्हें मेरे लिए यह समझाना कठिन था कि अपने रोब और सम्मान के बावजूद माउंटबेटन वैधानिक गवर्नर-जनरल मात्र हैं। भारत सरकार स्वयं अपने समाचार-पत्र-सम्बन्धी कष्टों से पीड़ित थी। काश्मीर के झगड़े को संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्मुख भेजे जाने के निर्णय के अकाल बाहर फूट निकलने से नेहरू बड़े संकट में पड़ गए थे। यह समाचार मंत्रिमंडल के किसी व्यक्ति द्वारा ही बाहर पहुंच सकता था।

माउंटबेटन द्वारा गत बैठक में नेहरू को दिये गए सुझाव के अनुसार कर्नल कौल मेरे घर पर मुझे मिलने आये। कर्नल कौल गोपाला स्वामी आयंगार और शेख अब्दुल्ला के साथ जा रहे थे, जो लेक सक्सेस में भारत का प्रतिनिधित्व करेंगे। मेरा काम था कर्नल कौल को उनके सामने आने वाली जनसम्पर्क की कुछ समस्याओं के बारे में सलाह देना। मैंने उनसे साफ-साफ कह दिया कि शेख अब्दुल्ला का रंगीन... व्यक्तित्व सहज ही लुटिया डुबो दे सकता है। दूसरी ओर आयंगार, जिनके कन्धों पर मुख्यतः भारत का मामला पेश करने का भार रहेगा, अज्ञात व्यक्ति हैं। इसलिए लक्ष्य यह रहना चाहिए कि इस संतुलन को सुधारने के लिए आयंगार को आगे रखा जाय और अब्दुल्ला को पीछे। जैसी प्रेस-कांफ्रेंसें शेख अब्दुल्ला श्रीनगर में देते आये थे, वैसी लेक सक्सेस में सफल नहीं होंगी। मैंने चेतावनी दी कि मामले के बल को ज़रा भी कमजोर नहीं होने दिया जाय, क्योंकि परिषद् में पेश किये जाने के पूर्व ही वह प्रेस कांफ्रेंस द्वारा सबकी निगाह में आ जायगा।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
बुधवार, ७ जनवरी १९४८

रियासती विभाग के मंत्री सरदार पटेल की हार्दिक सहमति से माउंटबेटन इस सप्ताह बड़े और छोटे राजाओं से दो अलग-अलग दलों में सरकारी भवन में भेंट कर रहे थे। वह पुन: उनमें वह जीवन-शक्ति भरने का प्रयास कर रहे थे, जिसका राजाओं में स्वत: अभाव प्रतीत होता था। उन्होंने आज बड़े राजाओं को समझाया कि उनके राजकीय मामलों का नियंत्रण करने के लिए विशेषाधिकार समितियों की स्थापना करने का क्या महत्व था।

इस पर जो आम चर्चा हुई उसमें केवल अलवर-नरेश ने ही आपत्ति करने की जरूरत समझी। बड़े जोश और झगड़ालू स्वर में उन्होंने कहा, "अगर जनता नर्क में रहना पसन्द करे, तो उसे स्वर्ग में रहने के लिए मजबूर नहीं किया जाना चाहिए।" जब माउंटबेटन बड़े धैर्य के साथ यह बतला रहे थे कि राजाओं और राजपरिवार के लोगों द्वारा भारत सरकार की कूटनीतिक सेवा में शामिल होने के लाभ क्या होंगे, तो अलवर-नरेश ने उनकी बात काट कर कहा, "इसमें अहसान की कौन-सी बात हुई ! अगर मेनन रियासती विभाग के सेक्रेटरी बन सकते हैं, तो महाराज बीकानेर क्यों नहीं बन सकते ?" माउंटबेटन ने तीखेपन से जवाब दिया, "मैं यहां अहसान करने नहीं आया। मैं तो केवल स्थिति को सहज बुद्धि से समझाने का प्रयास कर रहा हूं।" संयोगवश, मैंने देखा कि आज सवेरे की बैठक में नवाब भोपाल ने वी. पी. मेनन को बड़े बंधु-भाव से गले लगाया था। अभिवादन का यह ढंग बहुधा एक राजा दूसरे राजा के लिए ही इस्तेमाल करता है।

सरकारी भवन, नई दिल्ली
शनिवार, १० जनवरी १९४८

माउंटबेटन ने राजाओं को जो सलाह दी थी उसका दूसरा अध्याय भी आज तीसरे पहर समाप्त हो गया। इस बार उन्होंने करीब पचास छोटे-बड़े राजाओं और उनके प्रतिनिधियों को संबोधित करते हुए एक बार पुनः समझाने की कोशिश की कि छोटे राज्यों को मिलाकर बड़े राज्य बनाने के क्या लाभ होंगे। जर्मनी के राज्यों का उदाहरण देते हुए उन्होंने बतलाया कि किस प्रकार उन्होंने नेपोलियन के राइन-संघ के साथ समझौता किया था। इन चर्चाओं से बहुत से राजाओं के ऐतिहासिक और राजनैतिक ज्ञान पर इतना दवाब पड़ा कि जब वे बैठक से बाहर आये तो ऐसे चौंधिया रहे थे, मानो बहुत देर तक किसी तेज रोशनी की ओर देखते रहे हों। लेकिन यह बतला देना उचित होगा कि कुछ समझदार राजा उनकी सलाह के पीछे निहित बुद्धिमानी और दूरदर्शिता को ठीक-ठीक समझ गए थे।

आज रात माउंटबेटन ने राजाओं को एक दावत दी। धौलपुर नरेश को सरकारी भवन में बातचीत में हिस्सा लेते देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई। क्योंकि पिछली बार जब मैं उनसे जुलाई में मिला था तो ऐसा लगता था कि वह अपनी रियासत की सीमा से बाहर निकलकर कभी दिल्ली में पैर नहीं रखेंगे। भोजन के बाद मैंने उनसे बात की। वह उन आन्दोलनों से चिंतित थे, जो, उनके कथनानुसार कांग्रेस उनके तथा अन्य पड़ोसी राजाओं में उकसा रही थी। जब मैंने पूछा कि क्या उनके पास इसके कोई प्रमाण हैं, तो उत्तर में वह डा. राममनोहर लोहिया के हाल ही में ग्वालियर में दिये एक गरमागरम भाषण का उदाहरण मात्र ही पेश कर सके। लेकिन, लोहिया कांग्रेस के अन्दर जयप्रकाशनारायण के दल के सदस्य हैं और यह दल शीघ्र ही कांग्रेस से अलग होने वाला था। वस्तुतः वे माउंटबेटन और पटेल की संघ-विलय नीति के ही खिलाफ थे और लाख चाहने पर भी उनकी पटेल या रियासती-विभाग के अभिकर्त्ताओं के रूप में कल्पना नहीं की जा सकती।

लेक सक्सेस के लिए रवाना होने से पहले बंबई के एक पत्रकार-सम्मेलन

में शेख अब्दुल्ला ने अपना पहला तीर छोड़ा। उन्होंने 'टाइम्स' और 'मैंचेस्टर गार्जियन' पर प्रहार करते हुए "बी.बी.सी. पर कल्पित आतंक फैलाने" का आरोप लगाया। साफ जाहिर था कि उन्हें काबू में रखना टेढ़ी खीर थी। अगर यह उस नीति का पूर्वाभास था कि जो वह अमरीका में अपनाने जा रहे थे, तब तो भारत के हित को आगे बढ़ाने का काम खतरे में ही था !

सरकारी भवन, नई दिल्ली
सोमवार, १२ जनवरी १९४८

दिल्ली जिमखाना क्लब में पत्रकारों की एक दावत में मुझे इस बात की पहली खबर मिली कि गांधीजी फिर आमरण अनशन शुरू करनेवाले हैं। उनके इस निश्चय की घोषणा प्रार्थना-सभा में इतनी अनायास हुई कि हम सभी स्तब्ध रह गए। मुझे तो और भी ज्यादा अचरज हुआ। इस घटना के कुछ ही पहले वर्नोन के साथ 'स्क्वेश'[१] खेलकर लौटते समय माउंटबेटन के बैठके की खिड़कियों के सामने से गुजरते हुए मैंने उन्हें गांधीजी के साथ बातचीत करते देखा था। मुझे मालूम था कि मुलाकात जल्दी में तय की गई थी, लेकिन यह कल्पना नहीं थी कि इसका कोई विशेष महत्व भी हो सकता है।

वास्तव में वह अपनी प्रार्थना-सभा के बाद ही माउंटबेटन से मिलने आये थे। इस प्रार्थना-सभा में उन्होंने कहा था कि यह उपवास तभी टूटेगा "जब मुझे विश्वास हो जायगा कि सब सम्प्रदाय के लोगों में हार्दिक मेल हो गया है। और यह किसी बाहरी दबाव से न होकर कर्त्तव्य की आंतरिक चेतना मात्र से हुआ है ... भगवान ही मेरा सर्वोच्च और एकमात्र पथ-प्रदर्शक है, इसलिए मैंने यह महसूस किया कि यह निश्चय तो मुझे किसी और सलाहकार की सलाह के बिना ही लेना चाहिए।" प्रार्थना-सभा के पहले उनका मौन-दिवस खुला था। फलस्वरूप नेहरू और पटेल तक को उनके

१. एक अंग्रेजी खेल।

प्रस्तावित निश्चय का पहले से कोई पता न चल सका। फिर उन्होंने दिल्ली की दयनीय साम्प्रदायिक स्थिति के बारे में अपनी गहरी पीड़ा की बात कही। उन्होंने कहा कि ऐसा लगता है कि यह साम्प्रदायिकता जीवन के हर अंग में समा गई है। उन्होंने कहा कि वह स्वयं इसका प्रायश्चित्त करेंगे।

माउंटबेटन के साथ अपनी बातचीत में गांधीजी ने माउंटबेटन से पूछा कि भारत सरकार द्वारा पाकिस्तान को नकद सिल्लक में से पचपन करोड़ रुपये देने से इंकार करने के बारे में उनका क्या मत था। माउंटबेटन ने निःसंकोच उत्तर दिया कि वह इस निश्चय को निहायत अराजनीतिज्ञ और अक्लमंदी से दूर समझते हैं। गांधीजी ने कहा कि इस विषय में वह नेहरू और पटेल से बात करेंगे। उन्होंने कहा कि वह उन्हें स्पष्ट कर देंगे कि इस पूछतांछ का प्रारम्भ उन्होंने ही किया था और उन्होंने ही इस विषय में माउंटबेटन की राय जाननी चाही थी।

जहां तक उपवास का सवाल था, माउंटबेटन तुरन्त समझ गए कि गांधीजी की अन्तरात्मा की आवाज को चुनौती देना उनके लिए असंभव होगा। इसलिए उन्होंने बिना किसी झिझक के गांधीजी से कहा कि वह उनके साहसपूर्ण निश्चय का स्वागत करते हैं और हार्दिक कामना करते हैं कि उनका उपवास उस नई भावना का निर्माण करने में सफल होगा, जिसकी आज इतनी सख्त जरूरत है। मित्रता और समझदारी की इस भावना के साथ बैठक समाप्त हुई और गांधीजी अपने महान निश्चय को कार्य रूप में परिणत करने के लिए बिदा हुए। उपवास कल सवेरे ग्यारह बजे शुरू होगा।

जिमखाना क्लब की दावत का अन्त होते देर नहीं लगी। संवाददाता लोग यह समाचार और इसकी प्रतिक्रिया अपने-अपने पत्रों को भेजने चले गए। अब धारणा यह थी कि उपवास बड़ा सामयिक था, इससे कम में महात्माजी वह मनोवैज्ञानिक सफलता प्राप्त नहीं कर सकते, जो उन्होंने कलकत्ता में अर्जित की थी। काफी दारोमदार सिखों के रुख पर निर्भर करेगा। अभी तक गांधीजी उनपर हिन्दुओं और मुसलमानों के समान असर डालने में असमर्थ रहे थे। जबसे वह दिल्ली में थे, राजधानी में पूर्वी पंजाब से आने

वाले सिख विस्थापितों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही थी ।

इस बारे में भी काफ़ी अटकलें लगाई जा रही थीं कि गांधीजी के इस निश्चय का पटेल के साथ उनके और नेहरू के संबंधों का क्या नाता था ? संपत्ति के बंटवारे के पचपन करोड़ रुपये रोक कर पाकिस्तान के खिलाफ आर्थिक अंकुश लगाने के एकपक्षीय निर्णय के विरोध में गांधीजी के हस्तक्षेप से मंत्रिमंडलीय संकट और भी गहरा हो जायगा। क्योंकि इस निर्णय की उनपर बहुत बड़ी प्रतिक्रिया हुई थी, और इस विषय में वह पटेल से टक्कर लेने को तैयार थे ।

नि:संदेह, नेहरू और पटेल एक दूसरे से दूर होते जा रहे थे । जैसे-जैसे राजनैतिक आकाश के इन दो जाज्ज्वल्यमान नक्षत्रों के पीछे अलग-अलग अनुगामियों का समूह एकत्रित होता जा रहा था, वैसे-ही-वैसे यह अन्तर भी बराबर बढ़ रहा था। गांधीजी अपने भगीरथ प्रयत्न से भारतीय सरकार के इन दोनों बड़े नेताओं के बीच की खाई को पाटना चाहते थे, क्योंकि वह जानते थे कि उनके अलावा और कोई यह काम नहीं कर सकता, और अगर वह अपने प्रयत्न में असफल रहे तो कांग्रेस दल ही नहीं, प्रत्युत सारा शासन ही भयानक संकट में फंस जायगा ।

गांधी-उपवास की विलक्षण आकर्षण-शक्ति को समझने के लिए आपको उसके आस-पास ही रहना होगा। गांधीजी का सारा जीवन ही जनता को प्रभावित करने की कला का रोचक अध्ययन है, और इस रहस्यमय क्षेत्र में उनकी महान सफलताओं को देखकर कहा जा सकता है कि वह नेतृत्वकला के महानतम कलाकार हैं। सबकी समझ में आनेवाले प्रतीकों द्वारा काम करने की उनमें अद्‌भुत योग्यता थी। नैतिक दबाव और आत्मशुद्धि के लिए उपवास करना हिन्दू धर्म का अभिन्न अंग है। इस उपवास से ऐसी शक्ति पैदा हुई कि सब लोग अपने-अपने कामों को छोड़कर उसकी ओर खिंचे चले आ रहे थे और उस वेदनामय कर्त्तव्य में हाथ बंटा रहे थे, जिसकी कोई भी इन्सान पूरीतौर से उपेक्षा नहीं कर सकता।

गजनेर, बीकानेर,
बुधवार, १४ जनवरी १९४८

गांधीजी के उपवास के बावजूद निश्चय किया गया कि माउंटबेटन की चिर-प्रतीक्षित बीकानेर-यात्रा स्थगित न की जाय। लेकिन महात्माजी के प्रति सम्मान-स्वरूप शाही-भोज अवश्य नहीं होगा।

हमारे जाने के थोड़े समय पूर्व पटेल और नेहरू अलग-अलग माउंट-बेटन से मिलने आये। गांधीजी के निर्णय के बारे में उनकी प्रतिक्रियाएं इस बात की सबसे अच्छी समीक्षा हैं कि इस समय दोनों के विचारों और दृष्टिकोणों में कितना अन्तर था। पटेल ने कहा कि उपवास का समय बहुत गलत चुना गया है और उसका असर गांधीजी के इच्छित प्रभाव के बिल्कुल विपरीत होगा। दूसरी ओर नेहरू गांधीजी के निश्चय के प्रति अपनी खुशी और सराहना की भावना छिपाने में असमर्थ थे।

लालगढ़ महल, बीकानेर,
शुक्रवार, १६ जनवरी १९४८

आज पणिक्कर के साथ, जो अब भी महाराज के दीवान-पद पर थे, मेरी रोचक बातचीत हुई। वह गांधीजी के उपवास के बारे में बहुत आशा-वान थे। उनके विचार से यह उपवास पटेल के खिलाफ लक्ष्य करके किया गया था। उन्होंने कहा कि तीन महीने पहले जब गांधीजी दिल्ली आये थे तो पटेल और गांधी में संघर्ष की नौबत आ गई थी। तब गांधीजी ने कहा था, "बल्लभभाई, मैं तो हमेशा समझता आया था कि तुम और हम एक हैं। लेकिन देखता हूं कि हम दो हैं।" बापू की इस गलतफहमी से पटेल की आंखें भर आई थीं।

दोनों के संबंधों के बारे में पणिक्कर की समीक्षा इस प्रकार थी: हालांकि पटेल का कांग्रेस-संगठन पर पूरा नियंत्रण था पर वह जानते थे कि गांधीजी अब भी जनता के सर्वस्व हैं, और अगर वह चाहें तब भी

महात्माजी के प्रभाव को तोड़ नहीं सकते। उधर गांधीजी नेहरू के हाथ मजबूत करने के लिए कटिबद्ध थे। लेकिन ऐसा करने में वह पटेल को तोड़ना नहीं, सिर्फ झुकाना चाहते थे।

इसके बाद पणिक्कर ने गांधीजी के राजनैतिक विवेक की प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि लगभग बीस वर्ष के बाद वह हाल में गांधीजी से मिले, और इस मुलाकात में उन्होंने गांधीजी से विनय की कि रियासतों में वैधानिक सुधार के काम में धीरे-धीरे आगे बढ़ने की नीति अपनायें। गांधीजी ने विरोध प्रकट करते हुए कहा "आप चाहते हैं कि मैं प्रतिक्रियावादियों को पैर जमाने दूं।" पणिक्कर ने कहा, "इसका मेरे पास कोई उत्तर न था।" बात सही भी थी। फिर पणिक्कर ने कहा कि गांधीजी अपने श्रोताओं की भाषा बोलते थे। इसीलिए उनकी प्रार्थना-सभा जैसे अवसर अपनी सादगी के कारण भ्रम पैदा कर देते थे। व्यक्तिगत चर्चा में वह ज्यादा तीखेपन से काम लेते थे। उन्होंने जोर देकर कहा कि गांधीजी का "गुप्तचर' विभाग भी बड़ा सुव्यवस्थित था। सारे देश से उनके पास व्यक्तिगत पत्र आते रहते थे, जिनसे उन्हें देश की स्थिति के समाचार मिलते रहते थे।

आज तीसरे पहर हमने सुना कि सद्‌भावना के प्रतीकस्वरूप मंत्रि-मंडल ने पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपये देना स्वीकार कर लिया है। फिल्म शो के बाद माउंटबेटन ने कहा कि पिछले तीन महीनों की यह सर्वश्रेष्ठ घटना है। लेकिन पणिक्कर ने चिन्ता प्रगट करते हुए कहा कि पटेल पर इस फैसले की क्या प्रतिक्रिया हुई होगी!

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
शनिवार, १७ जनवरी १९४८

सवेरा होते ही हम दिल्ली के लिए चल पड़े। शाही अतिथि-सत्कार की छाप हम अपने साथ लेकर चले थे। बीकानेर परम्परा और सुधार का सुन्दर मिश्रण था और अपनी जनता की सामाजिक एकता और नये राष्ट्र

के प्रति राजनैतिक निष्ठा के मामले में अपने नरेश-बंधुओं के सामने एक अच्छा उदाहरण पेश कर रहा था।

हमारे लौटने के थोड़ी ही देर बाद माउंटबेटन-दम्पति गांधीजी से मिलने बिड़ला-भवन गये। गांधीजी काफी कमजोर हो गए थे। उन्होंने स्वागत करते हुए कहा, "आपको यहां बुलाने के लिए उपवास की जरूरत पड़ती है।" फिर उन्होंने इसे समाप्त करने के बारे में चर्चा की। गांधीजी ने कहा कि उन्होंने सात शर्तें रखी थीं। इन सबका संबंध दिल्ली और समूचे भारत में रहनेवाले मुसलमानों की बुनियादी सुरक्षा और नागरिक अधिकारों से था। उनके पूरे होने पर ही वह उपवास समाप्त करने का विचार कर सकते थे।

: २१ :

गांधी का बलिदान

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
रविवार, १८ जनवरी १९४८

पचपन करोड़ के बारे में मंत्रिमंडल का फैसला होते ही राजेंद्रबाबू और मौलाना आजाद के निर्देशन में एक आन्तर-साम्प्रदायिक-शांति-कमेटी की स्थापना की गई। इस कमेटी ने बड़े सराहनीय उत्साह से काम किया, और आज सवेरे महात्माजी को यह विश्वास दिलाने में सफल हुई कि दिल्ली में आवश्यक हृदय-परिवर्तन हो गया है और अब उन्हें अपना उपवास तोड़ देना चाहिए। उपवास को शुरू हुए एक सौ इक्कीस घंटे से ज्यादा हो चुके थे, जिससे गांधीजी के कृश शरीर की संचित-शक्ति पर भारी जोर पड़ा था।

उपवास ने मुसलमानों का मनोबल बढ़ाने में निःसंदेह भारी योग दिया था। लेकिन सिख लोग अवश्य अड़े हुए थे। "गांधी को मरने दो" के नारे लगाते हुए और हाथ में काले झंडे लिये सिखों के जलूस बिड़ला-भवन के सामने से निकाले गए। लेकिन सिख-प्रतिनिधियों ने अन्तर-साम्प्रदायिक कमेटी में भाग लेने से इंकार नहीं किया।

अपनी प्रार्थना-सभा को आज शाम भेजे गए एक सन्देश में गान्धीजी ने कहा कि अगर उनका प्रण पूरा हो गया तो वह "दुगने बल से भगवान से प्रार्थना और कामना करेंगे कि वह पूर्णायु होकर आखिरी क्षणतक मानवता की सेवा करते रहें।" कुछ विद्वान पूर्णायु का अर्थ कम-से-कम एक सौ पच्चीस साल मानते हैं और कुछ एक सौ तैंतीस।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
मंगलवार, २० जनवरी १९४८

गान्धीजी के उपवास की समाप्ति के उपलक्ष में होने वाली खुशियां बिड़ला-भवन के बागीचे में हुए बम्ब-कांड से फीकी पड़ गईं; यह हाथ का बना बम उपवास के बाद की पहली प्रार्थना-सभा में फूटा, जिसमें गान्धीजी उपस्थित थे। विस्फोट का सारा जोर एक दीवाल पर पड़ा, जो थोड़ी-सी ढरक गई थी। किसी के कोई चोट नहीं पहुंची, न कोई भगदड़ ही मची। गान्धीजी का प्रवचन ऐसे चलता रहा मानो कोई अनिष्टकारी घटना घटी ही न हो। लेडी माउन्टबेटन ने समाचार सुनते ही वहां पहुंचने पर उन्हें बिलकुल अनुद्विग्न पाया। उन्होंने लेडी माउन्टबेटन से कहा, "मैं समझा कि कहीं नजदीक में सैनिक-अभ्यास चल रहे हैं।"

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
शुक्रवार, ३० जनवरी १९४८

माउन्टबेटन आज मद्रास से वापस आ गए। वहां जनता ने उनका हार्दिक स्वागत किया।

शाम को ६ बजने में १० मिनट के लगभग मैं जार्ज निकोल्स के कमरे में गया। उन्होंने बताया कि गांधीजी की हत्या का प्रयत्न किया गया था और उन्हें तीन गोलियां लगी हैं। आधे घंटे बाद मैंने माउन्टबेटन के ड्राइवर पियर्स से सुना कि गांधीजी नहीं रहे। उसने मोटर में लगे हुए रेडियो से यह समाचार सुना था। उसने बताया कि मान्उटबेटन तत्काल सीधे बिड़ला-भवन जा रहे हैं।

मैं मोटर के पास ही खड़ा था कि माउन्टबेटन बाहर आये। उन्होंने मुझे हाथ के इशारे से अपने साथ चलने को कहा। वह बहुत व्यग्र थे और छोटे-छोटे अधूरे वाक्यों में बोल रहे थे। उन्होंने बताया कि राजगोपालाचारी ने कलकत्ता से फोन किया था कि नेहरू की रक्षा के अधिक-से-अधिक प्रबन्ध

की आवश्यकता है। केवल दो दिन पूर्व ही जब नेहरू अमृतसर की एक सभा में भाषण दे रहे थे तो दो व्यक्तियों को हथगोलों सहित गिरफ्तार किया गया था।

माउन्टबेटन का खयाल था कि यह घटना अत्यन्त गम्भीर है। इससे नेहरू बिलकुल एकाकी रह गए हैं और राजनैतिक रूप से बे-सहारे-से हैं। अब सब-कुछ इस बात पर निर्भर करता था कि उनमें आगामी कुछ घंटों की स्थिति पर नियंत्रण रखने की कितनी क्षमता है। उनका शीघ्र-से-शीघ्र राष्ट्र को संदेश देना आवश्यक है; परन्तु उन्हें जो कुछ कहना है, उसपर पहले विचार कर लेना चाहिए, क्योंकि देश उनके कहे पर चलेगा।

हमारे बिड़ला-भवन पहुंचने के समय तक वहां भारी भीड़ जमा हो चुकी थी। चारों ओर गड़बड़ी थी। नौजवानों की भीड़ भवन की खिड़कियों पर टूटी पड़ रही थी। अन्दर लगभग सभी मंत्री और प्रमुख कांग्रेसजन शोक से स्तब्ध खड़े थे। हम गांधीजी के शयन-कक्ष में गये। वहां धूप की सुगन्ध आ रही थी। कमरे में लगभग ४० व्यक्ति मौजूद थे, जिनमें नेहरू और पटेल भी थे। हर एक की आंखों से आंसू बह रहे थे। कमरे के बाहर असंख्य जूते रखे थे, जिन्हें लोगों ने अन्दर आने के पहले उतार दिया था।

सुदूर कोने में गांधीजी का निष्प्राण शरीर प्रतिष्ठित था। पहले मैंने समझा कि उसे किसी बड़े कम्बल से ढंक दिया गया है, परन्तु बाद में मैंने देखा कि उनके आसपास लगभग एक दर्जन महिलाएं बैठी थीं और आर्त्त स्वर में प्रार्थना कर रही थीं। उनमें से एक महिला उनके सिर को सम्भाले हुए थी।

गांधीजी की मुद्रा शान्त थी और तीव्र प्रकाश में कुछ पीली दिखलाई पड़ती थी। उनका लोहे के फ्रेम का चश्मा, जो उनकी छवि का अविच्छिन्न अंग बन गया था, उतार लिया गया था। धूप की सुगन्ध, महिलाओं के भजन का स्वर, छोटा-सा दुर्बल शरीर, सोती हुई-सी मुख-मुद्रा और मूक-दर्शक—कदाचित ये मेरे जीवन के सबसे अधिक सनसनीपूर्ण क्षण थे! वहां खड़ा-खड़ा मैं भविष्य के बारे में व्याकुल हो रहा था, इस दुष्कृत्य पर चकरा रहा

था। परन्तु पराजय के स्थान पर विजय की अनुभूति भी कर रहा था। मैं महसूस करता था कि इस छोटे-से पुरुष के आदर्शों की शक्ति हत्यारे की गोलियों और उनमें निहित विचार-धारा को दबाने के लिए काफी प्रबल सिद्ध होगी।

कुछ देर तक मौन श्रद्धांजलि देने के बाद हम बड़े कमरे में आ गए। बाहर जन-समुदाय बढ़ता ही जा रहा था और खिड़कियों के कांचों पर लगातार हाथ पीटे जा रहे थे। मंत्रिमंडल के सदस्य दूसरे कमरे में थे। अतएव माउन्टबेटन उनसे बात करने के लिए वहां चले गए।

मैंने माउन्टबेटन को कहते हुए सुना कि गांधीजी ने उनसे अन्तिम भेंट में कहा था, "मेरी सबसे बड़ी इच्छा नेहरू और पटेल में हार्दिक मेल कराने की है।" यह सुनकर दोनों ने नाटकीय ढंग से एक-दूसरे का आलिंगन किया। कुछ देर बाद माउन्टबेटन बाहर निकल आये। उन्होंने कहा, "पर मैंने पटेल को नेहरू के साथ आज रेडियो पर बोलने को सहमत कर लिया है।" वह इसे बड़ी विजय समझते थे—और इसमें तथ्य भी था। उन्होंने फिर कहा कि सब कुछ नेहरू द्वारा स्थिति को तुरन्त सम्भाल लेने पर निर्भर करता है।

तनातनी इतनी अधिक थी कि कोई भी असावधानी भरा शब्द या अफवाह दावानल के समान फैल जायगी। माउन्टबेटन के आते ही किसी आतंक फैलाने वाले ने उनका इन शब्दों से स्वागत किया था, "हत्यारा मुसलमान था!" उस समय तक हत्यारे के धर्म और नाम का हमें कोई पता नहीं था। परन्तु माउन्टबेटन ने यह समझ कर कि यदि वह मुसलमान था तो संसार की कोई शक्ति नितान्त विनाशक गृह-युद्ध को टाल नहीं सकती, अन्तःप्रेरणा से तुरन्त उत्तर दिया, "मूर्ख, तुम्हें पता नहीं कि वह हिन्दू था!"

कुछ मिनट बाद मुझे वी. पी. मेनन से पता चला कि हत्यारा एक मराठा है। जैसे ही गांधीजी अपनी प्रार्थना-सभा में जाने के लिए निकले उसने बिलकुल निकट से उनपर तीन गोलियां चलाईं। मैंने डाक्टर से भी बात की, जो अन्तिम समय से गांधीजी के पास था। उसने कहा कि मकान में एक भी

दवा नहीं थी, लेकिन अगर होती भी तो कोई फायदा न होता। गान्धीजी ने जरा-सा पानी पिया और फिर उनकी चेतना जाती रही, जो कभी नहीं लौटी। अन्त्येष्टि के सम्बन्ध में काफी चर्चा हुई। गांधीजी का स्पष्ट आदेश था कि उनके शरीर को सुरक्षित न रखा जाय, "बल्कि हिन्दू-पद्धति के अनुसार शीघ्र-से-शीघ्र भस्म कर दिया जाय।" माउंटबेटन चाहते थे कि दाह-संस्कार कम-से-कम २४ घंटे बाद हो, ताकि उपयुक्त व्यवस्था की जा सके। परन्तु स्पष्ट दिखलाई पड़ रहा था कि वह कल प्रातःकाल किया जायगा। अतएव प्रबन्ध का भार मंत्रालय को सौंप देने का निश्चय किया गया। माउन्टबेटन ने अपनी अंग-रक्षक टुकड़ी को भी मदद के लिए भेज दिया था। समय के साथ भीड़ बढ़ती ही गई। मौलाना आजाद जैसे कुछ लोग नीरव चिन्ता में निरत थे, श्री मुंशी जैसे कुछ अन्य व्यक्ति स्वेच्छा से व्यवस्था करने में व्यस्त थे। बाहर भीड़ बढ़ती जा रही थी और गांधीजी के शरीर के दर्शनों के लिए आग्रह कर रही थी। चारों तरफ से सैकड़ों आंखें भवन पर लगी हुई थीं और लगता था कि शीशों की खिड़कियां शायद ही जन-समूह के दबाव के भार को संभाल पायंगी।

मैंने नेहरू को इस सामूहिक हमले के खतरे के प्रति सचेत किया। नेहरू वर्णनीय रूप से उदास और चिंतित लग रहे थे, लेकिन उनकी वाणी शान्त और आश्चर्यजनक रूप से नियंत्रित थी। उन्होंने कहा कि सब व्यवस्था कर दी गई है। शरीर को बाहर ले जाकर एक मेज पर रख दिया जायगा, जिसमें जनता उनको अपनी श्रद्धांजलि दे सके।

भीड़ का शोर-गुल बढ़ने पर वह अकेले—बिना किसी अंग-रक्षक के—उसके बीच चले गए। उनके सेक्रेटरी ने मुझसे उनकी रक्षा के बारे में चिन्ता व्यक्त की। उधर माउन्टबेटन ने इंदिरा तथा एच. एम. पटेल को अधिक-से-अधिक सजग रहने की चेतावनी दी।

हम मौलाना आजाद तथा देवदास गांधी को साथ लेकर ८ बजने में २० मिनट पर वापस आ गए। देवदास के यह कहने पर कि हत्यारा अवश्य ही कोई पागल होगा, माउन्टबेटन ने उत्तर दिया, "यदि इतना

ही होता तो मैं चिन्ता न करता; मुझे तो यह एक सोच-विचार कर रचे हुए षड्यन्त्र का परिणाम मालूम होता है ।" मौलाना यद्यपि अंग्रेजी में बोल सकते थे, फिर भी वह बोलते नहीं । उन्होंने सम्मति-सूचक ढंग से सिर हिला दिया । माउन्टबेटन मानते थे कि यह एक महान विपदा है । किन्तु वह आशा और प्रार्थना करते थे कि गांधीजी का बलिदान प्रत्येक व्यक्ति को सोचने और अपना मार्ग सुधारने की प्रेरणा करेगा ।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
शनिवार, ३१ जनवरी १९४८

रात भर लोग अन्तिम दर्शन के लिए गांधीजी के शरीर के सामने से गुजरते रहे । मृत शरीर को नहलाने का काम उनके पुत्रों ने किया । नाश्ते के बाद माउन्टबेटन-दम्पति (लेडी माउन्टबेटन कल रात ही मद्रास से लौटी थीं) और उनके कर्मचारी शव-यात्रा के प्रस्थान के समय उपस्थित रहने के लिए बिड़ला-भवन पहुंच गए । अर्थी नई दिल्ली और पुरानी दिल्ली होती हुई छः मील की यात्रा कर जमुना के किनारे स्थित एक विशाल मैदान, राजघाट, तक जायगी । सारे रास्ते पर सैनिक लोग तैनात कर दिये गए । जाहिर था कि इस भारी प्रशासकीय कार्य का भार संभालने में सैनिक और नागरिक अधिकारियों ने विलक्षण कार्यकुशलता का परिचय दिया था ।

हमारी कम-से-कम एक चिंता तो दूर हो गई । जब गान्धीजी की हत्या का पहला समाचार मिला, उस समय एक क्षणिक और अव्यक्त आशंका लग रही थी कि कहीं हत्यारा मुसलमान न हो । अगर ऐसा होता तो दूसरी साम्प्रदायिक प्रतिक्रिया विनाशकारी होती । तुरन्त ऐलान कर दिया गया कि हत्यारा, गोडसे महाराष्ट्रीय था और हिन्दू महासभा का सदस्य है । यह समाचार हिन्दू-मानस को जड़ से हिला देगा । बिड़ला-भवन पहुंचने पर हम कल से भी अधिक बड़ी भीड़ में दब गए । अर्थी की गाड़ी को कांग्रेस के झण्डों और फलों से सजा कर तैयार किया गया था, जिसे नौसेना

के सैनिक खींचेंगे। अर्थी के निकट स्थान पाने के लिए मंत्री और जनरलों को सामान्य नागरिकों से कन्धे-से-कंधे मिलाना पड़ रहे थे—यह गांधीजी के मन की चीज थी।

कांग्रेस के चार आना सदस्य, जो उनकी कितनी ही लड़ाइयों के सैनिक रहे थे, पूरे जोश के साथ वहां उपस्थित थे। शरीर को छत से लाकर अर्थी पर रख दिया गया।

जब शव को अर्थी पर प्रतिष्ठित किया गया, तो एक बार फिर मुझ पर उस शान्त-मुद्रा का गम्भीर असर पड़ा। आसपास गांधीजी के पुत्र और पौत्रियां बैठी थीं। बालिकाएं अब भी रो रही थीं और धीरे-धीरे उनके सिर पर थपकियां दे रही थीं। पटेल भी पास ही निश्चल भाव से सामने देखते बैठे हुए थे। वह पीले पड़ गए थे और रुग्ण दिखलाई पड़ते थे। वह व्यवस्था के उन कठिन कामों में कोई भाग नहीं ले रहे थे, जिनमें नेहरू और माउन्टबेटन जुटे हुए थे।

गई रात नेहरू और पटेल दोनों के ही भाषण बहुत मर्मस्पर्शी थे। पहले से तैयार न किये जाने के कारण वे ज्यादा प्रभावशील बन पड़े थे। गांधीजी के निधन से पटेल की व्यक्तिगत क्षति तो हुई ही, साथ ही उन्हें गृह-मंत्री की हैसियत से भी एक भारी धक्का पहुंचा। यह सच था कि गांधीजी ने संरक्षण की व्यवस्था स्वीकार करने से इंकार कर दिया था परन्तु यह भी उतना ही सच था कि दस दिन पूर्व के बम-विस्फोट और कल के जघन्य-कार्य में सम्बन्ध था और पुलिस इतने दिनों तक उसकी टोह पाने में असफल रही थी।

गोलियां खाकर गिरने से पूर्व गांधीजी पटेल से ही बातें कर रहे थे और उन्हें बातचीत के कारण कुछ विलम्ब भी हो गया था। पटेल ने अर्थी के पूरे जलूस में शामिल होकर इसका पूर्ण प्रायश्चित्त किया, क्योंकि उनकी ७२ वर्ष की अवस्था और गिरा हुआ स्वास्थ्य इसके योग्य नहीं था।

अंत में उस अपार मानव-सागर से अपना रास्ता निकालता हुआ अर्थी का जलूस आगे बढ़ चला। इस समय लगभग ग्यारह बजे थे और सारे रास्ते

बापू की अर्थी का जलूस

बापू की दाह-क्रिया के समय लार्ड और लेडी माउंटबेटन अन्य नेताओं के साथ

विशाल जन-समूह एकत्रित था। उनकी संख्या इतनी थी कि पुलिस और सेना उसे काबू में नहीं रख सकती थी। उनके भारी दबाव के कारण अर्थी की चाल एक मील प्रति घंटा से अधिक नहीं बैठ सकी। जलूस के आगे बढ़ने की गति इतनी धीमी होने के कारण लोगों ने जलूस के साथ चलना शुरू कर दिया, जिसके फलस्वरूप थोड़ी देर में अर्थी के पीछे चलने वाले समूह की संख्या इतनी ही विशाल हो गई जितनी कि आगे मौजूद लोगों की थी।

सरकारी भवन में लौटने पर हमने दरबार भवन के गुंबद के ऊपर चढ़ कर देखा। जलूस 'किंगजवे' के खुले मैदान पर मानो रुक गया था। भीड़ ने अर्थी के आसपाप एकत्र होकर आगे बढ़ना असंभव बना दिया था।

मुझे लगा कि हम इस शाही मार्ग पर गांधीजी का प्रथम और अंतिम दर्शन कर रहे थे। जिस पुरुष ने ब्रिटिश राज का अंत करने का सबसे अधिक प्रयत्न किया, वह आज अपने निधन के पश्चात ऐसी श्रद्धांजलि प्राप्त कर रहा था, जिसको पाने का कोई वाइसराय स्वप्न भी नहीं देख सकता था।

गांधीजी एक सायंकाल इस नश्वर शरीर को त्याग देते हैं और दूसरे दिन उन्हें अन्त्येष्टि के लिए ले जाया जाता है। राजकीय ठाटबाट नहीं होता, किन्तु फिर भी लाखों नर-नारी उनके दर्शन के लिए टूट पड़ते हैं। इसके बाद भी क्या कोई कह सकता है कि जनता गांधीजी का अनुसरण नहीं करती थी ?

जब गवर्नर-जनरल और उनका दल, जिसमें सब मिला कर बीस लोग थे, विशाल वीरान मैदान में पहुंचा, पहली नजर में भीड़ की असीमितता का अन्दाज लगाना कठिन था, क्योंकि मैदान बिलकुल सपाट होने के कारण आकार का ठीक पता नहीं लग सकता था; लेकिन जब हम ईंटों के छोटे चबूतरे और लकड़ी के ढेर के पास चले तो हर तरफ क्षितिज तक जन-समूह ही जन-समूह खड़े पाया। मेरे हृदय में एक बार फिर 'सामूहिक आक्रमण' का भय जाग उठा, जैसा कि कल बिड़ला-भवन में हुआ था। हमारे और विशाल जनसमूह के बीच भारतीय हवाई बेड़े के हवाबाज घेरा

डाले खड़े थे; लेकिन क्या वे जनसमूह को रोकने में सफल हो सकेंगे ? खतरे के प्रति सावधानी के तौर पर, जिसमें भीड़ का रेला हमें चिता में न झोंक दे, माउन्टबेटन ने तय किया कि हमें और भीड़ के निकटतम भाग को जमीन पर बैठ जाना चाहिए ।

समय बीतने के साथ ही तनाव बढ़ता जा रहा था । महात्माजी के शिष्य चिता के निकट बैठे हुए चुपचाप सफेद फूलों की माला बना रहे थे । किसी और प्रकार की तैयारी नजर नहीं आती थी । चिता जलाने के लिए घी भी पास रखा था । गंगाजल जस्ते के एक पात्र में भरा हुआ था ।

जब अर्थी वहां पहुंची तो उसके साथ लाखों लोगों का एक नया रेला आया । उस भीड़ में छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष का कोई भेद नहीं रह गया था । प्रत्येक व्यक्ति स्वर्गीय बापू को श्रद्धांजलि अर्पित करने को व्याकुल था । गवर्नर और भंगी, राजनीतिज्ञ और किसान, स्त्री और पुरुष सभी चिता प्रज्ज्वलित होने के पूर्व उनके शरीर पर फूल चढ़ाने के लिए आतुर थे । पुरोहित ने वेद-मंत्रों द्वारा संस्कार आरम्भ कर दिया । भीड़ का जोर इतना अधिक था कि हमें डर लग रहा था कि कहीं हम चिता में न जा पड़ें ।

अन्त में चिता प्रज्वलित कर दी गई, और सम्पूर्ण वातावरण 'महात्मा गांधी जिन्दाबाद !' 'महात्मा गांधी की जय !' आदि के गगन-भेदी नारों से गूंज उठा । भीड़ ने पागल होकर सारी व्यवस्था भंग कर दी । जब चिता के पास घेरा बनाने के हमारे प्रयत्न विफल हो गए तो माउन्टबेटन उठ खड़े हुए और दूर तक दृष्टि डालते हुए—मानो वह सैनिक सहायता की आवश्यकता महसूस कर रहे हों—बोले : "हमें अब चलना चाहिए ।" इतना कह कर वह चल दिये और हम बहुत से लोगों ने भी उनका अनुकरण किया । इसका अच्छा परिणाम हुआ । बहुत से लोगों का रुख बदल गया ।

जैसे-जैसे हम भीड़ से बाहर जा रहे थे चिता की ज्वालाएं और धुआं आकाश की ओर उठता जा रहा था ।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
मंगलवार, ३ फरवरी १९४८

गांधीजी की मृत्यु पर विश्व में इतनी प्रतिक्रिया हुई, जिसकी मुझे कल्पना नहीं थी। दुनिया के कोने-कोने से श्रद्धांजलि और प्रशंसा के सन्देशों का तांता लगा हुआ था, जिनसे पता चलता था कि उनका प्रभाव भारत की सीमा के बाहर बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ था। हो सकता था कि उनके जीवन का पूरा दर्शन बहुत से लोगों के पल्ले न पड़ा हो, लेकिन उसका रहस्य तो स्वीकार किया ही जाता था। जैसा कि किंग्सले मार्टिन ने, जो इस तमाम घटना में मेरे साथ थे, मुझसे कहा था, "भौतिकवाद और राजनैतिक बल-प्रयोग दुनिया में ज्यादा सफलता पाने में कामयाब नहीं हुआ। दुनिया स्वीकार करती है कि गांधीजी का उद्देश्य इन दोनों से भिन्न था। नैतिक मूल्यों पर उनके आग्रह से लगता है कि उनके उद्देश्य शायद बेहतर भी थे। इसीलिए वह मानवता के मानस पर अमिट छाप छोड़ गए थे।"

'न्यूयार्क टाइम्स' के शब्दों में, "जैसे अन्य लोग सत्ता और सम्पत्ति के लिए हाथ-पैर मारते थे, वैसे ही उन्होंने पूर्णता के लिए प्रयास किया ..... उनका राजनैतिक प्रभाव जैसे-जैसे कम होता गया उनकी सौहार्द-भावना वैसे-ही-वैसे बढ़ती गई। 'नये टेस्टामेन्ट' की भावना के अनुरूप उन्होंने अपने शत्रुओं को प्रेम करने का प्रयत्न किया और उनकी भलाई करने की कोशिश की कि जो उनके साथ द्वेष का बरताव करते थे। वह अमर हो गए।" 'दि क्रिश्चियन सायंस मानीटर' ने उन्हें "प्रस्तुत युग के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति-वादी" के रूप में देखा। इस प्रकार वह भारतीय राष्ट्रीयता के नेता मात्र नहीं थे। वह समस्त विश्व के प्रतीक थे। इस पत्र ने फिर एक बड़े मार्के की बात कही थी, जो उनके उद्देश्यों और "द्विमुखी" व्यक्तित्व के बारे में भ्रम का असली कारण था। लेख में कहा गया था, "उनका यह विश्वास कि नैतिक प्रेरणा से व्यक्ति पहाड़ तक को उठा सकता है, उसमें पश्चिमी विचारकों की एक बड़ी देन, कानून के प्रति आदर की भावना से विहीन था।" लुई फिशर ने कहा था, "अधिकांश लोगों के लिए राजनीति का अर्थ था सरकार,

गांधीजी के लिए इसका अर्थ था मानव-जाति। लेकिन सरकार के अभाव में मनुष्य अपने उद्देश्यों को नापने में असमर्थ रहता है। इसीलिए दुनिया ने गांधीजी में चतुर राजनीतिज्ञ और अकलुष और अटल साधुत्व का मिश्रण पाया। उन्होंने अकेले व्यक्ति के नैतिक बल को प्रमाणित कर दिखाया।"

एटली ने राष्ट्र के नाम विशेष सन्देश प्रसारित किया था। ट्रूमैन ने इसे एक महान अन्तर्राष्ट्रीय दुर्घटना और विश्व की क्षति बतलाया। स्मट्स ने उन्हें आदमियों में हीरा कहा, जिन्ना ने कहा, "वह हिन्दू जाति के महानतम व्यक्ति और ऐसे नेता थे, जिसे पूरी जाति का पूरा विश्वास और आदर प्राप्त था।"

लेकिन, अभाग्यवश, चूंकि उन्हें हिन्दू जाति का व्यापक विश्वास और आदर प्राप्त नहीं था, इसीलिए उनकी जान गई। भारत के सभी पत्रों के स्मृति-अंक इस राष्ट्रीय-लज्जा से लदे पड़े थे। कई पत्रों के विशेषांक बड़े ही सुन्दर बन पड़े थे। 'हिन्दुस्थान स्टेन्डर्ड' का विशेषांक मुझे सबमें पसन्द आया, जिसने तीन पृष्ठों पर महात्माजी के पूरे आकार के चित्र छापने के बाद अग्रलेख का पृष्ठ सिर्फ मोटे अक्षरों में यह शब्द लिखकर खाली छोड़ दिया था "गांधी की जान उनके उन्हीं लोगों के हाथों गई, जिनकी मुक्ति के लिए वह जीवित थे। इतिहास में दूसरी बार सूली पर चढ़ाये जाने की यह घटना शुक्रवार को घटी है—आज से एक हजार नौ सौ पन्द्रह वर्ष पूर्व; ठीक इसी दिन ईसा को सूली पर चढ़ाया गया था। हे पिता, हमें क्षमा कर!!"

: २२ :

अन्तिम श्रद्धांजलि

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
गुरुवार, १२ फरवरी १९४८

आज जब महात्माजी की अस्थियां भारत की पवित्र नदियों और समुद्र में विसर्जित की गईं तो करोड़ों लोगों ने उनको अपनी श्रद्धांजलि दी। मुख्य क्रिया-कर्म गंगा, यमुना और अदृश्य सरस्वती के संगम पर हुआ।

दिल्ली में आज सवेरे माउन्टबेटन-दम्पति और उनके कर्मचारियों ने 'केथेडरेल चर्च आफ दि रिडम्पशन' में हुई विशेष प्रार्थना में भाग लिया। माउन्टबेटन और मथाई ने प्रवचन पढ़े। गीत वे गाये गए जो गांधीजी ने अपनी प्रार्थना सभाओं के लिए अपनाये थे। खास तौर से 'लीड काइंडली लाइट',[1] 'एबाइड विद मी'[2] और 'व्हेन आई सर्वे दि वन्डरस क्रास'[3]। उपस्थित समूह ने ये गीत इतने आनंद-विभोर हो कर गाये कि अगर गांधीजी होते तो आशीर्वाद दिये बिना न रहते।

उपसंहार के रूप में आज रेडियो पर माउन्टबेटन ने गांधीजी को अपनी अन्तिम श्रद्धांजलि दी। यह गांधीजी की स्मृति में श्रद्धांजलि-भाषणों की आखिरी कड़ी थी, जिसका प्रारम्भ ३० जनवरी को नेहरू और पटेल के भाषणों से हुआ था, जिसमें उन्होंने एकता और प्रायश्चित्त का दृढ़ आह्वान किया था। करीब-करीब सभी कांग्रेसी-नेताओं ने भाषण दिये थे। कई के भाषण बड़े मार्मिक थे और उन्होंने अंग्रेजी गद्य पर—असाधारण अधिकार का परिचय दिया। जो शब्द और विचार मेरे दिमाग में बचे रह गए, उनमें सरोजिनी नायडू के शब्द भी हैं, "इसलिए यह उचित ही था कि वह

१—प्रभुजी मार्ग दिखाओ; २—सदा मेरे साथ रहो; ३—जब पवित्र सूली पर पड़ती नजरें।

राजाओं की नगरी में मरे।" और फिर उनका नाटकीय आह्वान, "मेरे पिता, चैन मत लेना। न हमें लेने देना। हमें हमारे पथ पर अटल बनाये रहना।"

राजेन्द्रप्रसाद ने कहा, "असली त्याग का समय तो अब आया है, जब हमें त्याग करने के लिए बुलाया जा रहा है।" राजाजी ने बड़े पैने ढंग से कहा, "दमन और बल-प्रयोग के बिना इस अपूर्ण संसार में काम नहीं चल सकता, लेकिन हम हमेशा के लिए यह जान लें कि बिना सद्भाव के सद्भाव पैदा नहीं किया जा सकता।"

: २३ :

फिर वही संघर्ष

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
रविवार, २२ फरवरी १९४८

वाल्टर मांकटन एक सप्ताह हैदराबाद में रहने के पश्चात् अभी-अभी यहां आये थे। हमें मालूम था कि वह फरवरी के मध्य में निजाम से मिलने वाले हैं। अतएव माउन्टबेटन ने निजाम को लिखा था कि वह भारत के साथ सामान्य समझौता करने की दृष्टि से मांकटन की यात्रा का लाभ उठायें।

निजाम ने माउन्टबेटन की सलाह एकदम स्वीकार कर ली, यह माउन्टबेटन के लिए किंचित् आश्चर्य की बात थी। मैं 'आश्चर्य' इसलिए कहता हूं कि निजाम ने इन दिनों माउन्टबेटन के सम्बन्ध में व्यक्तिगत रूप से जो विचार व्यक्त किये थे, वे प्रशंसापूर्ण नहीं थे। हमें मालूम था कि वह माउन्टबेटन को हैदराबाद का मित्र नहीं बताते थे। उन्हें अधिकार-हीन बताते थे और कहते थे कि माउन्टबेटन का भावी वार्ताओं में सहायता करने या न करने से कोई अन्तर नहीं पड़ता। परन्तु अब उन्होंने यह आशा व्यक्त करते हुए उत्तर दिया कि माउन्टबेटन "इंग्लैंड के शाही-परिवार के सदस्य की हैसियत से, दीर्घ-कालीन समझौता कराने में, जो दुनिया की नजर में हैदराबाद की ऊंची स्थिति के अनुरूप हो, हैदराबाद को अपनी बहुमूल्य सहायता और समर्थन प्रदान करें।" मजे की बात थी कि वह सदा ही माउन्टबेटन के शाही सम्बन्ध की दुहाई देते थे, मानो उससे माउन्टबेटन को हैदराबाद के साथ चर्चा करने के लिए कोई विशेष अधिकार या दर्जा प्राप्त हो गया हो।

'यथास्थिति समझौते' पर हस्ताक्षर होने के बाद एक मास तक करीब-

करीब पूरी शांति रही । परन्तु नववर्ष के कुछ ही बाद एक घटना घटी, जिससे ज्ञात होता था कि शांति धोखे की टट्टी थी । भारत के नव-नियुक्त एजेंट-जनरल के. एम. मुंशी को निवास-स्थान देने के बारे में झगड़ा उठ खड़ा हुआ । वह था तो बहुत छोटा; लेकिन बिलकुल अर्थहीन नहीं । जो भवन उनके लिए निर्धारित हुआ था, वह तैयार नहीं था । इसलिए यह सुझाव पेश किया गया कि वह ग्यारह दिनों के अन्तरिम-काल में किसी एक रिक्त रेसीडेन्सी में रहें । निजाम ने तुरन्त इस प्रस्ताव का विरोध किया । उन्हें इसमें सर्वोच्च सत्ता को पुनरुज्जीवित करने की दुरभिसंधि दिखलाई पड़ी । भारत की ओर से यह सीधा-सादा उत्तर दिया गया कि मुंशी को समुचित और उपयुक्त निवास-स्थान नहीं दिये जाने पर उन्हें या किसी अन्य एजेंट-जनरल को भेजा ही नहीं जायगा । इस मौके पर माउन्टबेटन की याद की गई और पत्रों तथा तारों के तेज आदान-प्रदान के बाद निजाम हठ छोड़ने के लिए राजी हुए । मुंशी ५ जनवरी को अपना कार्य-भार संभालने के लिए रवाना हो गए ।

इस महीने के अंत तक हैदराबाद और भारत का सम्बन्ध इतना खराब हो गया कि दोनों ओर से 'यथास्थिति समझौते' के भंग कर दिये जाने की आशंका दिखलाई पड़ने लगी । सीमा के पास घटनाओं की संख्या में भयानक वृद्धि हो गई । छोटी-छोटी बातों में परेशान करने की नीति अपनाये जाने के कारण उत्तेजना फैलती जा रही थी । हैदराबाद-सरकार ने इस नीति का आरम्भ राज्य से कुछ धातुओं के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगा कर किया । बाद में साधारण व्यापार के लिए भारतीय मुद्रा पर से मान्यता उठा ली ।

इन दोनों से अधिक उत्तेजनात्मक कार्रवाई यह थी कि पाकिस्तान को २० करोड़ रुपयों का ऋण दे दिया गया । इस सौदे की परिस्थितियां गुप्त और अशांतिकारक थीं । माउन्टबेटन ने इस मामले का बहुत बारीकी के साथ अध्ययन किया और उन्हें जो प्रमाण मिले उनसे इस निष्कर्ष को टालना कठिन था कि यह सौदा वर्तमान विदेश-मंत्री मोइन नवाज जंग ने उस समय किया था, जब वह 'यथास्थिति समझौता-वार्ता' करने वाले प्रति-

निधि मंडल के सदस्य थे। इसके अतिरिक्त यह उत्तेजनात्मक कार्यवाही उस समय की गई, जब भारत-सरकार पाकिस्तान को ५५ करोड़ रुपये न देने का विचार कर रही थी। हैदराबाद की ओर से भी आर्थिक नाकेबंदी की विस्तृत शिकायतें आ रही थीं।

गांधीजी के दाह-संस्कार के दिन माउन्टबेटन ने हैदराबाद के नये इत्तिहादी प्रधान मंत्री मीर लायकअली से पहली बार भेंट की। माउन्ट-बेटन ने उन्हें साफ शब्दों में सलाह दी कि उनकी सरकार को अपना रवैया सुधारना चाहिए और आमतौर से भारत के साथ दोस्ताने ढंग से काम करने की कोशिश करना चाहिए, तथापि माउन्टबेटन को विश्वास नहीं था कि उनकी बात का कोई गहरा असर हुआ होगा। मीर लायकअली के विनम्र बाहरी व्यवहार के पीछे उन्होंने धर्मान्धता तथा चालबाजी का वह रुख देखा, जिसे हम इत्तिहाद तथा उसके नेताओं का प्रमुख चिह्न मानने के लिए बाध्य हो गए थे। अब बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता था कि मांकटन निजाम को किस हद तक रचनात्मक नीति अंगीकार करने को समझा सकते हैं, और माउन्टबेटन पटेल तथा भारत-सरकार का धैर्य कायम रखने में कहां तक सफल हो सकते हैं।

सरकारी भवन, नई दिल्ली
सोमवार, २३ फरवरी १९४८

आज सवेरे माउन्टबेटन ने अपने कर्मचारी-मंडल की जो अनौप-चारिक बैठक की उसमें वाल्टर मांकटन और वी. पी. मेनन भी अतिथि के रूप में उपस्थित थे। हम अपने कार्यक्रम की सीमा तोड़कर काश्मीर के संघ-विलय सम्बन्धी स्मरण-पत्रों और राष्ट्र-मंडल की नागरिकता पर अटकल-बाजियों में लग गए। काश्मीर के विषय में मांकटन ने कहा, "साफ बात यह है कि इस महादेश के बाहर इस प्रश्न को समझा ही नहीं गया।" वी. पी. मेनन ने जोर देकर कहा कि वास्तव में सत्ता-हस्तांतरण के पूर्व भावी पाकि-

स्तान सरकार की संघ-विलय नीति के विषय में सरदार रबनिश्तर की सहमति प्राप्त कर ली गई थी। बाद में पाकिस्तान के मंत्रियों ने स्वीकार भी किया था कि जूनागढ़ का पाकिस्तान में मिलना मूलतः समझौते के खिलाफ था। काक जुलाई में दिल्ली आये थे और उन्होंने पटेल से भेंट की थी। पटेल ने उनसे कहा था कि हम जनता की इच्छा के विरुद्ध काश्मीर को भारत में शामिल करना नहीं चाहते। उस समय माउन्टबेटन की मदद से उन्होंने जिन्ना से भी भेंट की थी।

वैदेशिक मामलों में नेहरू के सुयोग्य सचिव सर गिरिजाशंकर बाजपेयी के साथ लंबी बातचीत में गार्डन वाकर ने दृढ़तापूर्वक कहा था कि रूस के साथ मैत्री केवल पराधीनता के मूल्य पर खरीदी जा सकती है। उन्होंने यह भी कहा था कि भारत में रूस का कोई बुनियादी हित नहीं है। संयोग से मैंने यह भी सुना था कि बाजपेयी ने अमरीकी राजदूत ग्रेडी के साथ कोरिया के प्रश्न पर बातचीत आरम्भ की है। अड़तीसवीं अक्षांश रेखा से रूसी तथा अमरीकी असरवाले क्षेत्रों को विभाजित कर देने के कारण उत्तरी और दक्षिणी कोरिया के बीच की स्थिति बहुत-कुछ पूर्वी तथा पश्चिमी जर्मनी की स्थिति के समान हो गई थी। बाजपेयी का तर्क यह था कि यदि अमरीकी सेना कोरिया से नहीं हटाई जाती तो भारतीय सेना को काश्मीर से हटने के लिए क्यों कहा जाना चाहिए ?

आज सवेरे की बैठक में मैंने जोर दिया कि गार्डन वाकर से २९ फरवरी तक, जब कि लियाकत के आने की संभावना थी, ठहर जाने का आग्रह किया जाय। मेरी दृढ़ धारणा थी कि लियाकत और नेहरू के बीच आगामी बातचीत में एक ब्रिटिश-मंत्री का उपस्थित रहना सौहार्द तथा समझौते का प्रेरक होगा। अबतक उचित स्थान और उचित समय पर कभी भी कोई योग्य मध्यस्थ उपस्थित नहीं रह सका।

माउन्टबेटन ने मुझे आदेश दिया कि संयुक्तराष्ट्र संघ के द्वारा विश्व-लोकमत को प्रभावित करने में भारतीय पक्ष को जो असफलता मिली, उसका मैं पर्यवेक्षण करूं। मैंने कहा कि भारतीय पक्ष में गुण-दोष कोई भी हों,

इतना तो सही था कि उसे नितान्त अयोग्य ढंग से पेश किया गया है। जन-संपर्क के प्रायः प्रत्येक नियम की उपेक्षा की गई : इसके अतिरिक्त, मेरा खयाल था कि भारत के विरुद्ध पाकिस्तान के आरोपों—विशेषतः अब्दुल्ला के द्वारा महाराजा को आत्मसमर्पण कराने के कांग्रेसी "षडयंत्र"—का उत्तर देने की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। इस प्रकार के आरोपों की उपेक्षा मात्र कर देना समझदारी की बात नहीं थी।

सरकारी भवन, नई दिल्ली
गुरुवार, ४ मार्च १९४८

हैदराबाद का नया प्रतिनिधि-मंडल, जिसमें मीर लायक अली, मोइन नवाज जंग (मीर लायक अली के महत्वाकांक्षी और शक्तिशाली सम्बन्धी) और मांकटन थे, दिल्ली आये हुए हैं। प्रतिनिधि-मंडल ने मंगलवार को और आज माउन्टबेटन से भेंट की। मेनन भी दोनों बैठकों में उपस्थित थे।

कल मीर लायक अली कराची गये थे और माउन्टबेटन के सुझाव पर उन्होंने लियाकत से कहा कि वह हैदराबाद के २० करोड़ रुपयों के ऋण को यथास्थिति समझौते के काल में बैंक से न निकालने का वादा कर दें। वह इस बारे में लियाकत का मौखिक वादा लेकर लौटे थे।

दोनों ओर से शिकायतों के लम्बे गान गाये गये हैं। वी. पी. ने पाकिस्तान को ऋण दिये जाने और भारतीय मुद्रा को अवैध घोषित करने वाले आर्डिनेंस की कहानी कही। मीर लायक अली ने हैदराबाद के विरुद्ध पूरी आर्थिक नाकेबन्दी का ब्योरा दिया। माउन्टबेटन ने बताया कि भारत में साम्प्रदायिक सेनाएं भंग कर दी गई हैं और हैदराबाद को भी सांकेतिक रूप में इत्तिहाद की सैनिक शाखा, रजाकार संगठन को, जिसके अत्याचारों की गम्भीर कहानियां सुनाई दे रही थीं, भंग कर देना चाहिए। उन्होंने हैदराबाद में शीघ्र उत्तरदायी शासन स्थापित करने की आवश्यकता भी समझाई।

यहां समय और कार्य-पद्धति सम्बन्धी पुराना गतिरोध, जिसकी तह में सत्ता का संघर्ष छिपा हुआ था, फिर शुरू हो गया। पटेल महसूस करते थे कि जबतक 'यथास्थिति समझौता' उचित रूप से अमल में नहीं आता, तबतक दीर्घकालीन समझौते की बातें करना बेकार थीं। और 'यथा-स्थिति समझौते' के कार्यान्वित होने की आशा तबतक नहीं की जा सकती जबतक कि किसी प्रकार के उत्तरदायी शासन की स्थापना न हो जाय। इसकी प्रारम्भिक कार्यवाही के रूप में पटेल इस सुझाव का समर्थन करने को तैयार नहीं थे कि बराबर संख्या में हिन्दुओं और मुसलमानों की अंतरिम सरकार की स्थापना कर दी जाय। दूसरी ओर, मीर लायक अली अपने को दीर्घकालीन समझौता होने के पूर्व हिन्दू-बहुल सरकार कायम करने में असमर्थ समझते थे। वह समान संख्या के सुझाव से आगे जाने को तैयार नहीं थे। फिर भी उनका खयाल था कि दीर्घकालीन समझौता और हिन्दू-बहुल सरकार की स्थापना, दोनों बातें एक साथ हो सकती थीं।

बैठक के बाद एक विज्ञप्ति निकालने के प्रश्न पर अच्छा-खासा तूफान उठ खड़ा हुआ। पटेल ने उसमें किसी भी ऐसी बात को शामिल करने से इंकार कर दिया, जिससे संकेत मिलता हो कि भारत ने 'यथास्थिति समझौते' को भंग किया है। जहाँ तक केन्द्रीय सरकार का सम्बन्ध था, यहां पटेल का आधार दृढ़ था। उपद्रवों का स्तर प्रादेशिक था और उनके लिए स्थानिक अधिकारी जिम्मेदार थे। शासकीय बोझ और अनुभवहीनता की वर्तमान अवस्था में आदेश दे देना, उनके कार्यान्वित होने की व्यवस्था करने से कहीं सरल था। पटेल विज्ञप्ति में यह कहने को भी तैयार नहीं थे कि हैदराबाद को जाने वाला माल, जिसे रोका गया बताया जाता है, छोड़ दिया जाना चाहिए। शायद इसकी तह में यह शंका थी कि यदि इस बात को स्वीकार किया गया तो यह अर्थ लगाया जायगा कि उन्होंने व्यापक क्षेत्र में हैदराबाद के आरोप स्वीकार कर लिये हैं। मांकटन बहुत परेशान थे। माउन्टबेटन ने एक भोज से लौटने के बाद टेलीफोन पर उनसे बातें करके कल इस विषय को फिर उठाने का आश्वासन दिया।

सरकारी भवन, नई दिल्ली
शुक्रवार, ५ मार्च १९४८

मांकटन आज तड़के हैदराबाद के लिए रवाना हो गए और माउन्टबेटन ने उनकी अनुपस्थिति में विज्ञप्ति के सम्बन्ध में पूछताछ की। उन्होंने नेहरू से बातें कीं। उनका रुख बहुत उचित और सहानुभूतिपूर्ण था। परन्तु वह उत्सुक थे कि इस प्रश्न का हल पटेल के साथ ही किया जाना चाहिए, जो रियासती मंत्री की हैसियत से हैदराबाद के मामले के लिए उत्तरदायी हैं। आज तीसरे पहर माउन्टबेटन पटेल से मिलने वाले थे, परन्तु भोजन करते समय पटेल को हृदय का दौरा हो गया और उनकी हालत खराब हो गई। अब उन्होंने खाट पकड़ ली और उनके डाक्टर ने अनिश्चित समय के लिए किसी प्रकार का भी काम करने पर पाबन्दी लगा दी। पाबन्दी का यह समय हमारे यहां से जाने के पहले खत्म होता नहीं दीखता।

मेरा खयाल था कि गांधीजी की मृत्यु के बाद पूरे छः घंटे अर्थी के साथ चलकर उन्होंने अपने स्वास्थ्य को चौपट कर लिया था। जब मैंने उन्हें राजघाट पर देखा था, तब वह बहुत दुबले और बीमार मालूम होते थे। ऐसा लगता था मानो वह मूर्छा में हों। सारी दुखान्त घटना ने उन पर भारी आघात किया था और, निस्संदेह उन्हें गृहमन्त्री की हैसियत से गांधीजी की समुचित रक्षा का प्रबन्ध न कर सकने पर आलोचनाओं का उचित से अधिक प्रहार सहना पड़ा। इस राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संकट के समय उनकी बीमारी सरकार के लिए एक भारी चोट थी। इससे जाहिर होता था कि शासन-यंत्र अपने दो नेताओं का किस कद्र मोहताज था।

जहां तक हैदराबाद के तात्कालिक प्रश्न, विज्ञप्ति, का सम्बन्ध था, ऐसा कोई व्यक्ति नहीं, जो उनके अन्तिम निर्णय को बदलने की जिम्मेदारी ओढ़ सके। अतएव, माउन्टबेटन मांकटन को लिख देने के लिए विवश हो गए कि फिलहाल कोई प्रेस वक्तव्य नहीं निकाला जाना चाहिए।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
शनिवार, ६ मार्च १९४८

माउन्टबेटन ने हैदराबाद स्थित भारतीय एजंट जनरल के. एम. मुंशी से भेंट की। मुंशी काफी उत्साही, ध्येयवादी, और मैं समझता हूं, महत्वाकांक्षी व्यक्ति हैं। यद्यपि उनके पास ब्रिटिश राज की खिलाफत में कारावास जाने का कांग्रेसी सर्टीफ़िकेट नहीं है, फिर भी वह कांग्रेस के शासकीय आकाश में ऊपर उठ रहे थे। इससे उनकी राष्ट्रीयता में उग्रता आना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

महात्माजी के सम्बन्ध में अपने संस्मरण प्रसारित करते हुए उन्होंने अपने-आपको अहिंसा का विद्यार्थी बताया था। वह इस आधार पर गांधीजी से झगड़ने को तैयार थे कि १९४२ का सत्याग्रह आन्दोलन "असफल रहा था। वह अहिंसा की कसौटी पर खरा नहीं उतरा था क्योंकि उसमें शत्रु के प्रति प्रेम की बजाय क्रोध की सृष्टि हुई थी।" आज उन्होंने माउन्ट-बेटन से जो कुछ कहा उससे स्पष्ट था कि वह हैदराबाद के साथ बर्ताव करने में अहिंसा पर ज्यादा भरोसा नहीं कर रहे थे। उनकी सलाह थी कि यदि रजाकारों की प्रवृत्तियों को तुरन्त रोका नहीं जाता तो भारतीय पुलिस को भेज कर उन्हें रोकना चाहिए। 'यथास्थिति समझौते' की उनकी कानूनी व्याख्या के अनुसार ऐसा करना उसकी शर्तों के अनुकूल होगा। उनका विश्वास दृढ़ था कि रजाकारों को वर्तमान शासन न तो रोक सकता था और न रोकना चाहता था।

माउन्टबेटन ने दृढ़ता के साथ कहा कि भारत को हैदराबाद के प्रति नैतिक तथा उचित व्यवहार करना चाहिए। ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिसे विश्व के लोकमत के सामने उचित ठहराया जा सके। बातचीत की वर्तमान अवस्था में मुंशी का पुलिस-कार्यवाई का सुझाव बिलकुल गलत था। मीर लायकअली को रजाकारों से निबटने, 'यथास्थिति समझौते' को कार्यान्वित करने और किसी हद तक उत्तरदायी शासन स्थापित करने का समुचित अवसर दिया जाना चाहिए।

बाद को माउंटबेटन ने मुझ से कहा कि हालांकि उन्हें मुंशी की तत्परता और योग्यता के बारे में कोई संशय नहीं था, लेकिन वह नहीं समझते कि मुंशी का स्वभाव और राजनैतिक दृष्टिकोण इस नाजुक दौर में निजाम से निबटने के लिए उपयुक्त हैं। इस समय तो असाधारण कूटनीतिक धैर्य और साम्प्रदायिकताहीन वस्तुनिष्ठा की आवश्यकता थी।

मांकटन हैदराबाद से लन्दन के लिए रवाना हो गए हैं। हमें डर था कि कहीं यह समझकर कि इस सप्ताह जैसी बातचीत केवल समय बर्बाद करना था, वह पूरे मामले से भी हाथ न धो बैठें। मांकटन के बिना माउंटबेटन द्वारा पहल करने की संभावना काफी कम हो जायगी।

: २४ :

परिभाषा और अनुसंधान

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
शुक्रवार, १९ मार्च १९४८

हम ८ मार्च को कलकत्ता, उड़ीसा, बरमा और आसाम की यात्रा के लिए रवाना हुए थे। सब मिलाकर नौ दिन की यात्रा के बाद हम फिर दिल्ली आ गए थे और काम में जुत गए। दो महीने बाद आज लियाकत और नेहरू मिले। संयुक्त सुरक्षा कौंसिल के तत्वावधान में उन दोनों की भेंट कराने में माउंटबेटन को काफी कठिनाई हुई। उन्होंने निश्चय किया कि संयुक्त सुरक्षा कौंसिल की यह अन्तिम औपचारिक बैठक होगी। वैसे वह किसी भी हालत में १ अप्रैल को समाप्त हो ही रही थी, लेकिन माउन्टबेटन चाहते थे कि वह अपने मौजूदा रूप में (उनके जाने तक उनकी अध्यक्षता में, और फिर जिस देश में बैठक हो उसके प्रधान मंत्री की अध्यक्षता में) एक वर्ष और कायम रहे, जिसमें आगे चलकर इसका कार्यक्षेत्र बढ़ाकर वित्त संबंधी और आर्थिक मामले, संचारसाधन और विदेशी मामले भी इसमें शामिल कर लिये जायं। हालांकि यह इरादा दोनों में से किसी भी पक्ष को पसन्द नहीं आया, फिर भी दोनों प्रधान-मंत्रियों ने एक हदतक व्यक्तिगत संपर्क के साधन के रूप में संयुक्त सुरक्षा कौंसिल के महत्व को मान लिया। सामान्य रुचि के विषयों पर चर्चा करने के लिए उन्होंने हर महीने बाद मिलना स्वीकार कर लिया।

कटुता और दुराशा भरे पिछले छः महीनों की एक विशेष बात यह रही थी कि नेहरू और लियाकत ने अपनी सौम्यता को कायम रखा था। ऐसा लगता था कि यदि इन दोनों को सारे फैसले करने के लिए अकेला छोड़ दिया जाय, और उनपर निरन्तर डाले जाने वाले दबाव और बोझ हटा लिये

जायं तो सारे मतभेदों के बारे में दृढ़ समझौता होने में देर नहीं लगेगी।

आज की बैठक में गौण विषयों पर सौहार्द पूर्ण समझौता हो जाने पर भी काश्मीर का कोई जिक्र नहीं किया गया। इसका कारण यह नहीं था कि इस बारे में बात करने की कोई नई बात नहीं थी बल्कि सुरक्षा परिषद के वर्तमान अध्यक्ष, चीनी प्रतिनिधि डा. सियांग ने स्वतः निजी प्रेरणा से कुछ सुझाव रखे थे जो बुनियादी तौर पर भारत के मन माफिक थे। लेकिन अभाग्यवश डा. सियांग ने अपनी योजना के लिए ज्यादा व्यापक समर्थन पाने की चेष्टा नहीं की। इसका नतीजा यह होगा कि इससे कटुता ही बढ़ेगी और सद्भावना की रही-सही संभावना भी नष्ट हो जायंगी। इससे अनुमान होता था कि लेक सक्सेस के काम करने के ढंग में कोई भारी दोष था।

संयुक्त राष्ट्र संघ में काश्मीर विषयक प्रचार की शायद सब में अनिष्टकारी, हालांकि अप्रत्याशित नहीं, घटना यह थी कि जफरुल्ला खां ने भारत की शिकायत के जवाब में पाकिस्तान की ओर से आरोपों का क्षेत्र काफी व्यापक बना दिया था और इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए वह ऐसे प्रचार पर उतर आये थे, जिसे अमरीकी लोग "चारित्रिक हत्या" कहते थे। ऐसे मौके पर उन्होंने माउंटबेटन का नाम बीच में घसीटा, जब अपनी वैधानिक स्थिति के कारण माउंटबेटन सार्वजनिक रूप से कोई उत्तर देने में असमर्थ थे।

कर्मचारी मंडल की बैठक में इस विषय पर काफी विस्तार से चर्चा हुई और बड़ी बुद्धिमानी से माउंटबेटन ने निश्चय किया कि पाकिस्तानी आरोपों के उत्तर में उनके वक्तव्य को आवश्यक प्रमाणों सहित संयुक्त-सुरक्षा कौंसिल के भंग होने के पूर्व उसकी कार्यवाही में शामिल कर लिया जाय। इससे उनके उत्तर भारत और पाकिस्तान, दोनों सरकारों के समक्ष आ सकेंगे। इस बारे में उन्होंने ब्रिटिश सरकार को भी पूरी जानकारी देने का फैसला किया, क्योंकि वाइसराय के रूप में उन पर होने वाले हमलों से ब्रिटिश सरकार भी अछूती नहीं बच सकती थी।

जफरुल्ला के दो मुख्य आरोप थे : वाइसराय के नाते माउंटबेटन को

जुलाई के प्रारम्भ से सिखों की योजना का पता था। यह जानते हुए भी उन्होंने नेताओं को गिरफ्तार करने और उपद्रवी तत्वों को कुचलने के लिए कोई सक्रिय कदम नहीं उठाया, हालांकि ऐसा करने का वादा वह कर चुके थे।

अपने स्मरणपत्र में माउंटबेटन ने यह स्पष्ट किया था; हालांकि सरकार के ऊंचे पदों पर काम करने वाले लोग सिखों की समस्या के बारे में किसी प्रकार के भ्रम में नहीं थे और उसे सुलझाने की आवश्यकता महसूस करते थे, किन्तु किसी विशेष 'सिख योज़ना' का उन्हें या किसी और को कोई पता नहीं था। ५ अगस्त को ब्रिटिश खुफिया अधिकारी से मुलाकात के पूर्व इसका कोई संकेत तक नहीं था। इस मुलाकात में भी 'योजना' के आकार-प्रकार और काम करने के ढंग के बारे में कोई संतोषजनक जानकारी नहीं मिल सकी थी। माउंटबेटन ने अपने तर्क का आधार जेनकिन्स के ९ अगस्त के पत्र को बनाया था। इसमें जेनकिन्स ने पंजाब के तीनों गवर्नरों, खुद अपना और अपने उत्तराधिकारी मनोनीत गवर्नरों का मत प्रेषित करते हुए लिखा था कि तीनों एकमत थे कि सत्ता-हस्तांतरण के पहले सिखों की गिरफ्तारी की योजना तैयार करने से अधिक कुछ नहीं किया जाना चाहिये।

पाकिस्तान ने एक और भी आरोप लगाया था : सीमा आयोग के निर्णय के प्रकाशित होने के पूर्व वाइसराय भवन के दबाव पर उसे पाकिस्तान के खिलाफ बदल दिया गया था। इसके सबूत में पेश किया गया एबेल का जेनकिन्स के नाम लिखा ८ अगस्त का पत्र था, जिसमें कहा गया था कि सीमा आयोग का निर्णय ११ अगस्त को प्रकाशित करने का विचार है। इसमें प्रस्तावित निर्णय की एक रूपरेखा भी योजित थी, जिसमें फिरोजपुर और जीरा तहसीलों को पाकिस्तान के अन्तर्गत दिखाया गया था।

बात दरअसल यह थी कि रेडक्लिफ के सेक्रेटरी ने अन्तरिम निर्णय की एक रूपरेखा एबेल को दी थी। यह रूपरेखा एबेल ने जेनकिन्स को भेज दी, जिन्होंने कुछ दिन पूर्व मांग की थी कि पहले से इस विषय में कोई सूचना

मिलने से उन्हें पुलिस और सेना तैनात करने में सहूलियत होगी। यह पूर्व-सूचना "दो तहसील" और "दो दिन" के विषय में गलत निकली। बस वास्तविकता तो इतनी ही थी।

नई दिल्ली,
रविवार, २१ मार्च १९४८

चीनी-योजना की भारत के पत्रों में प्रत्याशित प्रतिक्रिया हुई। 'हिन्दुस्तान टाइम्स' इसे "झगड़े को युक्तिपूर्ण और व्यवहारिक ढंग से निबटाने का पहला उचित प्रयास" मानता था। उसका कहना था "मुख्य सुझाव ऐसे हैं कि कोई भी स्वाभिमानी और शांति-प्रिय राष्ट्र उसे स्वीकार कर सकता है।" लेकिन डॉन ने आशा प्रकट की, "सुरक्षा परिषद् पहले जैसे यथार्थवाद का परिचय देगी और "समझौते" के लिए प्रस्तुत चीनी सुझावों को, जो एक पक्ष को सब कुछ देने को तैयार थे, और दूसरे को कुछ भी नहीं, पहले जैसी रोशनी में देखेगी।" पाकिस्तान का तर्क अब भी यही था कि शासकीय व्यवस्था का प्रश्न काश्मीरी जनता के स्वतन्त्र और निडर मतदान के बाद ही निबटाया जाना चाहिए, पहले नहीं।

इस निराशाजनक बहस में एक मात्र नई चीज थी २० मार्च के 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में प्रकाशित सुझाव। देवदास गांधी और जी. डी. बिड़ला के ऊंचे संबंधों को देखते हुए, इस पत्र के सुझावों पर हमेशा विचार करना पड़ता था। जनमत संग्रह में काश्मीरी जनता के मिलने वाले विकल्पों की चर्चा करते हुए पत्र ने लिखा था, "हमारा मत है कि उनसे केवल इस या उस राष्ट्र में शामिल होने के लिए मत देने की मांग करना गलत और अनुचित होगा। उनको इस बात का पूरा अधिकार दिया जाना चाहिए कि दोनों में से चाहे जिस राष्ट्र में शामिल हों या स्वतन्त्र रहें।"

सरकारी भवन, नई दिल्ली
बुधवार, ७ अप्रैल १९४८

हमारे बरमा से लौटने पर माउंटबेटन के नाम निजाम का एक पत्र आया हुआ था। चूंकि माउंटबेटन फिर दिल्ली से बाहर जाने वाले थे और इस विवाद से पीछा छुड़ाना चाहते थे, इसलिए अपने वैधानिक अधिकारों के अनुसार उन्होंने रियासती सचिवालय से उसका उत्तर भेज देने को कहा। इस आशय की सूचना उन्होंने निजाम को भी भेज दी। रियासती सचिवालय का यह पत्र पहले लिखा गया वी. पी. मेनन द्वारा; पटेल ने उसमें गरमी भरी, नेहरू ने ठंडा किया। माउंटबेटन ने इसकी प्रति मूल-पत्र चले जाने के बाद देखी और पत्र उन्हें काफी कड़ा और धमकी भरा लगा। पत्र में खुले तौर पर निजाम के ऊपर 'यथास्थिति समझौता' भंग करने का आरोप लगाया गया था और मांग की गई थी कि उसका पालन किया जाय और इत्तिहाद तथा रजाकारों पर प्रतिबंध लगा दिया जाय।

मांकटन ने पहले भी इस आशय का विचार प्रकट किया था कि वह इस झमेले से अपने को दूर रखना पसन्द करेंगे। अब वह पुनः मैदान में लौट आये हैं। २८ मार्च को वह हैदराबाद आ गए थे। रियासती सचिवालय के पत्र और रियासत की आम स्थिति का उनपर बड़ा गहरा असर हुआ। सामान्यतः शांत और खुशदिल रहने वाले मांकटन सबसे लोहा लेने के इरादे से कमर कसकर कल रात दिल्ली आये। निजाम का उत्तर वह अपने साथ लाये थे। यह पत्र बड़ी चतुराई के साथ लिखा गया था और भारतीय पत्र को कई जगह नीचा दिखलाने वाला था। पत्र पर उनकी प्रतिभा की साफ-साफ मुहर अंकित थी।

दोनों के बीच दृढ़ दोस्ती और एक दूसरे को भली प्रकार समझने के आधार पर उनमें खुलकर चर्चा हुई। माउंटबेटन मांकटन को यह विश्वास दिलाने में सफल हुए कि भारत सरकार का अन्तिमेत्थम देने का कोई इरादा नहीं, और हैदराबाद की नाकेबंदी के लिए वह जिम्मेदार नहीं। थोड़ी देर बाद नेहरू ने भी आकर इसी बात की पुष्टि की।

भारत के कई पत्रों में एक जिहादी भाषण छपा है, जो धर्मान्ध इत्तिहाद नेता, कासिम रिजवी ने ३१ मार्च को "हैदराबाद शस्त्र-दिवस" के उद्घाटन अवसर पर दिया कहा जाता था। इसने एक नई खलबली मचा दी थी। छपी सूचना के अनुसार रिजवी ने हैदराबाद के मुसलमानों को ललकारा था कि जबतक इस्लाम की विजय का लक्ष्य पूरा न हो जाय, तबतक अपनी तलवारों को म्यान में न रखें। उसके भाषण के सबमें कुत्सित शब्द थे : "भारत संघ में रहने वाले हमारे मुसलमान भाई हमारा पांचवा दस्ता होंगे।" इस प्रकार की भाषा का उद्देश्य पूरे दक्षिण भारत में साम्प्रदायिक आग भड़काना था, जो ईश्वर की कृपा से अभी तक उत्तर भारत में फैले घातक प्रभाव से बचा हुआ था ।

सरकारी भवन, नई दिल्ली
रविवार, ११ अप्रैल १९४८

रिज़वी का मामला और भी तूल पकड़ता जा रहा था। मांकटन कल हैदराबाद लौट गए। उनको दृढ़ विश्वास हो गया था कि निज़ाम को शीघ्र ही उत्तरदायी शासन की स्थापना करनी चाहिए। वह निज़ाम को शीघ्र रिज़वी की गिरफ्तारी करने का परामर्श भी देंगे। परन्तु आज मांकटन के पास से एक तार आया था। उसमें माउंटबेटन को सूचित किया गया था कि हैदराबाद सरकार को संतोष था कि ३१ मार्च का कथित जिहादी भाषण कभी किया ही नहीं गया और इससे लगता था कि मैत्रीपूर्ण संबंधों की स्थापना में अड़ंगा डालने का यह सोच-विचार कर रचा गया षडयंत्र था ।

माउंटबेटन ने तुरन्त मुझे बुलाया और मुझसे उपलब्ध तथ्यों की शीघ्र छानबीन करने को कहा। इसलिए अब मैं जासूस बनकर "रिज़वी के वक्तव्य के रहस्य" की छानबीन करने में निमग्न हूं। यदि इस घटना को आच्छादित किये हुए पस्पर-विरोधी और अनिर्णायक प्रमाणों में से सही मार्ग निकालना था तो मुझे शर्लाक होम्स की सारी तर्क-शक्ति की जरूरत पड़ेगी।

वर्त्तमान स्थिति में तो मैं डा. वाट्स की उलझन का ही भागी हूं। पहला विचित्र पहलू तो यह था कि भाषण भारतीय पत्रों में एक सप्ताह के साधारण विलम्ब से प्रकाशित हुआ। उसका बहुत-सा भाग प्रत्यक्ष भाषण के रूप में था और उसमें श्रोताओं के उत्साहपूर्ण उद्‌गार भी दिये गए थे।

दो दिन पूर्व भारतीय संसद (लेजिस्लेटिव असेम्बली) में नेहरू ने उसे हिंसा तथा हत्याओं को प्रत्यक्ष उत्तेजना देने वाला भाषण बताते हुए कहा कि वह "रिजवी के अनेक उत्तेजनात्मक भाषणों में से एक" है। कल इसकी पुष्टि में 'हिन्दुस्तान टाइम्स' तथा अन्य पत्रों ने रिज़वी के इसी प्रकार के अन्य भाषणों के उद्धरण प्रकाशित किये, जो बहुत सावधानी के साथ संकलित किये गए थे। इनमें से कुछ मैंने पहले नहीं देखे थे। किन्तु बताया गया था कि यह सब सितम्बर के बाद के हैं। अब, असोशियेटेड प्रेस के एक प्रामाणिक समाचार के अनुसार रिजवी ने एक और ज़बानी हिंसा कर डाली थी, जो उससे भी बेहूदा थी और जिसकी मैं छानबीन कर रहा हूं। कहा जाता है कि उसने मद्रास में मिलाये गए प्रदेश को वापिस मांगने का साहस किया और मुगल सम्राट् के समान दंभ से कहा, "वह दिन दूर नहीं जब बंगाल की खाड़ी की लहरें हमारे शहंशाह के कदमों को चूमेंगी।"

सरकारी भवन, नई दिल्ली
शुक्रवार, १६ अप्रैल १९४८

मीर लायकअली और रिज़वी ने सफाई में यह कहा था कि ३१ मार्च को न कोई रैली हुई थी और न कोई 'हैदराबाद शस्त्र दिवस' कि जिसमें उक्त भाषण दिया बताया जाता है। लेकिन यह सही नहीं था। 'टाइम्स' के दिल्ली स्थित संवाददाता एरिक ब्रिटर वहां मौजूद थे! जहां तक उनकी जानकारी थी, उतने तथ्यों का मैंने पता लगा लिया था। उनका कहना था कि ३१ मार्च को ८ और १० बजे के बीच सवेरे हुई परेड में वह

उपस्थित थे। लगभग चार-पांच हजार रजाकारों द्वारा उन्होंने रिज़वी को सलामी दिये जाते देखा। लेकिन उनकी उपस्थिति में कोई भाषण नहीं दिया गया। उन्होंने परेड समाप्त होते देखी और उसके बाद बीस मिनट तक वहां खड़े रहे। उसके बाद वे बरामदे वाले एक मकान में लौट आये, जहां बीस-तीस और लोग भी मौजूद थे। चाय और केक के दौर चल रहे थे और मामूली चीजों के बारे में चर्चा हो रही थी। ब्रिटर का कहना था कि रिज़वी उन्हें विदा करने दरवाजे तक साथ आया था। लेकिन वह यह कहने की स्थिति में नहीं कि बाद में रिज़वी ने कोई सभा की या नहीं। इस प्रकार, रहस्य का पर्दा फाश नहीं हो सका।

दूसरे जरियों से मैंने जो जानकारी एकत्रित की थी, उससे लगता था कि रिज़वी की आम और खानगी सभाओं में मुंशी और निजाम दोनों के ही खुफिया नियमित रूप से मौजूद रहते थे। मेरा विश्वास है कि रिज़वी एक ऐसे राजनैतिक आन्दोलन में व्यस्त था, जिसकी सफलता का अर्थ हो सकता था रक्तपात कि जिसे वह निरन्तर उकसाया करता था, और भारत तथा हैदराबाद के बीच हमेशा के लिए संबंध-विच्छेद।

इस समय माउंटबेटन इस खतरनाक गतिरोध को भंग करने का रास्ता निकालने के लिए बैठकों में लगे हुए हैं। मांकटन बुधवार को यहां आ गए थे और मीर लायकअली कल। आज सरकारी भवन के शांत-सरोवर के एकाकीपन में मीर लायकअली ने माउंटबेटन के साथ दोपहर का भोजन किया। वह कुल मिलाकर दो घंटे साथ रहे और माउंटबेटन का अनुमान था कि मीर लायकअली के अड़ियल व्यक्तित्व और पेचीदा दृष्टि-कोण पर उनकी बात का थोड़ा-थोड़ा असर हो चला है। लेकिन, माउंटबेटन का यह विश्वास अब भी दृढ़ था कि आगे आने वाले कठिन दिनों के लिए वह उपयुक्त प्रधान-मंत्री नहीं थे। अगर उनका अड़ियलपन यों ही चलता रहा तो बातचीत हमेशा के लिए टूट जायगी।

यह संभवत: निर्णायक क्षण था। पटेल का स्वास्थ्य काफी ठीक हो गया था और अब वह सरकारी वार्ताओं में हिस्सा ले सकते थे। इसका

मतलब यह हुआ कि निजाम को छोड़कर बाकी सब मुख्य पात्र बातचीत में भाग ले रहे थे। माउंटबेटन उसमें एक व्यक्ति "सद्भावना आयोग" के रूप में भाग ले रहे थे।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
शनिवार, १७ अप्रैल १९४८

तीन दिन की सरगर्म वार्त्ताओं के बाद एक चार-सूत्री कार्यक्रम का सिद्धांत स्वीकार हो गया। इसके लिए माउंटबेटन मीर लायकअली के साथ औपचारिक बैठक में सर्वसम्मत नीति पर चलने के लिए रोज सवेरे नेहरू, वी. पी. मेनन और मांकटन से चर्चा कर लेते थे। वी. पी. उसे लेकर पटेल के पास मसूरी गये थे, जहां पटेल स्वास्थ्य-लाभ कर रहे थे। माउंटबेटन की खुशी और अचरज का ठिकाना न रहा कि पटेल ने पूर्ण संघ विलय के अलावा किसी योजना को ठुकराने का अपना आग्रह छोड़ दिया था और योजना को अपना अमूल्य समर्थन दे दिया था।

निजाम की स्वीकृति के लिए ये चार सूत्र तय हुए थे :

१. रिजवी पर नियंत्रण करने के लिए अविलंब कार्रवाई, जिसका आरम्भ रजाकारों के जलूसों, सार्वजनिक प्रदर्शनों, सभाओं तथा भाषणों पर प्रतिबंध लगा कर किया जाय।

२. राज्य के कांग्रेस-जनों की रिहाई, जिसका आरम्भ नेताओं को अविलम्ब रिहा करके किया जाय।

३. वर्त्तमान सरकार का सच्चा और अविलम्ब पुनर्निर्माण, जिससे वह दोनों सम्प्रदायों की प्रतिनिधि हो सके।

४. उत्तरदायी शासन की शीघ्र स्थापना और वर्ष के अन्त तक संविधान-सभा का निर्माण।

मांकटन ने माउंटबेटन से कहा कि वह निजाम को सलाह देंगे कि वह अपने प्रधानमंत्री को बदलकर इन सूत्रों की पुष्टि करें। वह महसूस करते

थे कि मीर लायकअली पर यहां किसी को रत्ती पर भी विश्वास नहीं रह गया। किसी और चीज से निजाम के इरादों के बारे में इतना विश्वास पैदा नहीं होगा, जितना हैदराबाद के दिल्ली-स्थिति एजेंट-जनरल, जैन यार जंग के समान योग्यता और सभ्यता वाले व्यक्ति की इस पद पर नियुक्ति से । निजाम के प्रति उनकी निष्ठा संदेह से परे थी और संदेह से परे था उनका दृढ़ यथार्थवाद। उन्होंने भारत सरकार, खासकर वी. पी. मेनन, पर गहरी छाप छोड़ी थी।

: २५ :

गतिरोध

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
शनिवार, २४ अप्रैल १९४८

मांकटन १९ को लन्दन के लिए रवाना हो गए। कराची से एक पत्र लिखकर उन्होंने निजाम के साथ हुई अपनी बातचीत की सूचना माउंटबेटन को दी। उन्होंने चेतावनी दी थी कि दिल्ली में जिन चार सूत्रों पर समझौता हुआ था, उसमें से सबमें कष्टकर और समस्या को सुलझाने के मार्ग में आड़े आने वाला सूत्र वह होगा, जो उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए शासन-यंत्र की रचना से संबंध रखता था। सामान्य आबादी के आधार पर निर्मित विधान सभा, जिसमें एक सप्ताह के अन्दर हिन्दुओं का भारी बहुमत हो जायगा, निजाम के गले नहीं उतरेगी। लेकिन मांकटन ने यह आग्रह अवश्य किया था कि निजाम अपनी सरकार का पुनर्निर्माण करें, जिसमें वह सब सम्प्रदायों की प्रतिनिधि सरकार का रूप ले सके। निजाम चाहते थे कि मांकटन रुके। लेकिन उन्होंने यह कहकर रुकने से इंकार कर दिया कि नई सरकार की स्थापना न होने की स्थिति में उनका वहां रुके रहना उनके स्वाभिमान के अनुकूल नहीं था।

आशा यह की जाती थी कि अपने फरमान के द्वारा निजाम चार-सूत्री योजना को अमली रूप दे देंगे। सदा की तरह कल फरमान जारी हुआ था, और हमेशा की तरह सारी उम्मीदों पर पानी फिर गया। चार सूत्रों को स्वीकार करके प्रदत्त व्यावहारिक रियायतों से पैदा होने वाले मनोवैज्ञानिक लाभ को एक ही वाक्य में साफ कर दिया गया। फरमान में पहले यह आशा प्रगट की गई थी कि "वे राजनैतिक दल, जो हैदराबाद के वर्त्तमान अन्तरिम शासन में शामिल नहीं हैं, शीघ्र ही उसमें हाथ

बंटायेंगे और सरकार का भार संभाल लेंगे।" फिर फरमान ने अन्तिम वचन के रूप में कहा, "मुझे डर है कि किसी और जगह की सरकार की नकल मात्र करने से हमारे देश का वातावरण कहीं अधिक विषाक्त न हो जाय, जैसा कि अन्य स्थानों पर हो रहा है।" छोटी-सी विजय प्राप्त करने को इतना भारी मूल्य चुकाने के लिए तत्पर होना, निश्चय ही चकित करने वाली बात थी।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
शुक्रवार, ३० अप्रैल १९४८

हैदराबाद के प्रश्न पर तनातनी बढ़ती जा रही थी। सीमावर्ती घटनाओं में वृद्धि हो रही थी, जिससे गरम दिमाग और भी गरम हो रहे थे। नेहरू ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सामने गत शनिवार को बंबई में एक भाषण दिया था। इस भाषण में उन्होंने यह कहा बताया गया था: "अब हैदराबाद के सामने दो ही रास्ते हैं—युद्ध या संघ-प्रवेश।" इससे राजनैतिक तापमान उबाल पर पहुंच गया था।

माउंटबेटन ने यात्रावास में दूसरे दिन समाचारपत्रों में यह शीर्षक पढ़ा: "संघ-प्रवेश या युद्ध।" पढ़कर वह स्तम्भित रह गए। दिल्ली लौट कर उन्होंने तुरन्त नेहरू से संपर्क किया। नेहरू को भी कम विस्मय नहीं था। उन्होंने बतलाया कि रिपोर्ट गलत छपी है, क्योंकि उन्होंने न तो युद्ध का कोई जिक्र किया था न संघ-प्रवेश का। गलती का कारण शायद यह रहा हो कि भाषण हिन्दी में दिया गया था, जिसे लिखा था एक मद्रासी-भाषी स्टेनोग्राफर ने।

नेहरू कल प्रेस कान्फ्रेंस में इस गलती को सुधार देंगे। लेकिन एक हफ्ता बीत चुका था और प्रचार का यह स्वयं-सिद्ध सिद्धांत है कि तुरन्त किये जाने वाले सुधार या खंडन का भी, पहले छपी झूठी रिपोर्ट के असर का, दशांश से अधिक असर नहीं होता। उधर हैदराबाद में मीर लायकअली

ने हैदराबाद व्यवस्थापिका सभा के सामने एक लम्बा-चौड़ा भाषण दिया जिसमें चारों में से एक सूत्र का भी जिक्र नहीं किया गया था। इससे निजाम के फरमान में निहित सद्भावना के प्रति दिल्ली का बचाखुचा विश्वास भी जाता रहा।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
मंगलवार, ४ मई १९४८

हैदराबाद के गतिरोध से माउंटबेटन बहुत चिंतित थे। व्यक्तिगत और सार्वजनिक , दोनों कारणों से वह चाहते थे कि मामला जल्दी खुशी-खुशी निबट जाय। लगभग छः सप्ताह बाद वह गवर्नर-जनरल पद का भार राजाजी को सौंपने वाले थे, और उनका अनुमान था कि यदि इस छोटे से अर्से का ठीक से उपयोग किया जाय तो दोनों पक्षों को अपने मतभेद दूर करने की प्रेरणा मिल सकती है। लेकिन यह कहना कोई मामूली काम नहीं था कि मांकटन की अनुपस्थिति में कब और कैसे उनके प्रभाव का पूरा-पूरा फायदा उठाया जा सकेगा ।

माउंटबेटन ने सुझाव दिया कि अब निजाम को आखिरी चेतावनी का पत्र भेजा जाना चाहिए। इसका मजमून भी बड़ी तत्परता से तैयार किया जा रहा था। लेकिन मैंने इसका विरोध किया। मैंने आग्रह किया कि अन्य सब इलाज बेकार हो जाने पर ही यह रास्ता अपनाया जाना चाहिए। मेरा कहना था कि पत्र का यह मजमून मनोवैज्ञानिक रूप से गलत है।

आज सवेरे दस बजे हुई बैठक में, जिसमें वी. पी. मेनन, वरनोन और मैं थे, माउंटबेटन मेरे मत से सहमत हो गए।

इसके बाद रियासतों की स्थिति पर चर्चा छिड़ गई। राज्यों के विलीनीकरण का जो काम उड़ीसा और बिहार राज्यों के साथ प्रारम्भ हुआ था, और जिसे पटेल की ओर से वी. पी. ने अत्यन्त तत्परता के साथ आगे बढ़ाया था, अब ऐसे स्थान पर पहुंच गया था कि आगे बढ़ने की गुंजाइश

नहीं रह गई थी ।

सबमें बड़े राज्य-संघ के मसौदे पर २२ अप्रैल को हस्ताक्षर हुए। इसका नाम था मालव-संघ, जो ग्वालियर-इंदौर-मालवा-क्षेत्र के बीस राज्यों से मिलकर बना था। इसका क्षेत्रफल सैंतालीस हजार वर्गमील और जनसंख्या सत्तर लाख से ऊपर है। राजप्रमुख (या संघ के वैधानिक अध्यक्ष) का नाम तय करने का काम बड़ा नाजुक था। यह पद ग्वालियर नरेश को मिलने वाला था, जिन्हें इक्कीस तोपों की सलामी है। राजधानी का प्रश्न और भी कठिन था। इस बारे में यह समझौता हुआ कि ग्वालियर जाड़ों की राजधानी रहे और इंदौर गर्मियों की। भोपाल ने मालव-संघ के बाहर बने रहने की इच्छा प्रकट की थी। लेकिन सरकार के साथ उन्होंने दोस्ती कर ली थी और राज्य में उत्तरदायी शासन का प्रारम्भ करने की घोषणा की थी ।

एक और किस्म का विलीनीकरण भी आज हो रहा था । कच्छ राज्य सीधा भारत सरकार में मिलाया जा रहा था। यह कच्छ-राज्य के सामरिक महत्व को देखते हुए किया जा रहा था। विलीनीकरण का काम अलग-अलग स्वरूप धारण कर रहा था। दक्षिणी रियासतों और गुजरात के ठिकानेदार, जिनकी संख्या लगभग सौ है—अलग समौझौतों द्वारा बंबई प्रांत में विलीन हो गए थे। पूर्वी पंजाब और मद्रास ने भी पड़ोसी राज्यों से ऐसे ही समझौते कर लिये थे। सबमें आत्मनिर्भर-संघ बना था सौराष्ट्र-संघ, जिसमें काठियावाड़ के दो सौ सत्रह राज्य शामिल हुए थे। इसके राज-प्रमुख नवानगर के जामसाहब थे जो बड़े उत्साह से नई व्यवस्था में शरीक हुए थे। आशा है कि वह केन्द्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका खेलेंगे। इन संघों का शासन लोकप्रिय सरकारें चलाएंगी।

कल एक और मसौदे पर हस्ताक्षर होंगे—सिख राज्यों के एकीकरण के मसौदे पर, जहां सारी चर्चाएं पटियाला की मर्जी पर आश्रित थीं। वह चाहते तो विलीनीकरण में भाग न लेते। किन्तु पटियाला के बिना सिख-राज्यों का दृढ़ संघ बनाना संभव नहीं था। वी. पी. ने हमें बताया कि पटियाला ने

नये संघ में शामिल होने का फैसला कर लिया है। शर्त सिर्फ यह थी कि उन्हें और उनके राज्य को उनके आपेक्षिक महत्व के अनुसार उचित पद दिया जाय। इस प्रकार वह राजप्रमुख होंगे और कपूरथला उपराजप्रमुख। निश्चय ही यह वी. पी. मेनन की भारी विजय थी। इससे सिख-समस्या का शक्ति-संतुलन केन्द्रीय सरकार के पक्ष में हो जायगा और पूर्वी पंजाब को काट कर सिखिस्तान बनाए जाने की मांग करने वालों का पलड़ा हलका पड़ जायगा।

राजपूताने के राजाओं का संघीकरण भी एक महत्वपूर्ण प्रगति थी। इसका प्रारम्भ छोटे राज्यों के विलीनीकरण से हुआ। फिर, उदयपुर द्वारा उसमें शामिल होने का निश्चय कर लेने पर उसने ज्यादा ठोस रूप ग्रहण कर लिया। जब माउंटबेटन उदयपुर गये थे, तब महाराणा ने उनसे कहा था कि यह फैसला उन्होंने अपनी स्वेच्छा से अपनी जनता के हितों को ध्यान में रखते हुए किया था। उदयपुर का राजवंश भारत के सबमें सम्मानित राज-कुलों में से है और संघ में उनके शामिल होने का राजपूताने के अन्य बड़े राज्यों पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। यह अन्य बड़े राज्य आत्मनिर्भर हैं और केन्द्रीय विधान परिषद् में उनके अपने-अपने प्रतिनिधि हैं। इस अधिकार का उपयोग करनेवाली उन्नीस रियासतों में से सात रियासतें किसी-न-किसी संघ में शामिल हो गई थीं।

सफल कूटनीति यही थी कि क्रांतिकारी परिवर्तनों को भी परम्परागत परिपाटियों का जामा पहने रहने दिया जाय। वी. पी. मेनन ने आज कहा कि बाप के पापों का फल बेटों के सिर पड़ा है। पटियाला और बीकानेर के भूतपूर्व नरेशों ने १९३५ की संघीय-योजना (फेडरल प्लान) को अस्वीकार कर दिया था, जिससे पूरे भारत के ढांचे को भारी धक्का लगा था। ऐन मौके पर माउंटबेटन द्वारा संघ-प्रवेश की योजना हाथ में लेने से स्थिति काबू में आ गई थी और वर्तमान पटियाला तथा बीकानेर नरेशों को नये संबंध दृढ़ करने का अवसर मिल गया था।

माउंटबेटन ने खुले रूप से स्वीकार किया कि गत वर्ष जब उन्होंने

संघ-प्रवेश-पत्र पर हस्ताक्षर कराने का काम हाथ में लिया था, तब उन्हें कल्पना तक नहीं थी कि उन विषयों में वृद्धि की मांग इतनी जल्दी की जायगी या उसे स्वीकार कर लिया जायगा। इस सिलसिले में उन्होंने नाइ की राय का उल्लेख किया। नाइ का कहना था कि रियासती समस्या की गंभीरता भारत के बाहर बिल्कुल नहीं समझी गई। वास्तव में कांग्रेस, मुसलिम लीग अथवा सिखों से निबटने की अपेक्षा यह कहीं गंभीर विषय था। नाइ ने कहा कि राजाओं से किसी प्रकार के मैत्रीपूर्ण समझौते की उम्मीद ही उन्होंने छोड़ दी थी। पन्द्रह अगस्त के बाद उन्हें भारी पैमाने पर गंभीर उपद्रवों की आशंका थी। मई १९४८ तक जो प्रगति हुई, उस तक पहुंचने में अगर एक पीढ़ी का समय भी लग जाता तो उन्हें कोई अचरज न होता। उनका मत था कि इस सफलता को इतिहास में अभूतपूर्व माना जायगा।

सारी फिजां ही कितनी बदल गई थी। इसका आभास धौलपुर नरेश द्वारा नई योजना में सम्मिलित होने से मिलता था। गत वर्ष उनका दृष्टिकोण ऐसा था कि एकीकरण से अधिक किसी प्रकार का विलय उन्हें सर्वथा अस्वीकार होता। आज वह यहां मौजूद थे—मत्स्य राज्यसंघ के राजप्रमुख के रूप में।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
सोमवार, १० मई १९४८

मुझे और वरनोन को लगता है कि हमें निजाम की स्थिति के बारे में पर्याप्त ज्ञान नहीं है। ऐसी हालत में हम माउंटबेटन को किसी उचित कार्यवाही की सलाह नहीं दे पायंगे। दोनों पक्षों के बीच जो अन्तिम पत्र-व्यवहार हुआ है उससे एक नया गतिरोध उत्पन्न हो गया है। दिल्ली न आने के बारे में निजाम ने जो दुराग्रह किया है, उसके कारण अब यह आशा बिलकुल ही नहीं रही, कि भारत सरकार माउंटबेटन को हैदराबाद जाने की सम्मति देगी।

हम महसूस करते हैं कि यदि माउंटबेटन के किसी सहायक कर्मचारी को 'राजा का दूत' बना कर निजाम के पास भेजा जाय तो कुछ व्यक्तिगत संपर्क तथा विश्वास स्थापित हो सकेगा और वर्त्तमान भयानक गतिरोध को मिटाने में सहायता मिलेगी। हमने माउंटबेटन से यह बात कही। उन्होंने इसे बहुत पसन्द किया और मुझे ही 'राजा के दूत' का काम करने का आदेश दिया। वह नेहरू, वी. पी. मेनन और ब्रईन से इस विषय में बात करेंगे।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
बुधवार, १२ मई १९४८

सबने स्वीकार कर लिया है कि मैं शीघ्र निजाम से मिलने के लिए हैदराबाद जाऊं। व्यक्तिगत रूप से स्थिति का अध्ययन करने के साथ-साथ निजाम तथा उनके सलाहकारों को माउंटबेटन के बचे हुए थोड़े से कार्यकाल का सर्वोत्तम उपयोग करने और पुनः वार्त्ताएं आरम्भ करने के लिए समझाऊं। मुझे यह भी समझाना है कि कार्यवाही शीघ्रतापूर्वक की जानी चाहिए। आज सवेरे कर्मचारी मंडल की बैठक में वी. पी. मेनन उपस्थित थे। उन्होंने बताया कि इस बात के काफी प्रमाण मिल गए हैं कि अब कम्यु-निस्टों तथा रजाकारों ने आपस में गठबंधन कर लिया है। परन्तु अब तक इस पहलू पर पर्याप्त जोर नहीं दिया जा रहा था। माउंटबेटन को इस गठबंधन पर विश्वास नहीं होता। किन्तु मेनन को इस पर दृढ़ विश्वास है और वह इसे परिस्थिति का सबसे महत्वपूर्ण पहलू मानते हैं।

माउंटबेटन ने बैठक का आरम्भ पटेल के स्वास्थ्य के बारे में पूछ-ताछ से किया। वी. पी. मेनन ने बताया कि उनकी नाड़ी अनियमित है और यह अनियमितता बढ़ती जाती है। इससे चिन्ता उत्पन्न हो रही है।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
गुरुवार, १३ मई १९४८

कल माउंटबेटन ने मेरी उपस्थिति में नेहरू से पुष्टि करवा दी कि वह चाहते हैं कि मैं हैदराबाद जाऊं। यदि निजाम संघप्रवेश के लिए राजी हो गए तो वह उन्हें पूर्ण वैयक्तिक संरक्षण देंगे। मेरे काम के बारे में मुझे आदेश दिये जाते समय यह संभावना भी नजरन्दाज नहीं की गई कि शायद निजाम अपने घर के मालिक नहीं रहे हैं और किसी प्रकार की गुप्त राजमहली क्रान्ति या तो हो गई है या होने वाली है।

सुरक्षा-समिति की बैठक के बाद मैं फिर नेहरू से मिला और उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करने उनके साथ हो लिया। उन्होंने कहा कि मेरी यात्रा के बारे में वह कुछ खास बातें कहना चाहते हैं। उनका मत है कि संकट को टालने की कोशिश करना अक्सर उसे निमन्त्रण देने का सबसे पक्का ढंग होता है।

हैदराबाद की सीमा पर प्रतिदिन जो गड़बड़ी और गोलाबारी होती रहती है उसको चुपचाप देखते रहना संभव नहीं है।

जब मैं लौटा उस समय भी मेनन माउंटबेटन के साथ बातें कर रहे थे। वह सुरक्षा-समिति के कार्य से संतुष्ट दिखलाई पड़े। उससे सैनिक तथा अ-सैनिक अधिकारियों को एक-दूसरे को अधिक निकट से जानने का अवसर मिला था।

माउंटबेटन मेरी यात्रा के बारे में बड़े आशावान हैं। तय हुआ कि मैं हैदराबाद सरकार की व्यवस्था के अन्तर्गत यात्रा करूं। ५ बजे मैं ज़ईन और उनके पुत्र अलीखां से मिलने हैदराबाद भवन गया। ज़ईन ने कहा: "यदि भारत सरकार ने बहुत अधिक दबाव न डाला तो सारी बात हल हो जायगी।"

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
शुक्रवार, १४ मई १९४८

मैंने फिर ज़ुईन के साथ बातचीत की। मैं मीर लायकअली का अतिथि रहूँगा। मेरी यात्रा की कोई अवधि निश्चित नहीं की गई। यह मुझे मौके पर तय करने की आजादी है। मेरे हैदराबाद छोड़ने के पहले ज़ुईन भी वहां पहुंच जाने की आशा करते हैं।

मैं जो पत्र ले जा रहा हूं उसमें निज़ाम के उत्तर पर निराशा व्यक्त की गई है और बताया गया है कि कार्यभार बहुत होने और कार्यकाल के बहुत थोड़ा रह जाने के कारण माउंटबेटन का हैदराबाद आना संभव नहीं। तथापि माउंटबेटन ने लिखा है: "मैं बहुत उत्सुक हूं कि भारत छोड़ने के पहले आपके साथ कुछ व्यक्तिगत संबंध स्थापित कर सकूं।" बाद में, मुझे अपने सहायक मण्डल का सबसे पुराना सदस्य बताकर उन्होंने कहा है, "यह मेरे विचारों को भलीभांति जानते हैं और इन पर मेरा पूरा विश्वास है।"

अन्त में उन्होंने कहा है, "हैदराबाद से कम्युनिस्ट और साम्प्रदायिक स्थिति के जो समाचार आ रहे हैं, उन्होंने मुझे बेचैन कर दिया है। उनका आपकी स्थिति पर जो असर हो रहा है वह विशेषरूप से चिन्ताजनक है। अतएव, मुझे विश्वास है कि आप श्री कैम्पबेल जॉन्सन को सामान्य तथा व्यक्तिगत दृष्टिकोण से स्थिति का स्पष्ट परिचय कराने में संकोच न करेंगे। मैं चाहता हूं कि मेरा संदेश अकेले में ही आपको दिया जाय; आपके सिवा किसी दूसरे को नहीं। मुझे आशा है कि श्री कैम्पबेल जॉन्सन आपके साथ मेरा व्यक्तिगत संपर्क स्थापित कर सकेंगे। दूसरों की उपस्थिति से यह संबंध दूषित हो सकता है।"

सो कल मैं रवाना हो जाऊंगा। केवल एक बात निश्चित है कि आगामी ४८ घंटों में मुझे माउंटबेटन तथा भारत सरकार के संपर्क से कटा रहना पड़ेगा। माउंटबेटन के साथ छः वर्ष की सेवा में मुझे सबसे कठिन काम यही मिला है। फिर भी मैं उनके पास काफी समय तक रहा चुका हूं और उनकी स्फूर्त्ति का कुछ अंश तो मुझे भी मिल ही गया है।

: २६ :

निजाम से भेंट

हैदराबाद
शनिवार, १५ मई १९४८

मैं नाश्ते के बाद विलिंगडन हवाई अड्डे से रवाना होकर, भोपाल में थोड़ा ठहरता हुआ, भोजन के पहले हैदराबाद पहुंच गया। हवाई अड्डे पर मीर लायकअली की ओर से कैप्टेन बेग और मुंशी की ओर से कम-से-कम तीन व्यक्ति मेरा स्वागत करने के लिए आये थे। तीन मिनट के अन्दर ही मुझे अपना कूटनीतिक कार्य प्रारम्भ कर देना पड़ा, क्योंकि मुंशी के प्रतिनिधियों ने मुझे उनका आग्रह भरा न्योता दिया कि मैं पहले उनसे मिलूं और उनके साथ ही खाना भी खाऊं। मुझे उत्तर देना पड़ा कि मैं लायकअली का अतिथि हूं और उनकी योजना को जाने बिना कोई कार्यक्रम नहीं बना सकता। फिर भी मैं मुंशी से मिलूंगा अवश्य।

मुंशी मेरे आने का समाचार पाकर विशेष रूप से बंगलोर से आ गए थे। मेरी जो यात्रा गुप्त रूप से होनी थी उसपर अब प्रचंड प्रकाश पड़ गया था, क्योंकि मुंशी ने मेरे आने और अपनी वापसी की सूचना सम्वाददाताओं को दे दी थी।

इससे निबटने के बाद हमने सिकन्दराबाद और हैदराबाद नगरों को पार करते हुए १० मील का मार्ग तय किया। मार्ग में बहुत लोग दिखलाई नहीं पड़े। जो दिखलाई पड़े वे आराम से चलते-फिरते अपने कामों में लगे हुए थे।

प्रधान मंत्री के निवासस्थान 'शाहमंजिल' में पहुंचते ही मुझे एकदम मीर लायकअली के पास पहुंचाया गया। वह कुछ बीमार थे। उन्होंने कहा कि मैंने आपके लिए भोजन की विशेष व्यवस्था नहीं की है इसलिए मुंशी का आमंत्रण स्वीकार कर लेना उचित होगा। उन्होंने यह इस खयाल से भी कहा

कि मुंशी कल वापस बंगलोर जानेवाले हैं। उन्होंने कहा कि वह सब विचारों के नेताओं के साथ मेरी भेंट कराने का प्रबंध कर रहे हैं। मुझे इच्छानुसार घूमने-फिरने और जहां चाहूं वहां जाने की स्वतन्त्रता है। उन्होंने मुख्य बात यह कही कि आर्थिक नाकेबंदी में अब भी ढील नहीं की गई है, जिससे हमें पानी शुद्ध करने के लिए क्लोरीन नहीं मिल रहा है। उन्होंने कुछ बसें मंगाई हैं, जो बंबई में जंग खा रही थीं। मैंने कहा कि निश्चय ही इन शिकायतों को अधिक व्यापक समझौते के द्वारा दूर किया जा सकता है।

देर से भोजन करने के बाद मुझे बताया गया कि निजाम ५ बजे मुझसे मिलेंगे। मुझे समय पर उनके निवास-स्थान "किंग कोठी" पहुंचा दिया गया। प्रधान मंत्री कोई १० मिनट पहले ही वहां पहुंच चुके थे। मुझे मामूली सजावट वाले एक कमरे में ले जाया गया। धुंधले प्रकाश में मैंने देखा कि कमरा विक्टोरिया के काल की साज-सज्जा से सुशोभित था और एक ओर पंचमजार्ज का चित्र टंगा हुआ था।

मीर लायकअली ने आगे बढ़कर निजाम से, जो एक कुर्सी पर अदृश्य-प्राय बैठे थे, मेरा परिचय कराया। एक क्षण के लिए मैं चकित रह गया। किन्तु बाद में शीघ्र ही मैंने अपनी सुध-बुध बटोरकर यथोचित शिष्टता के साथ उनका अभिवादन किया। वह निहायत भद्दे कपड़े पहने हुए थे—एक सफेद सूती शेरवानी और सफेद पाजामा, पैरों में भूरी स्लीपरें थीं और हलके भूरे मौजे टखने पर बेतरतीब फैले हुए थे। सिर पर बादामी रंग की तुर्की टोपी थी जो सिर के पिछले भाग पर रखी हुई थी। उनकी कमर झुकी हुई है और दांतों का खराब हाल था। उनके हाथ कांप रहे थे और बात करते समय उनके घुटने इस बुरी तरह आपस में टकरा रहे थे मानो वे मृगी-रोग से पीड़ित हों। उनके व्यक्तित्व का सबमें सबल अंग हैं उनकी अभिव्यक्ति का पैनापन और स्वर की कर्कशता।

मैं निश्चय नहीं कर सका कि मीर लायकअली बैठे रहेंगे, या चले जायंगे। परन्तु जब मैंने निजाम को माउंटबेटन का पत्र दिया, और वह उसे धीरे-धीरे पढ़ने लगे, उस समय वह चाहते तो मुझसे एकांत में बातें कर

सकते थे । परन्तु उन्होंने इस मौके को नहीं अपनाया । मीर लायकअली वहीं डटे रहे । पत्र पढ़ने के बाद निजाम बड़े भयानक ढंग से मेरी ओर मुड़े । उन्होंने कहा कि मैं लार्ड माउंटबेटन के सीमित समय तथा अधिकारों को खूब जानता हूं । "वह एक महीने में क्या कर सकते हैं ?" उन्होंने कहा, "मुझे विश्वास है कि लार्ड माउंटबेटन अच्छी तरह समझते हैं कि मेरा हैदराबाद छोड़ना बिल्कुल असंभव है । यदि लार्ड माउण्टबेटन को यहां आने और मुझसे मिलने की फुरसत नहीं है, तो फिर (उन्होंने विदाई का इशारा किया) मुझे अफसोस है । उन्हें मेरा सलाम है, और खुदा हाफिज !"

निजाम ने कहा, जहां तक भारत सरकार के साथ हमारे संबंधों का प्रश्न है, हम अपनी शर्तें बता चुके हैं । मुझे जो कुछ करना था, मैंने अपने प्रधान मंत्री और सलाहकार के द्वारा कर दिया है । अब मुझे व्यक्तिगत आधार पर भी किसी तीसरे पक्ष से कुछ नहीं कहना । मैंने कहा, माउंटबेटन बहुत चिन्तित हैं कि भारत छोड़ने के पहले कोई समझौता करा जायं । आप बताएं कि उनका उपयोग किस प्रकार किया जाय । आप लार्ड माउंट-बेटन के विचारों से परिचित हैं ; यदि मैं कोई स्पष्टीकरण कर सकूं तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी ।

मैंने 'यथास्थिति समझौता' कराने में लार्ड माउंटबेटन के विशेष योग की चर्चा की । उन्होंने उत्तर दिया : "वह सब अब समाप्त हो चुका है ।" मैंने चतुराई के साथ समझाने का प्रयत्न किया कि किस प्रकार माउंटबेटन "संघ-प्रवेश" या उसके समान किसी चीज को निजाम के लिए ही हितकारी समझते हैं ; परन्तु उन्होंने सारी बातों को हाथ के इशारे से उड़ा दिया । इस समय लायकअली ने हस्तक्षेप करते हुए कहा कि मैं इस विषय पर जनमत-संग्रह का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लेता ; किन्तु शांति और व्यवस्था को कायम रखने की समस्या ने मुझे उसे ठुकरा देने के लिए बाध्य कर दिया है । इस पर निजाम ने कहा, "बिल्कुल ठीक, बिलकुल ठीक !"

मैं उनसे कम्युनिस्टों की स्थिति के बारे में कोई बात नहीं निकलवा सका । उन्होंने कहा, "यह विस्तार की बात है । इसपर आप मेरे प्रधान मंत्री

से बातें कर सकते हैं।"

उन्होंने कहा कि भारत के अन्य राजा-महाराजाओं के भाग्य और नीति से मेरा कोई वास्ता नहीं। मैं उन्हें केवल जागीरदार मानता हूं, जिन्हें उस नाते कुछ मान दिया जाता है।

शेष बातें इस्लाम धर्म पर उनके एक प्रवचन तक ही सीमित रहीं। उनके प्रवचन का आधार है कि हम अच्छे या बुरे भाग्य के अधीन हैं। उन्होंने कहा, स्थिति दो-तीन दिन में भी सुधर सकती है और ज्यादा समय भी ले सकती है। परन्तु वह अपने भाग्य का फल भोगने को तैयार हैं।

इसके बाद उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या आपने मुहर्रम के बारे में सुना है। मेरे 'हां' कहने पर उन्होंने कहा, "परन्तु आप उसका अर्थ नहीं जानते होंगे। वह पैगंबर के प्रपौत्र की मृत्यु की स्मृति में मनाया जाता है। मौत और कुर्बानी हमारे मज़हब की खास चीज है। (इस सिलसिले में यह बता देना आवश्यक है कि नजाम रोज शाम को अपनी मां की कब्र पर जाकर निमाज पढ़ते हैं)।

मैं फिर माउंटबेटन के प्रश्न पर लौटा। मैंने कहा कि माउंटबेटन वैधानिक राज्यतंत्र पर बहुत विश्वास करते हैं। इसपर निज़ाम ने मुझे आड़े हाथों लेकर कहा, "यहीं तो मेरा उनसे मतभेद है। वैधानिक राज्यतंत्र यूरोप और पश्चिम में बहुत अच्छी वस्तु हो सकता है; पूर्व में उसका कोई अर्थ नहीं।"

मीर लायकअली ने बातचीत को राष्ट्रमंडल के प्रश्न पर ढाल दिया। निज़ाम जानना चाहते थे कि भारत के राष्ट्रमंडल में बने रहने की क्या संभावना है। मैंने बताया कि इस प्रश्न पर बहुत जोरों से विचार हो रहा है और बहुत-से प्रभावशाली लोग भारत के राष्ट्रमंडल में बने रहने के समर्थक हैं। मैंने यह भी कहा कि मैं एक बात कहना चाहता हूं जिसका वाइसराय के कर्मचारी मंडल का सदस्य होने से कोई संबंध नहीं है। वह यह कि भारत राष्ट्र-मंडल में रहे या न रहे, वर्तमान ब्रिटिश लोकमत केवल इसी आधार पर भारत के एक भाग के साथ अधिक अनुकूल और दूसरे भाग के साथ कम

अनुकूल व्यवहार का समर्थन नहीं करेगा। यदि इस आधार पर कोई निष्कर्ष निकाला जायगा तो वह भ्रामक होगा। मेरा खयाल है कि मेरी इस बात का असर हुआ।

इसके बाद विश्व की संकटापन्न स्थिति पर कुछ बातें हुईं। अन्त में निजाम ने माउंटबेटन के प्रति शुभकामनाएं व्यक्त कीं और बातचीत समाप्त हो गई।

निज़ाम के प्रतिकूल रुख के कारण एक घंटे की यह भेंट सरल तो नहीं रही, किन्तु उससे उनके व्यक्तित्व और मानस के अध्ययन का अच्छा अवसर मिला। निजाम का शरीर भले ही बुढ़ा गया हो, उनका मस्तिष्क सतर्क है और अपनी बुद्धि पर उनका पूर्ण नियंत्रण है। मुझ पर यह छाप पड़ी, मानो मुझसे किसी वृद्ध, सनकी प्रोफेसर ने अपने विशेष विषय पर बातचीत की हो। निजाम पुराने ढंग के राजा हैं—अहंकारी और संकुचित विचारों के; परन्तु अपने निजी क्षेत्र में अजेय। सारी बातचीत में उनका रुख घोर भाग्यवादी था।

मुझे कोई चिह्न दिखलाई नहीं पड़ा कि निजाम बंदी हैं। कोठी के सामने भारी संख्या में पुलिस तैनात है, किन्तु निजाम की हत्या का जो प्रयत्न किया गया था, उसे दृष्टि में रखते हुए उसमें कोई असाधारण बात दिखलाई नहीं पड़ती। राजमहल मुख्य-मार्ग से बहुत दूर भी नहीं है। दिल्ली के साधारण मकान भी सड़क से उतनी ही दूरी पर हैं। मेरे विदा लेने के बाद मीर लायकअली वहीं ठहरे रहे।

मीर लायकअली के मकान में मोइन मुझसे मिलने आये। स्पष्ट था कि वह जानना चाहते थे कि निजाम की बातों पर मेरी क्या प्रतिक्रिया है। मैंने केवल इतना कहा कि बातचीत सामान्य ढंग की थी और उससे कोई प्रोत्साहन प्राप्त नहीं हुआ।

हमने संधि या संघ-प्रवेश पर बातें कीं। उन्होंने कहा कि हमें भय है कि तीन विषयों में संघ-प्रवेश बाद को तैंतीस विषयों में संघ-प्रवेश बना दिया जायगा। उसमें कानूनों की मान्यता स्थापित करने तथा आंतरिक

स्वतन्त्रता खोने का भी प्रश्न उठेगा, जिसे निजाम कभी स्वीकार न करेंगे।

इसके बाद में मुंशी के साथ भोजन करने के लिए चला गया। वहां पहुंचने में तेज मोटर पर मुझे लगभग ४० मिनट लगे। उनका निवासस्थान सिंकदराबाद के एक छोर पर हवाई अड्डे के समीप है। मुंशी यहां रहते हुए नगर के जीवन से बिलकुल पृथक् हैं और उनकी भेंट केवल उन लोगों से हो सकती है, जिनके पास समय और पेट्रोल है या जिन्हें उनसे मिलने की राजनैतिक आवश्यकता है।

मैंने उन्हें कुछ खिन्न और परेशान पाया। उन्होंने कहा कि लायकअली ने उनके साथ हुई भेंट की एक बिलकुल झूठी रिपोर्ट दी है, जिसके कारण उन पर से उनका विश्वास बिलकुल उठ गया है। उन्होंने यह भी बताया कि मोइन और लायकअली के बीच की स्थिति बड़ी अस्पष्ट है। यद्यपि वे दोनों साले-बहनोई हैं पर उन दोनों में मतभेद है। जहां तक निजाम पर प्रभाव का प्रश्न है, लायकअली का तारा इस समय बुलन्द है।

मुंशी ने कहा कि निजाम उत्तरदायी शासन या 'संघ-प्रवेश' के संबंध में कोई ठोस कारंवाई नहीं करना चाहते। परन्तु वह मेरे इस विचार से सहमत हैं कि राजनैतिक स्थिति की बागडोर निजाम के ही हाथों में है।

मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि मेरी यात्रा व्यक्तिगत तथा अनौपचारिक है और मैं प्रधान मंत्री तथा वी. पी. मेनन की पूर्ण सहमति से आया हूं।

वह कल बंगलोर वापस जाने के बारे में बिल्कुल प्रसन्न दिखलाई पड़े। उन्होंने कहा कि उनकी पत्नी अब यहां रहना पसन्द नहीं करती और सरकार के साथ उनका संबंध इतना बिगड़ गया है कि कोई संपर्क ही बाकी नहीं रह गया।

हैदराबाद,
रविवार, १६ मई १९४८

दिन भर काम में बहुत व्यस्त रहा। बातचीत से जरा भी फुरसत न मिली। मैंने मीर लायकअली से कहा कि मैं कासिम रिजवी से खानगी तौर पर मिलना पसन्द करूंगा बशर्ते कि इस भेंट के बारे में कोई प्रचार न हो और यह समझ लिया जाय कि मैं केवल उन्हीं लोगों से मिल रहा हूं जिनसे आप मुझे विशेष रूप से मिलाना चाहते हैं। उन्होंने उत्तर दिया कि वह निश्चित रूप से चाहते हैं कि मैं रिजवी से मिलूं। उन्होंने कहा कि रिज़वी मेरे दौरे पर रवाना होने के पूर्व मुझ से भेंट करने आयगा। उन्होंने मुझे सलाह दी कि उसी वक्त मैं भी बातचीत में शामिल हो जाऊं।

मैंने ऐसा ही किया। कुछ मिनटों की मामूली बातचीत के बाद प्रधान मंत्री मुझको रिज़वी के साथ छोड़ कर चले गए। बातचीत की शुरुआत मैंने इस प्रकार की : घटनाएं जिस प्रकार करवट ले रही हैं उससे मुझे मायूसी हो रही है। उसने खट से उत्तर दिया कि वह तो जरा भी मायूस नहीं है। अगर है तो उन्मादपूर्ण। उसने मुझसे कहा कि मै यह अच्छी तरह समझ लूं कि उसका एकमात्र उद्देश्य मुसलमानों की रक्षा है और उसकी भारी वफादारी उन्हींके प्रति है। मैंने उससे पूछा कि क्या इस समाचार में कोई सचाई है कि कम्युनिस्ट रजाकारों से कह रहे हैं कि दोनों को मिलकर सम्मिलित कार्यवाही करनी चाहिए। इसपर रिज़वी ने बहुत गरम होकर जवाब दिया, "जब आप रजाकारों का जिक्र करते हैं तो उसका मतलब मुझसे है। मैं आपको बता दूं कि यहां मुसलमानों की हालत ऐसी है कि वे खुदबखुद बड़ी तेजी से कम्युनिस्ट बन रहे हैं। मैंने उन्हें (रिज़वी ने ठीक निर्देश नहीं किया कि उन्हें से उसका क्या अभिप्राय था) चेतावनी दे दी है कि ऐसा होना संभव है।"

फिर उसने दृढ़तापूर्वक कहा कि वह कम्युनिस्टों के साथ मिलकर काम करने को बिलकुल तैयार है और इस दशा में उसने प्रारम्भिक कार्यवाही भी कर ली है। इस बात को बिलकुल पक्का करने के लिए कि मैंने उसके विचारों

को गलत रूप में नहीं समझा, मैंने कहा कि मेरा खयाल है कि कम्युनिस्टों द्वारा स्वयं निजाम को दी गई सीधी चुनौती रजाकारों के मार्ग में एक बाधा सिद्ध होगी। चुनौती से मेरा मतलब कम्युनिस्टों की वह चेतावनी है, जिसमें उन्होंने कहा है, "निजाम के साथ कोई वास्ता नहीं होगा।" मेरे इस कथन को सुनकर रिजवी एक क्षण के लिए चुप रहा, फिर बोला कि यह कठिनाई वह भी महसूस करता है। लेकिन बाद में जब मैंने फिर इस विषय की चर्चा की तो उसने स्पष्ट कह दिया कि यदि मुसलमानों को हताश होने से बचाने के लिए कम्युनिस्ट ही एकमात्र साथी सिद्ध हुए तो सरकार तथा राजवंश दोनों ही उसके लिए गौण वस्तुएं बन जायंगी। "यदि भारत हमें दो वर्ष तक चुपचाप स्वेच्छा से चलने दे तो मैं वचन देता हूं कि एक ऐसी चीज का निर्माण कर दूंगा जिससे सब ईर्ष्या करने लगेंगे। हिन्दू अभी से रजाकारों में शामिल हो रहे हैं।" मैंने पूछा कि क्या राजनैतिक समझौते के बिना दो वर्ष बाद फिर वैसा ही संकट उत्पन्न नहीं हो सकता ? इसका उसने समर्थन किया लेकिन साथ ही अपना यह विश्वास भी प्रकट किया कि भारतीय संघ दो वर्ष से अधिक नहीं टिकेगा।

उसने कहा कि समस्या के शांतिपूर्ण हल की उसे रत्ती भर भी उम्मीद नहीं। हिन्दुओं के प्रश्न पर चर्चा के समय उसकी बातों से स्पष्ट प्रकट हो गया कि उसका हृदय जातीय घृणा की भावना से सराबोर है। उसकी नजर में गांधीजी की मृत्यु उनके व्यवहार का प्रतीक है। उसने कहा कि हिन्दू सदा अपने देवताओं को महादेव बनाने के लिए उनको मार डालते हैं। मैंने उससे प्रश्न किया कि क्या उसे यह ध्यान नहीं है कि कम्युनिस्टों के वर्तमान संगठन में हिन्दुओं की ही प्रधानता है। रिजवी ने उत्तर दिया कि यह बात सही है, लेकिन वे दूसरे दलों की अपेक्षा कम साम्प्रदायिकतावादी हैं।

मैंने कहा कि आमतौर पर यह कहा जाता है कि रिज़वी ही राज्य में वास्तविक शक्तिसंपन्न व्यक्ति है, इसके बारे में उसकी क्या राय है ? इसपर रिज़वी ने उत्तर दिया, "आप मेरे बारे में इस प्रकार की निन्दात्मक बातों में विश्वास न करें कि मैं षड्यंत्रकारी और सरकारें गढ़ा करता हूं।

मैं तो एक अदना-सा शख्स हूं। मैं केवल मुसलमानों के हितों का रक्षक और उनका सेवक हूं और उनके हितों की रक्षा में कोई कसर मैं उठा न रखूंगा। सरकार कभी-कभी मेरे विचार जानने के लिए मुझे बुलाती है और मैं बिलकुल स्पष्ट रूप में उन्हें व्यक्त कर देता हूं।" उसने मुझ से कहा कि मुसलमानों को मौत से बचाने तथा मुसलमान स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा करने के लिए वह अपनी जान न्यौछावर करने को तैयार है। उसने कहा कि हैदराबाद के कांग्रेसी प्रतिनिधि मट्टी के माधो हैं। फिर पहली बार मुसकराते हुए वह बोला, "हिन्दुओं की देख-रेख का भार मुझ पर छोड़ दीजिए।"

रिजवी पूरी तरह धर्मांध है। वह ऐसी आंखों से घूरता है जो आपके चुभने लगती हैं। यदि उसके व्यक्तित्व पर बेहूदापन और छल-कपट की तह नहीं होती तो उसकी नजर उसके दोस्तों और दुश्मनों के दिल दहला देती है। यही कारण है कि जब वह जोर-ज़ोर से बकवास करता है तो उसकी कलई खुल जाती है और उसकी बातों को गम्भीर मानना कठिन हो जाता है। उसकी बकवास से यही लगता है कि उसकी नाटकीयता उसकी शक्ति से कहीं अधिक है। देखने में वह ठिगना और मोटा है। उसकी दाढ़ी की लम्बाई-चौड़ाई विशाल है और सिर पर तुर्की टोपी को वह ऐसे बांके ढंग से पहनता है कि धूर्तता टपकती है। तेज़ कदमों से बाहर जाते समय वह चार्ली चैपलिन और किसी छोटे पैगंबर का प्रतिरूप जान पड़ता था।

हैदराबाद,
सोमवार, १७ मई १९४८

आज रात को आठ बजे प्रधान मंत्री से मेरी आखिरी बातचीत हुई। मैंने लायकअली से कहा कि मैं यह निश्चित रूप से जानना चाहता हूं कि निजाम इसलिए तो दिल्ली जाने से नहीं डरते कि उन्हें अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा के प्रति कोई खतरा लगता है। लायकअली ने बताया कि हो सकता है कि ऐसी आशंका निजाम के मन में रही हो, लेकिन मुख्य और निर्णयात्मक

कारण यह था कि यदि वह दिल्ली जाते तो रियासत में इस बारे में बड़ी ग़लतफ़हमी फैल जाती। मैंने लायकअली को बताया कि ब्रिटेन के विरोधी दल के समर्थन पर यहां जो भरोसा किया जा रहा है उससे स्पष्ट ही मुझे चिन्ता है। मैंने कहा कि यह भारी भ्रम साबित होगा। ब्रिटिश लोकसभा में हैदराबाद अगर दलीय प्रश्न बन भी जायगा तो भी उससे रियासत की कोई भलाई नहीं होगी। लायकअली ने कहा कि वह मेरी इस बात से सहमत हैं। वह एटली के बड़े प्रशंसक हैं और नहीं चाहते कि हैदराबाद कहीं भी दलीय वाद-विवाद का विषय बने।

जब मैं ज़ईन यार जंग के पुत्र और खूबसूरत पुत्रवधु के साथ सुखद वातावरण में भोजन कर चुका तो जईन ने खुद, जो उसी दिन दोपहर को आ गए थे, मुझसे मिलने की इच्छा प्रकट की और मैं रात के ११ बजे उनके मकान पर गया। उन्होंने बताया कि वह निजाम से एकान्त में मिले थे। निजाम फिर बहुत गर्म हो रहे थे। ज़ईन ने कहा, "लेकिन, वह तो हमेशा ऐसे ही रहते हैं।" निजाम वैधानिक प्रभुसत्ता के प्रश्न पर टस-से-मस होने को तैयार नहीं हैं। किन्तु, ज़ईन ने उन्हें बताया कि एक ऐसी नई सरकार बनाना उनके लिए बहुत जरूरी है, जिसका आधार मौजूदा सरकार की अपेक्षा अधिक विस्तृत हो। उन्होंने मुझे ऐसा आभास दिया कि निजाम और लायकअली आखिर ऐसा करने के लिए राजी हो गए हैं। निजाम ने मेरे दौरे की चर्चा भी उठाई थी और यह कहा कि उन्होंने बिना किसी हिचक के जो-कुछ भी उनके मन में था, मुझसे कह दिया। निजाम को विश्वास है कि माउन्टबेटन के खुद आने की अब भी दस प्रतिशत सम्भावना है और जईन से पूछा कि उनका क्या खयाल है। जईन ने बताया कि यह बात कुछ हद तक इसपर निर्भर करती है कि मैं कैसी रिपोर्ट भेजता हूं। तब निजाम ने मेरे बारे में प्रश्न पूछने शुरू किये—मैं कौन हूं, मेरी नीति क्या है, आदि।

जईन का खयाल है कि अगर वैधानिक प्रभुसत्ता की मांग को मान लिया जाय तो समस्या का हल सम्भव है। उन्होंने तो इतना तक

कहा कि ऐसा होने पर फिर भारत-संघ में 'प्रवेश' शब्द का भी प्रयोग किया जा सकता है । निजाम ने ज़ईन से दो-एक दिन बाद कुछ और बातचीत करने के लिए कहा है और वह मंगल व बुध को, जब निजाम से बातें करेंगे तो इसे स्वीकार कराने की कोशिश करेंगे, बशर्तेकि वह केवल तीन विषयों तक सीमित रहे । जईन ने बताया कि वह अल इद्रूस से, जो कि रजाकारों को फौजी सहायता देते बताय जाते हैं, साफ बात करने की सोच रहे हैं । यह चीज दिल्ली में काफी बेचैनी का कारण बनी हुई है ।

हैदराबाद, नई दिल्ली,
मंगलवार, १८ मई १९४८

दिल्ली लौटते ही मैं सीधा वी. पी. मेनन से मिलने गया । अपने हैदराबाद के सिरदर्द के अलावा उनपर रियासतों के विलीनीकरण की नीति का भी पूरा-पूरा दायित्व है और वह काम के बोझ से बुरी तरह दबे हुए हैं । उनकी साफ राय है कि मेरी यात्रा उपयोगी रही है । लेकिन वह हैदराबाद विधान सभा की प्रभुसत्ता के प्रश्न पर चर्चा करने को तैयार नहीं थे । मेरा अनुमान है कि मेरी गैर-मौजूदगी में हैदराबाद की ओर उनका रुख कड़ा हो गया है । लेकिन मैंने उन्हें कल ज़ईन के लौटने तक इस विषय में कोई राय कायम न करने के लिए तो राजी कर ही लिया । वी. पी. ने आखिरी शर्तों की बात छेड़ी, लेकिन मैं शारीरिक और दिमागी थकावट की ऐसी सीमा पर पहुंच चुका था कि मेरे लिए उनकी बात समझना मुश्किल हो रहा था ।

: २६ :

विदाई के दिन

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
गुरुवार २० मई १९४८

कल सारी दुनिया से नाता तोड़ कर मैंने अपना सारा दिन रिपोर्ट पूरी करने की जीतोड़ कोशिश में लगाया। मैं चाहता हूं कि मेरे शिमला पहुंचने के एक दिन पूर्व ही यह रिपोर्ट माउन्टबेटन के हाथ में पहुंच जाय।

आज शाम मेरी नेहरू के साथ एक घंटे तक बातचीत हुई। मैंने अपने नतीजों के बारे में उनसे चर्चा की। उनका मत है कि शायद निजाम मुझे डराने के लिए जानबूझ कर नाराजी का अभिनय कर रहे थे। चूंकि वह किसी नये दल के साथ चर्चा करने से इन्कार कर रहे थे इसलिए उनका गोलगोल बातें करना समझा जा सकता है। वह इस बात में मुझसे सहमत हैं कि रजाकारों के असली जन्मदाता दीनयारजंग में रजाकारों के भंग किये जाने की प्रतिक्रियाओं का सामना करने का बूता है।

प्रधान मंत्री ने कहा कि हैदराबाद का इतिहास कभी गौरवपूर्ण नहीं रहा। उन्होंने हमेशा बल के आगे घुटने टेके हैं। मराठों के सामने उनका ढेर हो जाना इसका उदाहरण है।

नेहरू महसूस करते हैं कि निजाम अपनी दौलत और व्यक्तिगत अधिकारों के बारे में सचमुच चिंतित हो सकते हैं। इनके विषय में वह आश्वासन देने को तैयार हैं। उन्होंने कहा कि संघ-प्रवेश के द्वारा वह भारतीय-विधान हैदराबाद पर लादना नहीं चाहते। अतिरिक्त विषयों पर अलग से समझौता किया जा सकता है। और न वह हैदराबाद की सेना को ही हड़प कर जाना चाहते हैं।

निजाम के धार्मिक-विचारों की चर्चा करते हुए नेहरू ने कहा कि मेरे

साथ बातचीत के दौरान में उनका मोहर्रम की चर्चा करना महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह उस घटना की यादगार है जब मुसलमान जाति शिया और सुन्नी फिरकों में बंट गई थी। हैदराबादी मुसलमान सुन्नी हैं लेकिन निजाम के बारे में अनुमान किया जाता है कि वह छिपे तौर से शिया हैं।

मैंने कहा मुझे आशा है कि मेरे हैदराबाद के दौरे को जो प्रकाशन मिला उससे वह अधिक परेशान नहीं हुए होंगे और यह सफाई दी कि इसका मुख्य कारण मुंशी के कर्मचारी-मंडल का उत्साह था। मैंने अपनी तरफ से उसे नियंत्रण में रखने की पूरी कोशिश की थी। (मुझे पता चला था कि मंत्रि-मंडल के एक-दो सदस्यों ने इस बारे में कुछ आलोचना की थी, लेकिन नेहरू या पटेल ने कुछ नहीं कहा था और वे इस बारे में बिलकुल परेशान नहीं थे)। नेहरू ने आज फिर कहा कि उसकी कोई बात नहीं और मेरे दौरे के महत्त्व पर उसका कोई असर नहीं पड़ता।

नेहरू ने कहा कि निज़ाम का रुख उनकी समझ में नहीं आता क्योंकि वह नहीं समझते कि निजाम किसी प्रकार की वीरतापूर्ण भूमिका खेलने के लिए बने हैं।

कुछ देर तक यह अनिश्चित रहा कि ज़ईन और मेनन आपस में मिलेंगे या नहीं,लेकिन बाद में ज़ईन रात को ९ बजे मेनन के घर पहुंचे और मैं भी कुछ देर बाद उनमें शामिल हो गया। सीमावर्त्ती तनाव को देखते हुए मेनन का यह दृढ़ मत है कि वर्तमान अनिश्चितता को चलते नहीं रहने दिया जा सकता। एक-दो प्रस्तावित कार्यक्रमों पर विचार करने और उनके ठुकराए जाने के बाद बैठकों का एक पेचीदा सिलसिला तैयार किया गया, जिसके अनुसार मीर लायकअली २२ तारीख को दिल्ली बुलाये जायंगे, नेहरू और मेनन पटेल से मिलने के लिए मसूरी जायंगे और बातचीत के दौरान में फैसले का मौका आने पर, कोई दृढ़ निश्चय करने से पहले, माउन्टबेटन को भी आमंत्रित कर लिया जायगा।

बातचीत कुछ असम्बद्ध और अनावश्यक रूप से लम्बी होने पर भी स्पष्ट और सौहार्दपूर्ण थी। सीमावर्त्ती कांडों और सरदार के विचारों को

मद्देनज़र रखते हुए स्थिति की गम्भीरता महसूस की गई। किसी भी मुख्य विचाराधीन विषय पर ज़ईन ने निजाम के रुख का कोई संकेत नहीं मिलने दिया। लेकिन मेनन ने उन्हें आश्वासन दिया कि संघ-प्रवेश तीन विषयों तक ही सीमित रहेगा—अन्य विषय अलग चर्चा का विषय होंगे। जैसे : हैदराबाद की सेना का स्वरूप और निजाम के वैधानिक अधिकार। (अन्तिम मामला सबमें पेचीदा वैधानिक और राजनैतिक प्रश्न है, जिस पर हमें सावधानी से तैयारी करना होगी।) लायकअली की स्थिति और सरकार के पुनर्निर्माण के प्रश्न पर भी विचार किया गया। ज़ईन ने कहा कि लायकअली के लिए यह कठिन होगा कि खुद को छोड़कर शेष सारे मंत्रिमंडल को भंग कर दें और फिर उसकी रचना करें। लेकिन इस प्रश्न पर आगामी बैठक में खुल कर चर्चा की जायगी।

इस संभावना पर भी विचार किया गया कि ज़ईन स्वयं सरकार में शामिल हों। ज़ईन ने कहा कि वह खुद प्रधान मंत्री न होकर किसी दूसरे के मंत्रिमंडल में कार्य करना अधिक पसंद करेंगे। लेकिन वह सहयोग देने को तैयार हैं बशर्तेकि नियुक्ति सीधी निज़ाम की ओर से हो न कि भारत-सरकार के दबाव के फलस्वरूप।

ज़ईन यह महसूस करते हैं कि इन सब विषयों पर मेनन के प्रस्ताव पहले की अपेक्षा अब अधिक रुचिकर हैं। किन्तु जहां तक मैं जानता हूं भारत के दृष्टिकोण में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं हुआ। फिर भी मेनन ने ज़ईन के प्रति अपनी सराहना और समझौते की अपनी इच्छा को बड़ी भावुकता और हार्दिकता से व्यक्त किया है। इन दो व्यक्तियों के बीच मौजूद सद्-भावना उत्साह बढ़ाने वाली है। स्थिति का अधिकांश दारोमदार अब मसूरी में पटेल के साथ होने वाली मुलाकात पर और इस बात पर निर्भर करता है कि इस बैठक से मेनन को खुद फैसला करने की कितनी आज़ादी मिलती है। मेनन यह मुठभेड़ आसान नहीं समझते हैं।

वी. पी. और ज़ईन दोनों ने मेरी हैदराबाद-यात्रा को उपयोगी बतलाने की सहृदयता दिखाई।

सरकारी भवन, नई दिल्ली,
मंगलवार, २५ मई १९४८

शिमला में छत्तीस घंटे बिताने के बाद मैं रविवार को सवेरे वरनोन के साथ वहां से चल पड़ा। यात्रा करते-करते मैं ऊब गया हूं। पिछले सप्ताह मैंने जो दोड़धूप की वह रचनात्मक और सम्बद्ध चिंतन को सीधी चुनौती थी। माउन्टबेटन के अगाऊ दस्ते के रूप में हम दिल्ली के 'भाड़' में लौट आये हैं। पिछले चौबीस घंटे उन्होंने पटियाला में बिताये। उनके यहां पहुंचने पर हम उन्हें यह बताने की स्थिति में थे कि मीर लायकअली, जो रविवार को ही यहां आ गए थे, बड़ी गलत भावना लेकर आये थे। वह वास्तविकता से इतनी दूर थे कि संकट अब टल गया है। इसलिए आज माउन्टबेटन ने लायकअली से बहुत माथापच्ची की। मेरे खयाल में अपने मिशन के दौरान में माउन्टबेटन ने जो विभिन्न लोगों से मुलाकातें की हैं, यह उन सबसे लंबी थी और ५ घंटे तक चली।

इस मुलाकात, और मेरे हैदराबाद दौरे, की पृष्ठभूमि यह थी कि सीमावर्त्ती मुठभेड़ों पर काबू पाने के लिए हैदराबाद की सीमा के पास भारतीय सेनाओं का काफी बड़ी संख्या में जमाव हो गया है। अंतिम और सबसे गंभीर घटना गंगापुर रेलगाड़ी की थी, जिसमें दो गैर-मुसलमान लापता और घायलों की संख्या भी काफी थी। इस घटना से भारतीय जनमत बहुत उत्तेजित हो उठा था। मेरे हैदराबाद जाने से दो दिन पहले सुरक्षा-समिति की एक बैठक में यह निश्चय किया गया था कि फौजी तैयारियां अवश्य चलती रहनी चाहिएं। लेकिन आक्रमण करने के लिए सेना को दस दिन का नोटिस दिया जाना जरूरी होगा। नेहरू से माउन्टबेटन को जो आश्वासन प्राप्त हुए थे उनसे उन्हें तसल्ली हो गई कि बहुत बड़ा संकट पैदा हुए बिना, जैसे हिन्दुओं का कत्लेआम, आक्रमण नहीं किया जायगा। वह अब निश्चिंत हो गए हैं कि उनके भारत छोड़ने से पहले या शायद उससे भी बाद तक, वर्षा के आरम्भ से पूर्व ऐसा कोई कदम नहीं उठाया जायगा।

इस तरह शांतिपूर्वक समझौता कराने के लिए बहुत थोड़ा ही समय

शेष रह गया था। अतः बहुत सख्त कदम उठा कर लायकअली की आंखें खोलनी थीं कि खतरा कितना निकट है और उन्हें समझा देना था कि अब चालबाज़ी से काम लेना उनके और उनके राज्य के लिए भारी खतरा सिद्ध होगा। मैंने माउन्टबेटन को शिमले में बता दिया था कि मुझे तो मीर लायक-अली का रुख 'बुद्धिमान मूर्ख' के समान लगता है—सारे गलत काम करने के लिए वह सारे सही तर्क जुटा सकते हैं।

माउन्टबेटन ने बातचीत के आरम्भ में ही बिना किसी लाग-लपेट के लायकअली के सामने उन सम्भावित घटनाओं का चित्र रखा जो कोई समझौता न होने पर, और हैदराबाद में हिन्दुओं की खून-खराबी होने पर होंगी। यदि उनके भारत से चले जाने के कुछ सप्ताह बाद भारत सैनिक हस्तक्षेप का निश्चय करे तो हैदराबाद की फौज क्या कर लेगी? लायकअली ने कहा कि वह फौजी स्थिति को पूरी तरह समझते हैं, लेकिन वह संघ-प्रवेश को सर्व-प्रभुसत्ता की अपेक्षा दसगुना बदतर मानते हैं। उन्होंने सफाई दी कि व्यक्तिगत रूप से वह तो जनतंत्री व्यवस्था के पक्ष में हैं, लेकिन हैदराबाद में उत्तरदायी सरकार की स्थापना का विरोध वह केवल इसलिए करते हैं कि बिना किसी शक के वह संघ-प्रवेश का कारण बनेगा। जब वी. पी. कमरे में दाखिल हुए तो तीनों केन्द्रीय विषयों के बारे में लायकअली ने पांच या दस वर्ष के लिए एक दीर्घकालीन समझौते का सुझाव सामने रखा।

सरकारी भवन, नई दिल्ली
बुधवार, २६ मई १९४८

मेनन और लायकअली के बीच एकान्त वार्त्ता बहुत रात गये तक चलती रही। मेनन ने मसौदे तैयार करने और हल खोज निकालने की अपनी विलक्षण शक्ति का उपयोग करके "समझौते के मुख्य मुद्दों" की एक विस्तृत सूची तैयार कर ली थी। उसको दो भागों में विभाजित किया गया था। मुख्य मुद्दे कुल ११ हैं। पहले भाग में हैदराबाद और भारत के

बुनियादी संबंधों की व्याख्या थी और दूसरे भाग में प्रथम भाग को कार्यान्वित करने के लिए अन्तरिम व्यवस्था का उल्लेख। 'मुख्य मुद्दों की सूची' से लायकअली के इस अनुरोध की रक्षा हो गई थी कि संघ-प्रवेश के अलावा तीसरा विकल्प और जनमत-संग्रह का सुझाव भी वह निज़ाम के सामने पेश करना चाहते हैं। इस तीसरे विकल्प का सवाल वैसे अब कोई मतलब नहीं रखता।

माउन्टबेटन की खुद यह दृढ़ राय थी कि जनमत संग्रह सबसे अच्छा हल रहेगा क्योंकि "समझौते के मुख्य मुद्दों" की सूची से विस्तार के बारे में लम्बी और थकाने वाली सौदेबाज़ी का एक और दरवाजा खुल जायगा। लायकअली की व्यक्तिगत राय भी ऐसी ही मालूम देती थी क्योंकि उन्होंने यह विचार व्यक्त किया कि जनमत-संग्रह से "दोनों पक्षों की बात रह जायगी।" भारतीय क्षेत्रों में जनमत-संग्रह का समर्थन किया जा रहा था, विशेषत: पटेल की ओर से, जिनका आशीर्वाद अनिवार्य था। साथ ही यह मान लिया गया था कि उससे अपने-आप संघ-प्रवेश नहीं हो जायगा।

सरकारी भवन, नई दिल्ली
शनिवार, २९ मई १९४८

हैदराबाद की परेशान करने वाली चर्चाओं का यह सबमें नाजुक दौर है। वी. पी. मसूरी जाकर पटेल से मिल आये थे और उनका रचनात्मक और कड़े शब्दों वाला सन्देश साथ लाये थे। पटेल ने फिर जनमत-संग्रह का सुझाव दोहराया था। जहां तक 'समझौते के मुख्य मुद्दों' का प्रश्न था, उन्होंने पहले भाग में वर्णित बुनियादी सम्बन्ध तो बिना किसी फेरबदल के स्वीकार कर लिये थे। किन्तु वह दूसरे भाग में दी गई अन्तरिम-व्यवस्था को इस प्रकार मजबूत करना चाहते थे जिसमें नियंत्रण का ज्यादा भार गैर-मुसलमानों के हाथ में रहे। पटेल के सन्देश का अन्तिम भाग स्वयं उन्हीं के हाथ का लिखा हुआ था और उसमें उन्होंने कहा था कि अगर लायकअली काम की बात

करना चाहते हैं तो उन्हें निजाम से पूरे अधिकार लेकर यहां आना चाहिए। उन्होंने लिखा था, "ऐसे व्यक्ति से चर्चा करने से क्या फायदा जिसे हर बार आदेश प्राप्त करने के लिए वापिस लौटना पड़ता है।"

वह चाहते हैं कि चौबीस घंटे की मोहलत देते हुए एक तार भेजा जाय। इसमें लिखा जाय कि यदि लायकअली इस अवधि के भीतर पूरे अधिकार और बुनियादी चीजों पर सहमति सहित यहां नहीं आ सकते तो भारत सरकार यह निष्कर्ष निकालेगी कि हैदराबाद-चर्चाएं जारी रखने के लिए उत्सुक नहीं है—केवल समय गंवाना चाहता है। उनके आखिरी शब्द थे : "एक सप्ताह के अन्दर फैसला करो।" नेहरू ने लायकअली के प्रति गहरा अविश्वास प्रगट किया था। उनकी हलचलों के बारे में प्राप्त खुफिया जानकारी से पता चलता था कि हमारा सामना बहुत ही चालबाज व्यक्ति से है। लेकिन उनके या निजाम के उत्तर को अब ज्यादा रोका नहीं जा सकता।

आशा की बात केवल यह थी कि मांकटन ने फिर भारत आने का फैसला किया था। माउन्टबेटन ने इस समाचार के प्रति अपनी हार्दिक खुशी जाहिर करते हुए कहा कि उनके आने तक वह स्थिति को संभाले रखने की कोशिश करेंगे।

लेकिन मांकटन ३ जून के पहले भारत आने वाले नहीं थे। और इसी दिन मैं अपने परिवार के साथ समुद्री रास्ते से घर जाने के लिए बम्बई से प्रस्थान करूंगा।

आज शाम सरकारी भवन में के और मुझे विदाई देने के लिए एक दावत दी गई। वैसे हम जा तो मंगलवार को सवेरे रहे हैं, लेकिन माउन्टबेटन-दम्पति को फिर समय नहीं मिलेगा, और दावत में शरीक होने के लिए वह उत्सुक हैं। दावत में बिलकुल पारिवारिक वातावरण था। मुझे दुख है कि आखिरी पटाक्षेप होने के पहले ही मैं भारत छोड़ रहा था।

बाद में माउन्टबेटन ने मुझे एक चांदी का सिगरेट-केस भेंट किया जिसपर उन्होंने बड़ी उदारता से अपना सन्देश भी खुदवा दिया था। विश्वास, प्रशंसा और दोस्ती के इन प्रतीकों ने मुझे विभोर कर दिया।

लेकिन सबमें बड़ा पुरस्कार मैं अपने इस सौभाग्य को मानता हूं कि एक महान मिशन पर मुझे एक महान व्यक्ति की सेवा करने का अवसर मिला।

सरकारी भवन, नई दिल्ली
रविवार, ३० मई १९४८

आज शाम हम एक विशाल स्वागत समारोह में शामिल हुए, जिसका आयोजन मेनन ने दिल्ली जीमखाना क्लब में किया था। दिल्ली का करीब-करीब हर खास व्यक्ति वहां दिखाई दे रहा था। माउन्टबेटन-दम्पति को आगामी तीन सप्ताहों में जो अनेक विदाई-भोज दिये जायंगे, उनमें यह सब से पहला है। इस भीड़भाड़ में एक संदेशवाहक निजाम के तीन पत्र लाया, जिनको पढ़ने में मेजबान, प्रमुख अतिथि और प्रधान मंत्री तीनों रम गए। भारतीय और विदेशी समाचारपत्रों के अधिकांश प्रतिनिधि वहां उपस्थित थे। ज्योंही माउन्टबेटन, नेहरू और मेनन एक कोने में जाकर खड़े हुए और चिन्तापूर्ण धीमे स्वरों में बातचीत करने लगे तो दूर से ताड़ने वाले इन प्रेसवालों को यह समझते देर नहीं लगी कि कोई महत्व-पूर्ण और प्रतिकूल समाचार आया है।

सरसरी नजर से देखने पर लगता था कि माउन्टबेटन के तत्वावधान में समझौते की आशाओं पर पानी फिर गया है। पहले पत्र में "समझौते के मुख्य मुद्दों" पर निजाम की बस यह प्रतिक्रिया है कि वह मांकटन के आगमन की प्रतीक्षा के अलावा और कुछ नहीं कर सकते। दूसरे पत्र में इस समझदारी भरे सुझाव पर निजाम ने "दो टूक नहीं" लिख दी थी कि वह एक नये और अधिक स्वागतनीय प्रधान मंत्री की नियुक्ति पर विचार करें। ध्यान में देने की बात थी कि खुद लायकअली ने कहा था कि यदि इस सुझाव से सद्भावना बढ़ाने में मदद मिलती हो तो वह खुद यह सुझाव रखने को तैयार हैं। उनके सुझाव में कितनी ईमानदारी थी, वह ही जानें। तीसरा पत्र फिर से एक निमंत्रण मात्र है, माउन्टबेटन को हैदराबाद बुलाने के लिए।

यह निमंत्रण भी सौहार्द अथवा शिष्टाचार से शून्य था।

माउन्टबेटन ने निश्चय किया—जो मेरे विचार में बुद्धिमानीपूर्ण था—कि केवल पहले पत्र का उत्तर दिया जाय जिसमें और अधिक विलम्ब पर खेद प्रकट करते हुए यह आशा प्रकट की जाय कि लायकअली जब अगली बार दिल्ली आवें तो उन्हें समझौता करने के पूर्ण अधिकार प्राप्त होंगे।

निजाम के इन शोचनीय नकारात्मक पत्रों के अतिरिक्त लायकअली ने मामले को और तूल दे दिया था। उनकी माउन्टबेटन, नेहरू तथा मेनन से २६ तारीख को जो बातें हुई थीं, उनकी वरनोन द्वारा तैयार की गई रिपोर्टों के ठीक होने से उन्होंने इंकार कर दिया था और कहा था कि वह कभी इस बात पर राजी नहीं हुए कि तीन केन्द्रीय विषयों पर भारत वैधानिक अधिकारों के अतिक्रमण की घोषणा कर सकेगा। लेकिन जो भी लोग उस समय कमरे में उपस्थित थे, उनको पूरा विश्वास है कि लायकअली इस बात पर राजी हो गए थे। यह पत्र नेहरू की इस चेतावनी की पुष्टि करता था कि लायकअली भरोसे के लायक व्यक्ति नहीं है और उनका एक मात्र उद्देश्य टालमटोल करना था। मांकटन का हस्तक्षेप प्रतिपल भारी महत्व ग्रहण करता जा रहा था।

मौजूदा तनाव के बावजूद जईन यार जंग हैदराबाद भवन में पार्टियां देकर शांति और विश्वास का वातावरण उत्पन्न कर रहे थे। जाने से पहले हमारा प्रायः अन्तिम कार्यक्रम उनके तथा उनके परिवार और संगी-साथियों के साथ भोजन करना था। भोजन के बाद जब हम बागीचे में बैठे थे तो हैदराबादी महिलाओं में से एक ने शाइस्ता गुफ्तगू करते हुए 'यथास्थिति समझौतों,' संघ-प्रवेश के निर्देश-पत्रों तथा प्रभु सत्ता—जैसे तुच्छ मामलों को ठिकाने लगा दिया। इन महिलाओं ने आह भर कर कहा, "दिल्ली अब पहले वाली दिल्ली नहीं रही। अब मुगल बादशाह नहीं रहे।"

एम. वी. केलडोनियो
गुरुवार, ३ जून १९४८

जब मैं यह लिख रहा हूं, मैं भारत से इंगलैंड जाने वाले 'एम. वी. केलडोनियो' नामक जहाज के राजसी कमरे में बैठा हूँ। हम सब पांच हैं– फे, मैं और मेरी पत्नी तथा दो छोटे बच्चे। मंगलवार सुबह हम बंबई के लिए रवाना हुए थे, जो ८०० मील और २६ घंटे की यात्रा है।

आज सवेरे मैंने मांकटन से सांता क्रुज के हवाई अड्डे पर मुलाकात की। वह एक खास हवाई जहाज से यहां पहुँचे हैं।

जहाज पर सवार होने से पहले मैंने आखिरी सरकारी कर्तव्य के नाते माउंटबेटन को तार द्वारा सूचित किया। जब मैं मांकटन से मिला तो वह स्पष्टतया संदिग्ध और निराश थे, और वह इस बात से बेखबर थे कि घटनाओं को अनुकूलतापूर्वक बहा ले जाने में उनकी सलाह क्या महत्त्व रखती है। मैंने राजनैतिक तनाव की वास्तविकता और समय-तत्त्व की अनिवार्यता पर बल दिया है और मैं कह सकता हूँ कि मांकटन मेरी मुलाकात के बाद अधिक आशावान नज़र आते थे।

आज दोपहर बाद जब जहाज समुद्र-तट से रवाना हुआ तो मुझे लग रहा है कि मैं दबा-दबा जा रहा हूँ। निश्चय ही अत्यधिक व्यस्तता के बाद यह एकाएक बेकाम हो जाना ही इसका कारण था। ज्योंही हमने अरब सागर में प्रवेश किया, बंबई की दूरस्थ बत्तियाँ टिमटिमाती नज़र आ रही थीं; सब ओर अनंत शान्ति थी। लेकिन हमें चेतावनी दी गई कि भारी तूफान का सामना होने वाला है।

लन्दन,
बुधवार, २३ जून १९४८

बीस दिन की समुद्री यात्रा के बाद हम कल लिवरपूल पहुंचे। बम्बई से डेढ़ सौ मील चलने पर हमारी तूफान से टक्कर हुई, जिसने अदन तक

हमारा पीछा नहीं छोड़ा। माउन्टबेटन और उनके दल के नार्थोल्ट हवाई अड्डे पर उतरने के समय मैं वहां पहुंच गया । इतनी ही यात्रा में उन्हें हवाई जहाज से केवल अड़तालीस घंटे लगे थे।

उनके स्वागत के लिए हवाई अड्डे पर एडिनबरा के ड्यूक और एटली दोनों मौजूद थे। इससे उनके आगमन का महत्व असाधारण बन गया। इसके पहले शायद ही किसी और वाइसराय अथवा गवर्नर-जनरल ने अपने स्वागत के लिए एक शाही ड्यूक और प्रधान मंत्री को उनकी वापिसी पर स्वागत के लिए खड़े पाया होगा। अन्य मंत्री लोग, ऊंचे और वरिष्ठ अधिकारी, बी. बी. सी. न्यूज रील और समाचार पत्रों के प्रतिनिधि तथा फोटोग्राफर भी बड़ी संख्या में वहां उपस्थित थे। भारत के नये युद्धपोत "दिल्ली" के सौ नाविकों ने उन्हें सलामी दी।

एटली की उपस्थिति बिलकुल मौजूं थी, क्योंकि भारत में सत्ता-हस्तांतरण प्रधान मंत्रीपद का सबसे ऐतिहासिक निर्णय था। उसके स्वरूप और अमल का भारी उत्तरदायित्व हमेशा उन्हीं के कन्धों पर रहा, इसलिए इतिहास मार्ले और मिन्टो, मांटेग्यू और चेम्सफोर्ड की भांति एटली और माउन्टबेटन के नाम भी साथ लिया करेगा ।

लंदन,
सोमवार, २८ जून १९४८

हैदराबाद वार्त्तालाप भंग हो गया है। इसका केवल संक्षिप्त समाचार जहाज के रेडियो पर सुना था। इसके साथ ही माउन्टबेटन के विदाई संबंधी समाचार भी सुने थे । माउन्टबेटन के विदा होने के समय पर १५ अगस्त के समान ही हार्दिक-उत्साह प्रगट किया गया था। कई दृष्टियों से तो यह हार्दिक-विदाई उससे कहीं अधिक उल्लेखनीय थी, क्योंकि अब तो माउन्टबेटन के प्रति यह व्यक्तिगत कृतज्ञता की भावनाओं की मात्र अभिव्यक्ति थी।

जब से माउन्टबेटन-दल लौटा है, मैंने रोनी और वरनोन के साथ लंबी चर्चाएं की हैं और इसी बीच एक या दो बार स्वत: माउंटबेटन से भी बातचीत हुई है। इसके अतिरिक्त अपनी विदाई के समय तक उन्होंने अनेक सूचनाएं एकत्र की थीं। इन सब आधारों से पता चलता है कि मांकटन के साथ मेरी मुलाकात के बाद का घटनाक्रम संक्षेप में इस प्रकार रहा :

मांकटन हैदराबाद में तीन दिन रुके और लायकअली के साथ दिल्ली आ गए। पहले तो वार्तालाप में बहुत गरमा-गरमी रही और कई बार लगा कि बातचीत का सिलसिला हमेशा के लिए टूट जायगा। नेहरू ने लायकअली से मिलने से इंकार कर दिया और मांकटन ने लंदन लौट जाने की धमकी दी। एक बार तो माउंटबेटन ने नेहरू को फोन पर यह कर उस दिन का संकट टाल दिया कि उन्हें पक्का विश्वास है कि वह संतोषजनक हल खोज लेंगे, जबकि तथ्य यह था कि उनके सामने ऐसा कोई हल था ही नहीं। लेकिन ज्यों-त्यों बातचीत को जारी रखा गया। नेहरू ने ८ जून को एक भाषण दिया, जो सहायक सिद्ध हुआ। अपने भाषण में उन्होंने अपने आलोचकों को इस बात का उत्तर दिया कि भारतीय फौजों ने अबतक हैदराबाद में क्यों प्रवेश नहीं किया। उन्होंने कहा कि जब भी कभी बल का प्रयोग हुआ है, उससे निराकरण के बजाय अधिक समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं।

मांकटन का ख्याल था कि परिस्थिति पर काबू पाने के लिए दीर्घ-कालीन जन-मत-संग्रह से कुछ बढ़कर होना चाहिए। अपनी रुग्ण-शैया से पटेल अब भी बिना शर्त संघ-प्रवेश चाहते थे। उनका कहना था कि भारतीय पक्ष की ओर से अब और हल पेश नहीं किये जाने चाहिए। मांकटन को यह मान्य था और उसने दो दस्तावेज उपस्थित किये—१९४९ के आरंभ में उत्तरदायी सरकार जारी करने तथा विधान-सभा स्थापित करने का फरमान, और वर्तमान सरकार का तात्कालिक पुनर्निर्माण। दूसरा दस्तावेज पूरी तरह से वी. पी. मेनन के समझौते की शर्तों का प्रथम भाग था। लायकअली ने यह कह कर एक बार फिर चाल चली कि वह निजाम के

साथ सलाह करने जाना चाहते हैं। ९ जून को दिल्ली में यह अफवाह उड़ी कि हैदराबाद में पाकिस्तान का एक प्रतिनिधि आया हुआ है, लेकिन लायकअली ने कसम खा कर इससे इंकार किया और तय पाया कि वह सलाह-मशविरे के लिए हैदराबाद जायं।

१२ जून को मांकटन ने सूचना दी कि वैधानिक अतिक्रमण और विधान-सभा के निर्माण-संबंधी दो मामलों के सिवा सब तजवीजों पर प्रबन्ध-परिषद की मार्फत निजाम से नजर डलवा ली गई है। इससे पहले तो दिल्ली में माउंटबेटन, मांकटन और नेहरू के बीच मसूरी में बातचीत में अधिक कठिनाई पैदा हुई और उसके बाद मसूरी में पटेल के साथ एक मुलाकात में और माउंटबेटन की मौजूदगी में मंत्रि-मंडल की अधिकांश बैठकों में भी इसका सामना करना पड़ा। लेकिन इन तजवीजों को निजाम द्वारा संशोधित रूप से इस शर्त के साथ स्वीकार कर लिया गया कि असेंबली के निर्माण में साम्यता का कोई सीधा उल्लेख न हो, और उसकी जगह हैदराबाद में "मुख्य राजनैतिक दलों के नेताओं से परामर्श के साथ" इन शब्दों को रखा जाय।

१३ जून को मांकटन ने लायकअली से बहुत जोर दे कर कहा कि इस बार वह पूर्ण निर्णायक अधिकारों के साथ आवें, लेकिन अपनी निर्णायक इच्छा का उपयोग करने में इस बार भी वह परिषद और स्वत: निजाम द्वारा बंधे थे। १४ जून को लायकअली ने "समझौता-शीर्षकों" में चार नये संशोधन करने के लिए कहा। वे ये थे : पहला, भारत सरकार हैदराबाद से प्रार्थना करेगी कि वह भारत में प्रचलित व्यवस्था के अनुरूप ही एक कानून स्वीकार करे और वह खास तौर पर हैदराबाद के लिए न हो; दूसरा, हैदराबाद को आठ हजार अनियमित सैनिक रखने की मंजूरी दी जाय; तीसरा, रजाकारों का धीरे-धीरे अंत किया जायगा, एकाएक नहीं; चौथा, जिस संकट-अवस्था के अधीन भारत हैदराबाद में सेनाएं रखना चाहता है, उसकी गवर्मेंट आव् इंडिया एक्ट में व्याख्या की जाय। माउंटबेटन का ख्याल था कि भारत सरकार इन अतिरिक्त मामलों पर विचार नहीं करेगी, लेकिन

जब नेहरू उन्हें भी मानने को तैयार हो गए तो उन्हें बेहद खुशी और आश्चर्य हुआ ।

१५ जून को माउंटबेटन ने हैदराबाद प्रतिनिधि मंडल से मुलाकात की और इस अप्रत्याशित सफलता की सूचना दी। इस पर लायकअली ने तत्काल दो और नये मामले उपस्थित कर दिये। वह चाहते थे कि आर्थिक और तट-कर संबंधी स्वतंत्रता के ऐलानों को भी शामिल कर लिया जाय। भारत सरकार एक बार पुनः सहानुभूति-पूर्वक विचार करने को सहमत हो गई और उसने तजवीज भी की कि एक नत्थी-पत्र में इस विषय पर बल दिया जा सकता है। माउंटबेटन ने कहा कि इस मामले पर नेहरू इस हदतक बढ़ गए कि वह नत्थी-पत्र में हैदराबाद के आर्थिक विकास में संयुक्त-सहकारिता की शर्त को भी शामिल कर देंगे। साफ जाहिर था कि लायकअली उनके इस आशय को नहीं समझे और उन्होंने इस शर्त को निकाल देने के लिए कहा। लेकिन जब मांकटन ने यह कहते हुए इसका विरोध किया कि हैदराबाद के लिए इस रियायत को दरगुजर करना अत्यधिक मूर्खता होगी, और माउंटबेटन ने भी स्पष्ट किया कि अबतक हमेशा ही इसके साथ पूर्ण संघ-प्रवेश की शर्त रही है तो लायकअली ने अपनी मांग को वापिस ले लिया। इस प्रकार सद्भावना की यह एक और मिसाल पेश की गई। लेकिन, जैसा कि माउंटबेटन ने कहा है, इस समय पर लायकअली की यह मूर्खता क्रोध उत्पन्न करने वाली घटना थी।

लायकअली आखिरी दस्तावेज और सब संशोधनों को लेकर हैदराबाद रवाना हो गए। मांकटन ने जोर देकर उनसे कहा कि या तो पूरी तरह मंजूर करो अथवा पूरी तरह इंकार। उसी शाम को ७-३० बजे तक उत्तर की प्रतीक्षा की गई, लेकिन, आखिर ९-४० पर यह जवाब मिला कि निजाम अपनी मंत्रि-परिषद् की सलाह के बिना कोई अंतिम निर्णय करने में असमर्थ हैं। व्यावहारिक रूप में यह आगामी दिन तक संभव नहीं था। फलतः इस विलंब को दिल्ली ने मंजूर कर लिया।

सोलह को दोपहर के समय माउंटबेटन और मांकटन को सूचना

मिली कि चार नये प्रश्नों के आधार पर निजाम को सिफारिश की गई ह कि वह इन तजवीजों को स्वीकार न करें। इन आधारों को माउंटबेटन और यहां तक कि मांकटन ने भी अत्यधिक अन्यायपूर्ण और बेहूदा बताया। उपरांत निश्चय हुआ कि मांकटन रात ही को हैदराबाद जायं।

उनका सब से बड़ा एतराज विधान-सभा स्थापित करने सम्बन्धी फरमान के एक उप-पैरे में से "इस आधार पर, जिस पर मैं बाद में विचार करूंगा" शब्दों को निकाल देने के बारे में था। लेकिन उनका प्रतिनिधि-मंडल इन शब्दों को निकालने की मंजूरी पहले ही दे चुका था, इसलिए इस मामले को इतना महत्वपूर्ण नहीं माना जा सकता था। एक दूसरा एतराज यह था कि वह नत्थी-पत्र के निर्णय द्वारा आर्थिक समझौते को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं (और भारत ने तो बिल्कुल आखिरी वक्त पर ही यह रियायत पेश की थी)। अब वह इसे मूल-समझौतों में शामिल कराना चाहते थे।

सत्रह को दोपहर के वक्त मांकटन ने फोन से "बस अंत" यही शब्द कहे। उसी शाम को निजाम ने बिल्कुल एक नया प्रश्न खड़ा कर दिया और इससे पहले इसका उल्लेख कभी नहीं किया गया था। यह प्रश्न संकट-काल में फौजें तैनात करने के भारतीय अधिकार के बारे में था। उन्होंने बातचीत को जारी रखने के लिए भी कहा। इधर नेहरू और वी.पी. मेनन मांकटन के इंतजार में थे। उनके आ जाने पर एक प्रेस-कांफ्रेंस की गई, जिसमें निजाम को दी हुई शर्तें प्रकट कर दी गईं।

इतना सब होने पर भी नेहरू ने वचन दिया कि वह स्वीकृति के लिए इस समझौते को खुला छोड़ते हैं और समय की पाबंदी नहीं लगाते। मांकटन ने माउंटबेटन को बताया कि लायकअली के इस व्यवहार से तो उन्हें बहुत ही निराशा हुई है कि निजाम तक से मुलाकात करने के पहले उसने रिजवी के साथ तीन घंटे बातचीत की। मांकटन ने हैदराबाद की कथित नाकेबंदी के विषय में भी एक अनौपचारिक प्रेस-कांफ्रेंस में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि केन्द्रीय सरकार और किसी भी प्रांतीय

शासन ने इसे लागू नहीं किया, बल्कि छोटे दर्जे के अफसरों की व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं का ही यह परिणाम है ।

माउंटबेटन ने सरकारी तौर पर अब वार्तालाप से हाथ खींच लिया, लेकिन "लुढ़कती गेंद" के समान उन्होंने एक अनुरोधात्मक तार देकर आखिरी कोशिश की । इस तार में मांकटन की तरफ से भी एक संदेश था । दोनों ने निजाम से कहा कि वह अपने विचारों को स्पष्ट करने का साहस करें और इत्तिहाद-दल के आदेश पर अपनी रियासत के हितों की कुर्बानी न करें । इत्तिहाद-दल के उग्रवादियों ने यह स्पष्ट कर दिया था कि वह ऐसी कोई भी रियायतें मानने को तैयार नहीं, जिनसे रियासत पर उनके नियंत्रण पर पाबंदी लगती हो, और जब यह संकट सामने आ गया तो निजाम में इस दल का सामना करने की शक्ति नहीं थी ।

माउंटबेटन का खयाल है कि असफलता का सबसे बड़ा कारण यह है कि वार्तालाप के इन संपूर्ण ग्यारह महीनों में दोनों पक्षों के मुख्य नायक कभी परस्पर नहीं मिले और अब भी उन्हें विश्वास है कि यदि निजाम दिल्ली आ जाते और वह मध्यस्थता कर सकते तो समझौता हो जाता । इसी तरह, अगर हैदराबाद के प्रतिनिधि-मंडल को वार्तालाप के अधिकाधिक अधिकार प्राप्त होते और उसमें मांकटन के बातचीत-सम्बन्धी महान चातुर्य को समझने की योग्यता होती तो परिणाम अनुकूल हो सकता था ।

अपने पद-काल के आखिरी दो सप्ताहों में हैदराबाद की लंबी बातचीत और उसके दबाव के कारण माउंटबेटन के लिए यह असंभव हो गया कि वह काश्मीर-विषयक मध्यस्थता का कोई अंतिम यत्न कर सकें । मार्च में उन्होंने दोनों प्रधान-मंत्रियों का समझौता कराया था कि वे लगभग प्रतिमास मिला करेंगे । लेकिन दो मास से ऐसा कोई यत्न नहीं हुआ । माउंटबेटन ने नेहरू को सुझाव दिया कि वह लियाकत को दिल्ली में मिलने के लिए लिखें, जिससे लियाकत माउंटबेटन को भारत छोड़ने से पूर्व बिदाई-नमस्कार कर सकें । लेकिन इस कोशिश को पहले तो हैदरा-

बाद के कारण स्थगित करना पड़ा और उसके बाद लियाकत की बीमारी के कारण ।

विभिन्न हलों पर विस्तार से बातचीत करने की सारी पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी । यद्यपि भारतीय मंत्रि-मंडल नियमित पाकिस्तानी सेना के काश्मीर-युद्ध में भाग लेने के प्रति अत्यंत कठोर था, तथापि समझौते के लिए काफी गुंजाइश थी । जब नेहरू ने पाकिस्तानी सेना के युद्ध में भाग लेने के प्रमाण भेजे, तो लियाकत ने साफ तौर पर इसका प्रतिपादन नहीं किया, लेकिन पाकिस्तान की सुरक्षा के भय पर ही जोर दिया । उन्होंने लिखा, "ज्यों-ज्यों भारतीय फौजें उत्तर-पश्चिमी सीमान्त पर पहुंचती जाती हैं, कबाइलियों को सीधा खतरा महसूस होने लगा है ।" माउंटबेटन की राय है कि दोनों मुख्य व्यक्तियों का इस खास मौके पर परस्पर न मिल सकना राजनैतिक और मनोवैज्ञानिक रूप में अत्यन्त अभाग्यपूर्ण था ।

लेकिन भारतीय जनता के हृदय पर माउंटबेटन ने जो निश्चित विजय प्राप्त की थी, उसके मुकाबिले निजाम और काश्मीर की असफलताएं तो आकस्मिक-सी जान पड़ती थीं । भारत में माउंटबेटन का आखिरी दिन, जैसाकि मुझे सबकी जबानी मालूम हुआ है, कल्पनातीत विजय का था । अत्यधिक बल के साथ माउंटबेटन दल यह मान गया था कि भारत के लोगों और सरकार ने उनके मिशन के आशय और उनके यत्नों की सचाई को स्वीकार कर लिया है और वे उन्हें मित्रों तथा आजाद करने वालों के रूप में विदाई दे रहे हैं ।

पहला विदाई-अभिनंदन-पत्र दिल्ली म्युनिसिपैलिटी की ओर से दिया गया था । यह मान-पत्र पाने के लिए वह पुरानी दिल्ली के शाही मार्ग चांदनीचौक से होकर निकले थे । चांदनी चौक में ठसाठस भीड़ थी । १९११ में जब लार्ड हार्डिंज की हत्या की चेष्टा की गई थी, तब से लेकर कोई भी वाइसराय इस मार्ग से नहीं निकला था । गांधी-ग्राउंड तक उनके चारों ओर भीड़ का समुद्र था, जो जय-जय के नारे लगा रही थी और उन्हें

फूल मालाएं पहना रही थी। गांधीग्राउंड में लगभग ढाई लाख आदमी जमा थे और ढाई लाख की और भीड़ उसमें दाखिल होने की चेष्टा कर रही थी।

महान शाही भोजों[1] में सबसे अखिरी इस बार मंत्रि-मंडल की ओर से शाम को दिया गया था। इस अवसर पर नेहरू ने चिरस्मरणीय शब्दों में माउंटबेटन-परिवार को हार्दिक श्रद्धांजलि भेंट की। उन्होंने कहा, "श्रीमान्, बहुत ऊंची ख्याति के साथ आप यहां आये थे, लेकिन भारत में कइयों की ख्याति का लोप हो गया। आप यहां महान कठिनाई और संकट के काल में रहे और इतने पर भी आपकी ख्याति का लोप नहीं हुआ। यह एक आश्चर्यजनक शक्ति का परिचायक है।"

लेडी माउंटबेटन के विषय में आगे उन्होंने कहा, "आपके हाथ में जादू है। जहां कहीं भी आप गईं, आपने सान्त्वना प्रदान की, आपने आशा और उत्साह उत्पन्न किया। इसलिए, इसमें क्या आश्चर्य है कि भारत के लोग आप से प्रेम करें और आपको भी अपने में से ही एक समझें तथा आप के जाने पर उन्हें दुख का अनुभव हो।"

चार घंटे पूर्व दिल्ली की सामान्य जनता द्वारा मित्रता और प्रेम के आश्चर्यजनक प्रदर्शन का उल्लेख करते हुए नेहरू ने कहा, "मैं नहीं कह सकता कि लार्ड और लेडी माउंटबेटन को उस अवसर पर कैसा लगा होगा, लेकिन इन विशाल प्रदर्शनों का आदी होते हुए भी मैं तो अत्यन्त प्रभावित हुआ हूं। मुझे इस बात की हैरानी है कि एक अंगरेज और एक अंग्रेज-महिला किस प्रकार भारत में इस थोड़े से काल में इतने ज्यादा लोक-प्रिय बन गए। . . . निश्चय ही यह एक ऐसा काल है, जिसमें किसी हद तक सफलता प्राप्त हुई, लेकिन दुख और विनाश का भी यह काल था। . . . आपको अनेक उपहार और भेंट प्राप्त होंगी, लेकिन लोगों के प्रेम और आत्मीयता से बढ़ कर वास्तविक या मूल्यवान क्या हो सकता है?"

---

१. माउंटबेटन-दंपति ने भारत में अपने १५ मास के आवास में अत्यधिक व्यस्त कार्य-कलापों के बावजूद सरकारी भवन में सदिच्छा और मैत्री-भावना की वृद्धि की दृष्टि से जो भोज दिये उनका विवरण इस प्रकार है : दिन के भोजन पर उन्होंने ७६०५, रात्रि-भोज पर ८३१३ और चाय-पान आदि के लिए २५२८ व्यक्तियों को आमंत्रित किया।

परिशिष्ट

: १ :

ब्रिटिश सरकार की जिस घोषणा के आधार पर भारत का विभाजन हुआ और भारत तथा पाकिस्तान दो उपनिवेशों को सत्ता-हस्तांतरण की गई, वह सामान्यता '३ जून की योजना' के नाम से प्रख्यात है। इस घोषणा का मूल पाठ निम्न है :

ब्रिटिश-सरकार का वक्तव्य

वाइसराय भवन, नई दिल्ली
मंगलवार, ३ जून १९४७

प्रस्तावना

१. २० फरवरी १९४७ को ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की थी कि वह जून १९४८ तक भारत में ब्रिटिश-सत्ता को भारतीयों के हाथों सौंप देना चाहती है। ब्रिटिश सरकार को आशा थी कि १६ मई १९४६ की मंत्रि-मंडल मिशन-योजना को सफल बनाने में मुख्य दलों के लिए सहयोग करना और भारत के लिए ऐसा विधान तैयार करना संभव होगा, जो सब संबंधित दलों को मान्य हो। यह आशा पूर्ण नहीं हुई।

२. मदरास, बंबई, उत्तर-प्रदेश, बिहार, मध्य प्रांत और बरार, आसाम, उड़ीसा और उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत के प्रतिनिधियों तथा दिल्ली, अजमेर-मेरवाड़ा और कुर्ग के प्रतिनिधियों की बहु-संख्या नया संविधान बनाने की दिशा में पहले ही पर्याप्त प्रगति कर चुकी है। दूसरी ओर, मुस्लिम लीगी दल ने, जिसमें बंगाल, पंजाब, सिंध तथा ब्रिटिश बलूचिस्तान के प्रतिनिधियों की बहु-संख्या शामिल है, विधान-सभा में भाग न लेने का फैसला किया है।

३. ब्रिटिश-सरकार की सदा यह इच्छा रही है कि सत्ता-हस्तांतरण स्वतः भारतीयों की इच्छानुसार ही हो। भारतीय राजनैतिक दलों में परस्पर समझौता होने की दशा में यह कार्य अत्यंत सुगम हो जाता। फलतः, ऐसे किसी समझौते की अनुपस्थिति में भारतीयों की इच्छाओं का निश्चय करने का काम ब्रिटिश-सरकार पर आ पड़ा है। भारत के राजनैतिक नेताओं के साथ पूर्ण विचार करने के बाद ब्रिटिश सरकार ने इस मुद्दे के लिए नीचे दी हुई योजना को अपनाने का फैसला किया है। ब्रिटिश सरकार यह साफ जाहिर कर देना चाहती है कि वह भारत के लिए किसी भी प्रकार का संविधान बनाने की इच्छा नहीं रखती; क्योंकि यह तो स्वतः भारतीयों का ही मामला है। इसके अतिरिक्त, प्रस्तुत योजना में संयुक्त भारत के लिए विभिन्न संप्रदायों के बीच वार्तालाप में बाधा बनने वाली भी कोई बात नहीं है।

निर्णायक प्रश्न

४. ब्रिटिश सरकार की यह इच्छा नहीं है कि वर्तमान विधान-सभा के कार्य में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न करे। नीचे लिखे कुछ प्रांतों के लिए अब व्यवस्था कर दी गई है, और ब्रिटिश सरकार को विश्वास है कि इस घोषणा के फल-स्वरूप उन प्रांतों के मुस्लिम-लीगी प्रतिनिधि भी इसके कार्य में अपना उचित योग-प्रदान करेंगे, जिनके प्रतिनिधियों की बहुसंख्या पहले से ही उसमें भाग ले रही है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि इस विधान-सभा द्वारा जो भी संविधान तैयार किया जायगा वह देश के उन भागों पर लागू नहीं हो सकता, जो उसे स्वीकार करने के इच्छुक न हों। ब्रिटिश सरकार इस बात से संतुष्ट है कि जो विधि नीचे दी गई है, उसमें उन क्षेत्रों के लोगों की यह इच्छा जानने की सर्वोत्तम व्यावहारिक विधि निहित है कि उनका संविधान

(अ) वर्तमान विधान-सभा में बने, या

(ब) उन इलाकों के प्रतिनिधियों की नई और अलग विधान सभा में, जिन्होंने वर्तमान विधान-सभा में भाग न लेने का निर्णय किया है।

जब यह हो चुकेगा तो यह निश्चय करना संभव हो जायगा कि किस अधिकारी या अधिकारियों को सत्ता-हस्तांतरण किया जाना चाहिए।

बंगाल और पंजाब

५. फलतः, पंजाब और बंगाल की प्रांतीय व्यवस्थापिका सभाओं में प्रत्येक को (यूरोपीय सदस्यों को छोड़कर) दो भागों में बैठने के लिए कहा जायगा—एक वह, जिसमें मुस्लिम-बहुल-जिलों का प्रतिनिधित्व होगा और दूसरे, जिसमें शेष प्रांत का। जिलों की जन-संख्या का निश्चय करने के लिए १९४१ की जनगणना के आंकड़ों को अधिकृत माना जायगा। इन दोनों प्रांतों के मुस्लिम-बहुल जिले इस घोषणा के अन्त में दिये गए हैं।

६. प्रत्येक व्यवस्थापिका सभा के दो भागों के सदस्यों को अलग-अलग बैठकों में इस मतदान का अधिकार होगा कि उस प्रांत का विभाजन किया जाय या नहीं। यदि दोनों में से कोई भी भाग विभाजन का समर्थन करता है तो विभाजन होगा और तदनुसार प्रबंध किये जायंगे।

७. विभाजन के प्रश्न का निर्णय होने से पहले, प्रत्येक भाग के प्रतिनिधियों को अग्रिम रूप में मालूम होना चाहिए कि दोनों भाग यदि अंततः संयुक्त रहने का ही निर्णय करते हैं तो समग्र रूप में वह प्रांत किस विधान-सभा में शामिल होगा। इसलिए,यदि दोनों व्यवस्थापिका सभाओं का कोई भी सदस्य यह जानना चाहेगा, तो व्यवस्थापिका सभा के सब सदस्यों (यूरोपियनों के सिवा) की बैठक होगी और उसमें इस प्रश्न का निर्णय किया जायगा कि इन दोनों भागों के संयुक्त बने रहने के निर्णय की दशा में वह प्रांत समग्र रूप में किस विधान-सभा में शामिल होगा।

८. विभाजन का निर्णय हो जाने की अवस्था में व्यवस्थापिका सभा का प्रत्येक भाग अपने प्रतिनिधित्व के हल्कों की ओर से उक्त पैरा ४ में दिये विकल्पों में से किसी एक को ग्रहण करने का निर्णय करेगा।

९. विभाजन के प्रश्न का निर्णय करने के तात्कालिक मुद्दे के लिए बंगाल और पंजाब की व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्य मुस्लिम-बहुल

जिलों (अन्त में लिखे अनुसार) और गैर-मुस्लिम-बहुल जिलों के अनुसार दो भागों में बैठेंगे । यह विधि तो केवल नितांत अस्थायी स्वरूप की प्रारंभिक कार्यवाही है, क्योंकि यह तो साफ जाहिर है कि इन प्रांतों के आखिरी विभाजन के लिए सीमा-संबंधी प्रश्नों की विस्तृत खोज करनी आवश्यक होगी, और, जैसे ही, दोनों में किसी भी प्रांत के विभाजन का निर्णय हो जायगा, गवर्नर-जनरल एक सीमा-आयोग की स्थापना करेंगे, जिसकी सदस्यता और अधिकार-क्षेत्र का निश्चय संबंधित लोगों के परामर्श से किया जायगा । उसे मुस्लिमों और गैर-मुस्लिमों के आसपास के बहुल इलाकों का निश्चय करने के आधार पर पंजाब के दो भागों की सीमा-रेखाएं बनाने का आदेश दिया जायगा । उसे अन्य तत्वों को भी दृष्टि में रखने की हिदायत की जायगी । इसी तरह की हिदायतें बंगाल सीमा-आयोग को भी दी जायंगी । जब तक सीमा-आयोग की सूचना सक्रिय रूप में लागू नहीं हो जाती, तब तक परिशिष्ट में लिखित अस्थायी सीमाओं का प्रयोग किया जायगा ।

सिंध

१०. सिंध की व्यवस्थापिका सभा भी यूरोपीय सदस्यों के सिवा उक्त पैरा ४ के विकल्पों के आधार पर अपने विशिष्ट अधिवेशन में अपना निजी निर्णय करेगी ।

उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रांत

११. उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रांत की स्थिति सबसे अलग है । इस प्रांत के तीन प्रतिनिधियों में से दो पहले से ही मौजूदा विधान-सभा में भाग ले रहे हैं । लेकिन इसकी भौगोलिक स्थिति तथा अन्य विचारों को दृष्टि में रखते हुए यह स्पष्ट है कि यदि सारा या पंजाब का कोई भाग मौजूदा विधान-सभा में शामिल न होने का निश्चय करता है, तो उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रांत को अपनी स्थिति पर पुनः विचार करने का अवसर देना आवश्यक होगा । ऐसी अवस्था में उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रांत की मौजूदा व्यवस्थापिका सभा के निर्वाचकों का जन-मत-संग्रह होगा, जो पैरा ४ के विकल्पों में से जिसे ग्रहण

करना चाहते हैं, चुनेंगे। यह जन-मत-संग्रह प्रांतीय सरकार के परामर्श के साथ गवर्नर-जनरल की देख-रेख में होगा।

ब्रिटिश बलूचिस्तान

१२. ब्रिटिश बलूचिस्तान ने एक सदस्य चुना है, लेकिन वह मौजूदा विधान-सभा में शामिल नहीं हुआ। इसकी भौगोलिक स्थिति को दृष्टि में रहते हुए, इस प्रांत को भी अपनी स्थिति पर पुनः विचार करने और यह चुनने का अवसर दिया जायगा कि वह पैरा ४ के विकल्पों में किसे ग्रहण करना चाहता है। यह किस प्रकार समुचित ढंग से किया जा सकता है, इस बारे में गवर्नर-जनरल विचार कर रहे हैं।

आसाम

१३. यद्यपि आसाम प्रबल रूप में गैर-मुस्लिम प्रांत है, तथापि सिल्हट का जिला, जो बंगाल के साथ जुड़ा हुआ है, प्रबल रूप में मुस्लिम है। यह मांग की गई है कि बंगाल का विभाजन होने की दशा में सिल्हट को बंगाल के मुस्लिम-भाग में शामिल किया जाय। तदनुसार, यह फैसला किया गया है कि यदि बंगाल का विभाजन हो तो आसाम की प्रांतीय सरकार की सलाह से गवर्नर-जनरल की देख-रेख में सिल्हट जिले में इस आशय से जन-मत-संग्रह किया जायगा कि सिल्हट का जिला आसाम प्रांत का भाग बना रहे या पूर्वी बंगाल के नये प्रांत में शामिल कर लिया जाय, बशर्ते कि वह प्रांत उसे शामिल करने के लिए सहमत हो; यदि जन-मत-संग्रह का परिणाम पूर्वी-बंगाल में शामिल होने के पक्ष में हो, तो पंजाब और बंगाल जैसा ही सीमा-आयोग बनाया जायगा, जो सिल्हट जिले के मुस्लिम-बहुल इलाकों और आसपास के जिलों के निकटस्थ मुस्लिम-बहुल इलाकों की सीमा-रेखा नियत करेगा। इसके बाद उन्हें पूर्वी बंगाल के हवाले कर दिया जायगा। शेष आसाम प्रांत मौजूदा विधान-सभा की कार्यवाही में भाग लेता रहेगा।

विधान-सभाओं का प्रतिनिधित्व

१४. यदि बंगाल और पंजाब के विभाजन का निर्णय हो जाता है तो

१६ मई १९४६ की मंत्रि-मंडलीय योजना में निहित सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक दस लाख जनसंख्या पीछे एक प्रतिनिधि चुनने के लिए नये चुनाव करने आवश्यक होंगे। इसी तरह के चुनाव सिल्हट में भी करने होंगे, अगर वह पूर्वी बंगाल में शामिल होने का निर्णय करता है। प्रत्येक इलाके में प्रतिनिधियों की संख्या इस प्रकार होगी :

प्रांत	सामान्य	मुस्लिम	सिख	योग
सिल्हट जिला	१	२	—	३
पश्चिमी बंगाल	१५	४	—	१९
पूर्वी बंगाल	१२	२९	—	४१
पश्चिमी पंजाब	३	१२	२	१७
पूर्वी पंजाब	६	४	२	१२

१५. विभिन्न इलाकों के प्रतिनिधि प्रदत्त आदेशों के अनुसार या तो मौजूदा-विधान-सभा में शामिल होंगे या नई विधान-सभा बनायंगे।

प्रशासनिक मामले

१६. यदि किसी विभाजन का निर्णय हो जायगा तो प्रशासनिक नतीजों पर यथाशीघ्र वार्त्तालाप आरंभ किया जायगा।

(अ) यह वार्त्तालाप यथाक्रम उत्तराधिकारी शक्तियों के प्रतिनिधियों के बीच सुरक्षा, अर्थ और संचरण सहित उन सब विषयों के बारे में होगा, जो वर्तमान में केंद्रीय सरकार के अधीन हैं।

(ब) सत्ता-हस्तांतरण से उत्पन्न मामलों के विषय में संधियों के लिए विभिन्न उत्तराधिकारियों और ब्रिटिश सरकार के बीच वार्त्तालाप होंगे।

(स) जिन प्रांतों का विभाजन होगा, उनकी संपत्तियों और देनदारियों, पुलिस और अन्य नौकरियों, हाइकोर्टों, प्रांतीय सरकारी संस्थाओं जैसे सभी प्रांतीय विषयों के प्रशासनिक मामलों पर वार्त्तालाप होगा।

उत्तर-पश्चिमी सीमान्त के कबीले

१७. भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रान्त के कबीलों के साथ समुचित उत्तराधिकार शक्तियां समझौते करेंगी।

रियासतें

१८. ब्रिटिश सरकार यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि उक्त निर्णयों की घोषणा का संबंध केवल ब्रिटिश भारत के साथ है और भारतीय रियासतों के प्रति उसकी नीति १२ मई १९४६ की मंत्रि-मंडलीय घोषणा में निहित है, जिसमें कोई फेर-बदल नहीं किया गया है।

गतिशीलता की आवश्यकता

१९. उत्तराधिकारी शक्तियों को सत्ता ग्रहण करने के लिए तैयारी का समय मिल सके, इसके लिए अत्यावश्यक है कि ऊपर लिखी हुई सब विधियों को यथाशीघ्र पूरा कर लिया जाय। देरी से बचने के लिए विभिन्न प्रांत या प्रांतों के भाग इस योजना की शर्तों के अनुरूप यथासंभव स्वतंत्रता-पूर्वक भी कार्य करेंगे। मौजूदा विधान-सभा और नई विधान सभा (यदि बनी) अपने-अपने इलाकों के लिए विधान बनाने का कार्य करती रहेंगी।

तात्कालिक सत्ता-हस्तांतरण

२०. प्रमुख राजनैतिक दलों ने बारंबार इस बात पर जोर दिया है कि जितना भी जल्दी संभव हो, भारत में सत्ता-हस्तांतरण हो जाना चाहिए। ब्रिटिश सरकार इस विचार के साथ पूर्ण सहानुभूति रखती है और वह जून १९४८ तक या उससे भी पहले स्वतंत्र भारतीय सरकार या सरकारें बना कर सत्ता-हस्तांतरण कर देने की इच्छुक है। इस घोषणा के फलरूप जो निर्णय होंगे उसके अनुसार औपनिवेशिक स्तर के आधार पर एक या दो उत्तराधिकारी शक्तियों को सत्ता-हस्तांतरण करने के लिए वह मौजूदा अधिवेशन में एक विधान भी पेश करना चाहती है। भारतीय विधान सभाओं को समयांतर यह निर्णय करने का अधिकार होगा कि वह ब्रिटिश-राष्ट्र-मंडल में रहना चाहते हैं या नहीं।

१९४१ की जनगणना के अनुसार पंजाब और बंगाल के मुस्लिम-बहुल जिले :

१. पंजाब

लाहौर डिवीजन—गुजरांवाला, गुरुदासपुर, लाहौर, शेखपुरा, सियालकोट ।

रावलपिंडी डिवीजन—अटक, गुजरात, जेहलम, मियांवाली, रावलपिंडी, शाहपुर ।

मुलतान डिवीजन—डेरा गाजीखां, झंग, लायलपुर, मिन्टगुमरी, मुल्तान, मुजफ्फरगढ़ ।

२. बंगाल

चिटगांव डिवीजन—चिटगांव, नोआखाली, तिपरा ।

ढाका डिवीजन—बकरगंज, ढाका, फरीदपुर, मैमनसिंह ।

प्रेसीडेंसी डिवीजन—जेस्सोर, मुर्शिदाबाद, नदिया ।

राजाशाही डिवीजन—बोगरा, दीनाजपुर, मालदा, पबना, राजाशाही, रंगपुर ।

: २ :

प्रमुख व्यक्तियों के परिचय

भारत-विभाजन और सत्ता-हस्तांतरण की इस लम्बी कहानी में लगभग २५० से अधिक व्यक्तियों के नामों का उल्लेख हुआ है। हिन्दी के पाठकों के लाभ के लिए इनमें से कुछ का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है :

अब्दुल्ला, शेख : काश्मीर के प्रतिनिधि राष्ट्रीय दल 'नेशनल कांफ्रेंस' के तत्कालीन नेता, काश्मीर के भारत में शामिल होने पर तत्कालीन प्रधान-मंत्री।

अमृतकौर, राजकुमारी : महात्मा गांधी की सचिव, भारत सरकार की स्वास्थ्य-मंत्री।

अली, मीर लायक : नवम्बर १९४७ से निजाम हैदराबाद की परिषद् के प्रधान।

अर्सकिन क्रम, लैफ्टीनेंट कर्नल वी. एफ. : वाइसराय और भारत के गवर्नर-जनरल के कांफ्रेंस-सचिव।

आचिन्लेक, फील्ड मार्शल सर क्लाड : १५ अगस्त तक भारत में कमांडर-इन-चीफ; ३० नवम्बर १९४७ तक भारतीय सेनाओं के विभाजन की देखरेख के लिए सुप्रीम कमांडर।

आयंगर, गोपालस्वामी : (स्व.) भारत-सरकार के मंत्री; जनवरी १९४८ में संयुक्त-राष्ट्र-संघ में जाने वाले भारतीय प्रतिनिधि-मंडल के नेता।

इस्मे, लार्ड : वाइसराय के स्टाफ, और दिसम्बर १९४७ तक भारत के गवर्नर-जनरल के स्टाफ के मुखिया।

एबेल, जी. ई. बी. (बाद में सर जार्ज): वाइसराय के प्राइवेट

सैक्रेटरी ।

कृपालानी, आचार्य जे. बी. : कांग्रेस के तत्कालीन प्रधान।

छतारी, नवाब, मई १९४७ से नवम्बर १९४७ तक निजाम हैदराबाद की परिषद् के प्रधान।

जिन्ना, मुहम्मद अली : (कायदे-आजम) (स्व.) मुस्लिम लीग के प्रधान; पाकिस्तान के प्रथम गवर्नर-जनरल।

जैनकिन्स, सर इवान : १५ अगस्त १९४७ तक पंजाब के गवर्नर।

त्रिवेदी, सर चन्दूलाल : उड़ीसा के गवर्नर, १५ अगस्त १९४७ से पूर्वी पंजाब के तत्कालीन गवर्नर।

देवदास गांधी : 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के प्रबन्ध-संपादक; महात्माजी के सुपुत्र ।

निकोलस, कमाण्डर जी. एच. : वाइसराय के डिप्टी निजी सैक्रेटरी; १५ अगस्त १९४७ से भारत के गवर्नर-जनरल के डिप्टी निजी सैक्रेटरी ।

निश्तर, सरदार अब्दुर्रब : अंतरिम सरकार में संचरण के सदस्य; पाकिस्तान में संचरण और रियासतों के सदस्य ।

नेहरू, जवाहरलाल : अंतरिम सरकार में विदेशी मामलों तथा राष्ट्रमंडलीय संबंधों के सदस्य; अन्तरिम-सरकार के उपप्रधान; स्वतंत्र भारत के प्रधान मंत्री।

पटियाला, महाराजा : रियासत पटियाला के शासक; नरेंद्र-मंडल के मई से अगस्त १९४७ तक चांसलर।

पटेल, एच. एम. : भारतीय मंत्रि-मंडल के सैक्रेटरी; विभाजन-कौंसिल की कार्यवाहक कमेटी के सदस्य ।

पटेल, सरदार वल्लभ भाई : (स्व.) गृह, सूचना और ब्राडकास्टिंग तथा जुलाई १९४७ से अंतरिम सरकार में रियासतों के सचिव; भारत के उप-प्रधान मंत्री।

मथाई, डा० जॉन : अंतरिम सरकार में यातायात और रेलवे के सदस्य; स्वतंत्र भारत के प्रथम मंत्रि-मंडल में यातायात और रेलवे मंत्री।

माउन्टबेटन: २२ मार्च से १४ अगस्त १९४७ तक भारत में ब्रिटिश सरकार के अन्तिम वाइसराय। १५ अगस्त १९४७ से २१ जून १९४८ तक स्वतन्त्र भारत उपनिवेश के प्रथम गवर्नर-जनरल।

मांकटन, सर वाल्टर: निजाम हैदराबाद के तत्कालीन वैधानिक सलाहकार।

मि. एविल, सर एरिक: वाइसराय के प्रधान सचिव।

मुहम्मद अली: ब्रिटिश भारत सरकार के फौजी अर्थ-विभाग में आर्थिक सलाहकार; विभाजन कौंसिल की कार्यवाहक कमेटी के सदस्य; पाकिस्तान सरकार के राज-सचिव।

मुन्शी, के. एम: दिसम्बर १९४७ से हैदराबाद में भारत के एजेंट-जनरल; उपरांत भारत सरकार के खाद्य-मंत्री। वर्तमान में उत्तर-प्रदेश के राज्यपाल।

मेनन, वी. के. कृष्ण: अगस्त १९४७ से इंग्लैंड में भारत के हाई कमिश्नर।

मेनन, वी. पी.: वाइसराय के कर्मचारी-मंडल में रीफार्म कमिश्नर के पद पर; जुलाई १९४७ से भारत सरकार के रियासत-विभाग के सचिव।

राजगोपालाचारी चक्रवर्त्ती: अंतरिम सरकार में उद्योग व पूर्त्ति के सदस्य; १५ अगस्त १९४७ से बंगाल के राज्यपाल, और २१ जून १९४८ से भारत उपनिवेश के प्रथम भारतीय गवर्नर-जनरल। उपरांत मदरास राज्य के मुख्य मंत्री। वर्तमान में राजनीति से विराम।

राजेंद्रप्रसाद, डा.: अंतिरम सरकार में खाद्य व कृषि के सदस्य, और विधान सभा के प्रधान। वर्तमान में भारत के राष्ट्रपति।

रीस, मेजर-जनरल टी. डब्ल्यू.: जुलाई से सितम्बर १९४७ तक पंजाब सीमा-सेना के कमांडर; सितम्बर से दिसम्बर १९४७ तक भारत के गवर्नर-जनरल के सैनिक संकट-कालीन मंडल के नेता।

लॉकहार्ट, लैफ्टिनेंट-जनरल सर राब.: जून से १५ अगस्त १९४७

तक उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांत के गवर्नर; १५ अगस्त १९४७ से जनवरी १९४८ तक भारत उपनिवेश की सेना के कमांडर-इन-चीफ।

लियाकत अली खां: (स्व.) मुस्लिम लीग के प्रधान मंत्री; अंतरिम सरकार में अर्थ सदस्य, पाकिस्तान उपनिवेश के प्रधान मंत्री, उपरांत मारे गए।

स्काट, आई. डा.: वाइसराय के डिप्टी सैक्रेटरी।

अनुक्रमणिका

अध्याय : : १०

अध्याय : : ११

अध्याय : : १२